कैलाश और मानस-तीर्थ-यात्रा

Presented to the library of
Sri Ramakrishna Ashrama
Karan Nagar.
Srinagar.
with the best Compliments
of
Swami Apurvananda
14.2.74

स्वामी अपूर्वानन्द

अध्यक्ष : श्री रामकृष्ण अद्वैताश्रम, वाराणसी ।

प्रकाशक :—

श्री विश्वनाथ दत्त

दी यूरेका प्रिंटिंग वर्क्स प्रा० लि०,

गोदौलिया, वाराणसी ।



मुद्रक :—

श्री प्रेस एवं पब्लिकेशन्स

रामापुरा, वाराणसी ।



प्रथम संस्करण

अप्रैल १९६६



मूल्य— तीन रुपया

निवेदन

प्रधानतया तीर्थ-देवता के आकर्षण वश ही यात्री तीर्थ भ्रमण में जाते हैं। हमलोग भी जो कैलाश और मानससरोवर दर्शन के लिए गये थे उसकी भी पटभूमिका में कैलाशपति महेश्वर का दुर्निवार आकर्षण ही था। परन्तु भ्रमण-कहानी एक प्रकार का इतिहास भी होती है—इस कारण पश्चिम तिब्बत भ्रमण के इस विवरण के भीतर हमने ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ-कुछ आलोचना की अवतारणा की है। तिब्बत और तिब्बतियों के सम्बन्ध में जो नूतन तथ्य मिले हैं उन्हें भी इस ग्रन्थ में सन्निविष्ट कर दिया गया है।

भौगोलिक परिस्थिति, राष्ट्र व्यवस्था और भाषा की दृष्टि से भेद रहने पर भी भारत और तिब्बत के भीतर धर्म और संस्कृति सम्बन्धी एक निविड़ एकत्व पहले भी था और अब भी है। तथा यह एकत्व दोनों राष्ट्रों की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखने के लिए अपरिहार्य है।

इस पुस्तक के लिखने में अनेक व्यक्तियों से यथेष्ट सहायता मिली है। सभी के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इस तीर्थयात्रा का वर्णन पढ़कर यदि कोई हृदय में परम देवता का मानस-सान्निध्य और भावस्पर्श प्राप्त कर सकें तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

स्वामी अपूर्वानन्द

श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम
वाराणसी।
(यू॰ पी॰)

दो-चार बातें

वाराणसी के श्री रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी अपूर्वानन्द जी महाराज के यह 'कैलाश और मानस तीर्थ-यात्रा'' ग्रन्थ प्रकाशित कर हमने राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में कुछ हाथ बँटाया है।

ग्रन्थकार केवल तीर्थयात्री और परिव्राजक के रूप में ही तिब्बत नहीं गये थे। वह तिब्बत और तिब्बतियों के साथ घनिष्ठ भाव से परिचित होने के लिए भी गये थे। क्योंकि अदूर अतीत युग में तिब्बत वृहत्तर भारत के ही अन्तर्भुक्त था। इस कारण वे विश्लेषक का मनोभाव तथा ऐतिहासिक दृष्टिभंगी लेकर तिब्बत भ्रमण में गये थे। इस भ्रमण-वृत्तान्त के भीतर चीन के अभियान के पूर्व तिब्बत का इतिहास, भूगोल, राजनीतिक तथ्य, सामाजिक संस्था, लोकाचार, प्रवाद, उपकथा, रूपक, पौराणिक कहानी, भू-तत्त्व, नृ-तत्त्व, यानवाहन, जीवनयात्रा, जलवायु, स्वास्थ्य, नैसर्गिक शोभा आदि विशेष स्थान प्राप्त हुए हैं। उसके अतिरिक्त तिब्बतियों के आहार-विहार, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, वैवाहिक प्रथा, धर्म, कृष्टि, संगीत, नृत्यकला आदि के सम्बन्ध में भी अनेक मूल्यवान तथ्य जानकर पाठक विस्मित होंगे।

चीन के अधिकार के बाद से कैलाश-यात्रा-पथ एकदम बन्द है। तिब्बत में प्रवेशाधिकार से भी भारतवासी वंचित हैं।

मूल ग्रन्थ बंगला भाषा में प्रकाशित हुआ था जो साहित्य के क्षेत्र में बहुत ही अधिक प्रशंसा पा चुका है। प्रस्तुत हिन्दी ग्रन्थ उसका ही धारावाहिक

अनुवाद है। वाराणसी के पं० गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री जी ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया है।

पृथ्वी भर के सर्वोच्च हिमालय पर्वत के उच्चतम हिमाच्छन्न शिखरों में कैलाश भी एक है। उसके पास ही दो विशाल झील हैं। एक मानस सरोवर जिसकी परिधि ६० मील है और दूसरा राक्षसताल या रावणझील, उससे कुछ छोटा है। १५०६८ फीट की ऊँचाई पर इतने बड़े झीलों को देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है।

कैलाश और मानस सरोवर तीर्थ के दर्शन के लिये हर साल अनेक यात्री अलमोड़े के रास्ते से जाते थे।

काठगोदाम स्टेशन से बस के रास्ते अलमोड़ा ८३ मील और वहाँ से कैलाश ३२७ मील दूर है।

वह रास्ता बहुत ही कठिन है। अनेक यात्री कैलाश का दर्शन कर सकुशल लौट भी नहीं आ सकते। इस कारण लोग वैसे अपूर्व तीर्थ के दर्शन से वंचित रह जाते हैं।

स्वामी जी ने इस दुर्गम तीर्थयात्रा का बहुत ही रोचक वर्णन इस ग्रन्थ में दिया है, जिससे पाठक घर बैठे उस तीर्थ के दर्शन का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

प्रकाशक

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ संख्या
यात्रारम्भ	....	....	१
तिब्बत में प्रवेश	...	....	७३
खोचरनाथ	...	...	८४
तीर्थापुरी-यात्रा	...	...	९६
कैलाश	....	...	१४५
मानस सरोवर-यात्रा	...	...	१७१
प्रत्यावर्तन	....	....	२१७
परिशिष्ट	...	....	२४६

कैलाश और मानसतीर्थ-यात्रा

यात्रारम्भ

कैलाश का आकर्षण एक शाश्वत आदर्श के प्रति आकर्षण है। देवता का परम आह्वान है। कैलाश एक विशाल पर्वत, मनोहर, शोभामय या जड़ प्राकृतिक स्थान मात्र ही नहीं है वह दिगम्बर सदाशिव का भावघन-प्रतीक है। युग-युगान्तरों से अगणित जन-मन में कैलाश के प्रति आकर्षण रहा है, किन्तु बहुत लोग उस आह्वान का उत्तर नहीं दे सके हैं। वे अपूर्ण वासना युक्त प्राण मानो एक होकर मेरे भीतर बोल रहे थे। हर-गौरी के आह्वान ने मेरे इस क्षुद्र हृदय में अमोघ मिलन की आशा का दीप जला दिया। जिसके फलस्वरूप मैं हृदय में दुर्निवार आकर्षण का अनुभव करने लगा। उन अतृप्तों के प्रतिनिधि रूप से मैं कर्पूरगौर महादेव के चरण-तल में चला।

× × ×

हम सात यात्री थे*। जिस दिन सहयात्री श्यामलाताल पहुंचे, उस दिन श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी विरजानन्द महाराज

---

* हम ८ यात्री एक साथ चले थे। परन्तु धारचूला नामक स्थान से रुग्ण होकर एक यात्री को लौट जाना पड़ा था।

भी वहाँ उपस्थित थे। कैलाश-यात्रियों को पाकर वह बहुत ही प्रसन्न हुए। यह आश्रम उक्त स्वामीजी के द्वारा ही प्रतिष्ठित किया गया है। यह बात लगभग ४६ वर्ष पूर्व की है। मायावती अद्वैताश्रम के अध्यक्षपद से तथा उक्त आश्रम के द्वारा परिचालित अंग्रेजी मासिक पत्रिका "प्रबुद्ध भारत" के सम्पादन-कार्य से अवसर प्राप्त कर तपस्यादि में जीवन का अन्तिम भाग बिताने की इच्छा से उन्होंने हिमालय के एकान्त स्थान में इस आश्रम का निमाण किया था।

श्यामलाताल में प्रकृति का अपूर्व प्रकाश है। एक ओर नन्दादेवी आदि हिमालय के अभ्रभेदी चिर-तुषारगिरिशृंग तथा सैकड़ों मीलों तक फैली हुई हिमानी की ध्यानमग्न अपूर्व सुन्दरता है, तो दूसरी ओर समतल प्रदेश की सुदूरप्रसारी मनोहर दृश्यावली मानव मन को मानो हाथ से इंगित कर असीम की ओर आमन्त्रण दे रही है। पर्वतों के शिखरों में घनी श्यामश्री विराजमान है। आश्रम-प्रांगण प्रभात की प्रथम सूर्यकिरणों से उद्भासित होकर क्रमशः विलीयमान अन्तिम रश्मि-चुम्बित होता है। तीन सरोवर एक पर एक विन्यस्त होकर इस स्थान का सौन्दर्य और भी समृद्ध कर रहे हैं। श्यामल प्राकृतिक घेरे में सरोवर-तट पर बसे होने के कारण आश्रम स्थापयिता ने इस स्थान का नाम श्यामलाताल रखा है। हिमालय के पाद देश में अन्तिम रेल-स्टेशन टनकपुर से १५ मील दूर—४६४४ फुट ऊँचे एक पर्वत-शिखर को सुशोभित करता हुआ यह आश्रम अवस्थित है।

यद्यपि स्वामी विरजानन्द ने एकान्त में तप-साधना के निमित्त इस निर्जन स्थान पर आश्रम निर्मित किया था, किन्तु "आत्मनो मोक्षार्थं" के साथ उनके मन के किसी कोने में अपने गुरुदेव के द्वारा उपदिष्ट "जगद्धिताय"

मन्त्र ध्वनित होने लगा। गरीब, पीड़ित, दुःस्थ पहाड़ी-नारायणों के कष्ट से उनका कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उनके रोगोपशम के लिए वह पहले कुछ-कुछ औषधि पथ्यादि वितरण में व्रती हुए। उनकी इस सुदीर्घ कालव्यापी कठोर तपस्या तथा तीव्र सेवा-व्रत के परिणाम स्वरूप श्यामलाताल में अब धीरे-धीरे एक सर्वांग सुन्दर सेवा-केन्द्र गठित हो गया है।*

श्यामलाताल आश्रम में एक दिन विश्राम के बाद ज्येष्ठ २४ बुधवार भोर में स्वामी विरजानन्दजी का हार्दिक शुभाशीर्वाद सिर पर लेकर हमलोग 'दुर्गा दुर्गा' कहते हुए सुदीर्घ यात्रा पथ पर निकल पड़े। जाने के समय स्वामीजी ने कहा—"मेरी सश्रद्ध प्रणति कैलाशपति के चरणों में निवेदित कर देना"। सुगंधि, धूपबत्ती आदि पूजोपकरण भी उन्होंने दिये थे।

बूँदा-बूँदी हो रही थी। आकाश मेघाच्छन्न था। पहाड़ी वन-पथ ऊँचा नीचा और कंकरीला था। दाहिनी ओर पहाड़ियों की बस्तियाँ थीं। जंगली जन्तुओं की चीत्कार सुनाई पड़ती थी। कुछ देर तक सब लोग चुपचाप चलते रहे। सभी अपने-अपने ध्यान में मग्न थे। मन में संसार के सारे दायित्वों से मुक्त होकर मानो निर्वाण के पथ पर हमलोग चल रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था मानो सांसारिक सभी विचित्रताओं को पीछे छोड़कर उस अज्ञेय वस्तु के संधान में अग्रसर हो रहे हों। अपनी इस गति के पीछे एक परम आह्वान—एक दुर्निवार आकर्षण था। जिस देवता की अनुप्रेरणा

---

* अब श्यामलाताल आश्रम के दातव्य चिकित्सालय के अन्तर्विभाग में १२ रोगियों के चिकित्सा की व्यवस्था है, तथा बहिर्विभाग से सैकड़ों दरिद्र पहाड़ियों को औषधि पथ्यादि वितरण किया जाता है। पशु-चिकित्सालय भी हैं। (हिन्दी संस्करण की पाद-टीका—ग्रन्थकार)

से इस तुच्छ-क्षुद्र जीवन को महत्तर जीवन में परिणत करने के लिये चल रहे थे समूचे हृदय व मन से उस परम देवता के चरणों में शरण लेने के लिये हमारे पैर आप ही आप उछलते चले जा रहे थे, मानो दुर्गम अनिर्दिष्ट पथ के वही भगवान एक मात्र प्रकाशस्तम्भ हमारे सम्मुख थे।

घनवनानी परिवेष्टित तीन मील की चढ़ाई उतराई मार्ग का अतिक्रमण कर हमलोग 'सूखी-ढांग' में आये। उस समय भी पानी बरस रहा था। वृष्टि के अभाव के कारण इस प्रांत के लोग हाय-हाय कर रहे थे, हमारी यात्रा के प्रथम दिन ही यह वृष्टि हुई। इसे पहाड़ी लोग बहुत शुभ मान रहे थे। 'सूखी-ढांग' डाकघर में बैठकर मेरे साथ के तीनों सज्जनों ने अपने-अपने घर में यात्रारंभ का समाचार तथा पत्रादि गर्ब्यांङ के पते पर भेजने का निर्देश देकर पत्र लिखे। कैलाश-यात्रियों को बिदा देने के लिए अनेक परिचित तथा अपरिचित पहाड़ी लोग वहाँ एकत्र हुए थे।

सूखी ढांग के चार मील बाद ही 'चलती' नदी है। घने वनों के भीतर से उबड़-खाबड़ मार्ग है। अन्तिम वसन्त ऋतु के सूखे वृक्षपत्रों से पथ आच्छन्न है। नयी सुनहली पत्तियों से सभी वृक्ष भर गये हैं, कहीं वनफूल की सुगन्ध से वायुमण्डल भर गया है। मधु-मक्खियों का गुञ्जन भी सुनाई पड़ता है। एक जङ्गली शूकर भों-भों शब्द करता हुआ हमारा पीछा करता चला आ रहा था, परन्तु कुछ दूर तक आकर वह दूसरी ओर भाग गया। भयभीत जङ्गली बन्दर और लंगूर हूप-हूप शब्द करके पेड़ों पर कूदते चले जा रहे थे। जङ्गली मोरों का शब्द भी सुनाई पड़ा। कहीं झरने की झंकार कानों में आने लगी। वसन्तोत्सव में मत्त वन्य पक्षी

की काकली से वनस्थली मुखरित थी। इस पार्वत्य प्रदेश में तीन ऋतुएँ—वर्षा, शीत और वसन्त ही होती हैं।

बहुत ही सावधानी से हमलोग कदम से कदम बढ़ाते चल रहे थे। समस्त मार्ग ही टेढ़ा-मेढ़ा और चढ़ाई-उतराई का था। स्थान जन-विरल था। कुछ ऊपर से 'चलती' नदी का प्रवाह दिखाई पड़ा। नदी में जल घुटने भर था किन्तु स्रोत अति तीव्र था। किसी तरह नदी को पार किया। सामने एक बड़ा ऊँचा पर्वत था, उसी के नीचे से संकीर्ण पथ दिखाई दिया। नदी-किनारे बैठकर कुछ विश्राम लिया गया। उसके बाद धीरे-धीरे 'डिवरी' की चढ़ाई शुरु की गई। चार मील पथ डिवरी तक एकदम खड़ी चढ़ाई थी। इस चार मील पथ में ३००० फीट ऊपर चढ़ना होता है। धूप तेज थी। बहुत गर्मी मालूम हो रही थी। हमलोग ऊपर चढ़ते ही जा रहे थे—मानो इस चढ़ाई का अन्त ही नहीं था।

जितना ही हमलोग ऊपर चढ़ने लगे, उतनी ही सुदूर-प्रसारी बाधाहीन शोभा देखकर हमलोग मुग्ध होते गये, पर्वतशिखर की श्यामश्री के ऊपर प्रखर रक्तिम सूर्यरश्मि थी। बायीं ओर नीचे गरजती हुई चलती नदी का निर्मल नीर-प्रवाह बहता जा रहा था। कहीं पर्वत का तना फोड़कर क्षीण झरने पथ के पास उतरते आ रहे थे। अपनी दीनता लेकर भी वे सुशीतल जलदान से क्लान्त पथिकों को परितृप्त कर रहे थे। झरने के पास बैठकर सुमिष्ट जलपान करके हाथ पैर फैलाकर कुछ क्षण विश्राम लिया गया। लगभग १२ बजे की कड़ी धूप में उस कठिन चढ़ाई का अन्त कर बहुत ही क्लान्त अवस्था में हमलोग डिवरी में पहुंचे।

पहाड़ के वातावरण में ऐसी संजीवनी शक्ति है कि थोड़ी ही देर विश्राम

लेने के पश्चात् सारी क्लान्ति दूर हो जाती है। एक ऊँचे पर्वत-शिखर पर अवस्थित डिवरी का 'डाक-बङ्गला' बहुत ही सुन्दर था। सुदूरव्यापी पार्वत्य शोभा का बंगले के बरामदे में बैठकर उपभोग किया जाता है। चारों ओर उदार पर्वत-श्रेणियाँ हैं, विभिन्न आकृति और उच्चता के तरङ्ग के समान शिखर मानो नृत्य की भंगी से खड़े हैं। ऊपर की ओर का नील आकाश दूर क्षितिज के साथ पहाड़ों में मिल गया है।

डिवरी के 'डाक-बङ्गला' के आसपास पहाड़ के तने पर कुछ दुकानें और पहाड़ियों के मकान हैं। डाक-बङ्गला का चौकीदार स्थानीय ईसाई है। उसके दो छोटे लड़के भी आये और 'गुडमॉनिङ्ग' कहकर उन दोनों ने सलाम किया। ईसाई होने के कारण ही शायद पहाड़ी होने पर भी उन दोनों बच्चों के व्यवहार में कुछ शिष्टता टपकती थी— केश सँवारना, जो पहाड़ में प्रायः नहीं देखा जाता, वह हमलोगों ने उनमें पाया।

ईसाई मिशनरियों ने हिमालय में, खासकर तथाकथित निम्नश्रेणी के पहाड़ियों को ईसाई धर्म में खींच लाने में कसर नहीं रखी है। स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे प्रार्थनागार, स्कूल आदि स्थापित कर विभिन्न प्रकार से प्रलोभन देकर उन्होंने पहाड़ियों को ईसाई बनाने के लिए यथेष्ट चेष्टा की है; और अभी भी कर रहे हैं, परन्तु प्रतीत होता है ईश्वर की इच्छा अन्य प्रकार की है। उनलोगों की वह प्रचेष्टा अधिकतर निष्फल हुई है। अनेक वर्षों के परिश्रम के फलस्वरूप बहुत अधिक पहाड़ियों को वे ईसाई न बना सके। गत २-३ वर्षों से हिमालय के अनेक दुर्गम और एकान्त प्रदेशों के लगभग १॥ हजार मील पैदल भ्रमण करके तथा पहाड़ी अंचल के लोगों के साथ विभिन्न अवस्थाओं के भीतर से अत्यन्त घनिष्ठ रूप में परिचित हो कर मेरी

यह धारणा हुई है कि ये लोग निर्धन भले ही हों किन्तु इनकी दरिद्रता उनके धर्म और विश्वास को मलिन नहीं कर सकी है। वे अन्ध-विश्वासी और अत्यन्त कुसंस्काराच्छन्न होने पर भी हृदय से कट्टर हिन्दू हैं। शायद वे यथार्थ हिन्दू धर्म क्या है, नहीं जानते। समझाने पर भी अपना संस्कार नहीं छोड़ना चाहते, भूत-प्रेतों की उपासना करते हैं तथापि वे लोग अपने को हिन्दू समझते हैं।

जो थोड़े से पहाड़ी ईसाई हुए थे, उन लोगों में से भी बहुतों ने आर्य-समाजियों के द्वारा संस्कृत होकर फिर से हिन्दू मत को ग्रहण कर लिया है। गत कई सालों के भीतर आर्यसमाजी प्रचारकों ने हिमालय के निम्न श्रेणी के हिन्दुओं में बहुत ही प्रभाव डाला है। पहाड़ियों में ४०-५० साल पहले भी ऐसे एक श्रेणी के हिन्दू थे जो मृत गौ का मांस खाने में हिचकते नहीं थे। उनके सामाजिक आचार-व्यवहार अति घृणित रुचि के परिचायक थे। किन्तु आर्यसमाजियों के प्रचार के फल-स्वरूप थोड़े ही दिनों में उन हिन्दुओं के भीतर अनेक प्रकार के संस्कार जाग्रत हुए। सबसे उत्तम शुभ लक्षण यह दिखाई पड़ता है कि उनमें भी आत्म-मर्यादा-बोध उत्पन्न हुआ है और साथ-साथ उनके मन में नूतन जागरण की एक विराट हलचल मच गयी है। आर्यसमाजियों की यह प्रचेष्टा बहुत ही शुभ है। इस पर्वतीय प्रान्त के इन अनुन्नत मनुष्यों में धर्मालोक देने का बड़ा दायित्व हिन्दू समाज-सुधारकों के ऊपर निर्भर है।

भोजनादि के बाद थोड़ा विश्राम लेकर हमलोग 'बघेला' की ओर चल पड़े। रात वहीं बिताने का विचार था। किसी तरह ५-६ मील चलने पर ही आज का विश्राम स्थल तय हुआ है। अपराह्न का समय हो गया।

हमलोग धीरे-धीरे चल रहे हैं। आज का पथ प्रायः समतल है। विशेष चढ़ाई उतराई नहीं है। पथ की विचित्रता और दुर्गमता भी नहीं है। बीच-बीच में जंगली गुलाब की सुगंध आ रही थी। 'काफल पाको' पक्षी का मधुर गायन सुनाई देता था। पहाड़ के तने पर से रास्ता था, दूर-दूर पहाड़ियों की बस्तियाँ थीं। श्यामल वनों के भीतर से गड़ेरियों के बालकों की बाँसुरी का स्वर वातावरण को गुञ्जित कर रहा था। स्थानीय लोग प्रायः सभी किसान थे। पहाड़ के तने पर जमीन काट-काटकर लंबा सँकरा खेत बना लिया गया है। उसी में अनाज, आलू आदि उत्पन्न कर लिये जाते हैं। गेहूँ, जौ, धान, आलू, मकई, ज्वार, बाजरा आदि इधर उत्पन्न होते हैं। पहाड़ियों के साथ बीच-बीच में भेंट हो जाती है। वे पीठ पर भारी बोझ लिये जा रहे हैं। पहाड़ का एक मोड़ घूमते ही बघेला दिखाई पड़ा। फासला अभी भी तीन मील है। पहाड़ी रास्ते का अनुभव न होने के कारण एक साथी बोल उठा—"वह बघेला दिखाई पड़ता है, अब तो हम आ गये !"

एक अन्य साथी ने पूछा—"शायद आपको कभी कुत्ते ने नहीं काटा है।"

पूर्व वक्ता ने कहा—"नहीं, कुत्ता क्यों काटेगा ?"

दूसरे साथी ने कहा—"वही तो मैं जानना चाहता था। कुत्ते के काटने से आप समझ सकते हैं कि पहाड़ के रास्ते को कैसे नापा जाता है। बत्ती जलने पर 'कसौली' पहाड़ से तारादेवी पहाड़ ऐसा मालूम होता है कि कुछ मिनटों का रास्ता है। किन्तु वहाँ पहुँचने में पूरे ५ घण्टे लगते हैं।" सब लोग ठहठहा कर हँस पड़े।

सन्ध्या के कुछ पहले हमलोग बघेला पहुंचे। थोड़े से दुकान-घर थे। यात्री प्रायः इन्हीं दुकानों के पास वाले खुले घर में रहते हैं। हमलोग भी

एक दुकान-घर में टिक गये। इस प्रान्त के लोगों से श्यामलाताल और मायावती आश्रम के स्वामी लोग बहुत ही परिचित हैं। लगभग २५-३० वर्षों* से इन दोनों आश्रमों के दातव्य चिकित्सालय से हजारों पीड़ित पहाड़ी स्त्री-पुरुष बिना मूल्य औषध पथ्य सेवा आदि पाते रहे हैं। खासकर टनकपुर और पिथौरागढ़ तक ७० मील के निवासी रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों के सेवाकार्य के सम्बन्ध में विशेष रूप से अवगत हैं और इन लोगों की धारणा है कि यहाँ के सभी संन्यासी 'डाक्टर स्वामी' हैं। बघेला पहुँचने के साथ ही साथ चारों ओर खबर फैल गयी कि डा० स्वामी लोग आये हैं। कुछ लोग रोगी लेकर उपस्थित हुए। हमारे साथ जो डाक्टर यात्री थे, वह परीक्षा करके कैलाश-यात्रा के लिए साथ लाये औषध की पेटी से दवा देने लगे।

दुकान-घर बहुत ही गन्दे थे। जब तक दिन का प्रकाश था तब तक मक्खियों के उत्पात से परेशान होना पड़ा। रात को उस दुकान-घर में और भी कई यात्री आकर टिक गये। दुकान के फर्श पर बिस्तरा लगाकर सब लोग पास-पास लेट गये।

रसोई का प्रबन्ध दुकान के नीचे ही हुआ। धूएँ के मारे सभी की आँखें जलने लगीं। रात को खटमल और पिस्सुओं के लगातार काटते रहने से बिलकुल नींद न आ सकी।

रात के अन्तिम भाग में दिखाई पड़ा कि साथी बिछौने पर ध्यान मग्न हो बैठे हैं। बीच-बीच में टार्च जलाकर खटमल-पिस्सू-हिंसा-यज्ञ में व्यस्त हैं। मुझे जागते देखकर वह बोल उठे—"स्वामी जी, अब तो सहा नहीं जाता।

---

* यह कैलाश यात्रा सन् १९३९ में की गई थी। अतः तिथियाँ उस समय के अनुसार समझना चाहिए। (हिन्दी संस्करण की पादटीका-ग्रंथकार)

कैलाशपति सिर पर हैं। शरीर का चमड़ा गेंडे की तरह मोटा न होने से इस रास्ते में चलना संभव नहीं है। रोयें भी यदि कुछ घने और मोटे होते ! खैर, अब यहाँ से लौटा जाय।" मैं समझ गया, यह उनकी ऊपरी बातें हैं। जिस दुर्निवार आकर्षण ने उन्हें अपने स्वजनों के स्नेह-बन्धन से खींचकर इस पथ पर लाया है, वह 'आगे चलो, आगे चलो' मंत्र से अनुप्राणित कर सैकड़ों दुःख-कष्टों के भीतर से भी उन्हें कैलाशपति के पदप्रान्त में पहुंचा ही देगा।

उषाकाल के अस्पष्ट प्रकाश में ही हमलोग निकल पड़े। आकाश घनघोर बादलों से आच्छन्न था। रात को पानी बरसा था। इस समय भी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। परन्तु हमें आगे चलते ही जाना था। रास्ता बिलकुल सूनसान, चारों ओर घने पाईन (चीड़), ओक आदि वृक्षों का वन, पेड़ों की डालियों में चिड़ियों की निद्राजटित चहचहाहट तथा जंगली हिरणों का आर्तनाद सुनाई पड़ता था। बाघ का पता पाने पर या बाघ के पीछा करने पर वे हरिण उसी तरह चिल्लाते हैं। भालुओं के तारस्वर चीत्कार से वनभूमि काँपने लगी। साँप की गति की तरह टेढ़े-मेढ़े पथ को दुरारोह पर्वतों ने घेर रखा है। पहाड़ के तने से लगकर हमलोग चल रहे थे। नीचे अथाह गिरिखात की ओर ताकने से हृदय काँप उठता है ! कहीं १००० फुट नीचे अथाह गिरिखात, अन्धकार गह्वर में छिपा हुआ था; और चारों ओर बाघ-भालुओं से पूर्ण घना जंगल था। बड़े-बड़े चीड़ वृक्ष चुपचाप प्रहरी के समान मानो हमलोगों के जाने आने की गति को देख रहे हों !

सुबह ठण्ढक में चलने से थकान कम होती है। ६००० फुट ऊपर हमलोग चढ़ आये थे। पाँच मील रास्ता तय करके, जब हम 'बनलेक' आये

तब तक प्रातःकालीन अरुण-किरण-छटा दसों दिशाओं में फैल चुकी थी। निद्रोत्थित वृक्षों ने मानो मुसकराते हुए प्रकाश के देवता को वरण कर लिया था। वनलेक से एक पथ सीधे चम्पावत और लोहाघाट होकर पिथौरागढ़ की ओर गया है, वही जिलाबोर्ड का रास्ता है। दूसरा वन-विभाग का पथ मायावती के पास से अल्मोड़ा तक गया है।

कुछ विश्राम लेकर मायावती के रास्ते हमलोग धीरे-धीरे चलने लगे। पहिले ही एक खड़ी चढ़ाई पड़ी जिसका अन्त प्रतीत नहीं होता था। क्रमशः हमलोग ऊपर चढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद ही पथ के पास पेड़ या पत्थर पकड़कर खड़ा होना पड़ता था, क्योंकि पैर चलना नहीं चाहते थे। चीड़, रोडडेन्ड्रम, ओक, बाँज आदि वृक्षों के घने वन के भीतर से निर्जन संकीर्ण पथ था। मनुष्यों के आवास-स्थल का चिह्न भी कहीं नहीं दिखाई पड़ा। दिन में भी ऐसे रास्ते से चलने में रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बाघ-भालुओं का निवास-स्थल! कहीं जरा भी शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। एक अव्यक्त निबिड़ नीरव माधुर्य से पर्वतीय प्रदेश परिव्याप्त था। प्रायः छाया-शीतल तीन मील पथ का अतिक्रमण करने के बाद वन के अन्तिम प्रान्त से बहुत दूर विस्तृत हिमाद्रि के चिरतुषारमण्डित उत्तुङ्ग शिखर देखकर हमलोग मुग्ध हो गये! शुभ्र हिमानी सूर्य-किरण-सम्पात से हेमवर्ण-रंजित है। वह दृश्यपट इतना सुन्दर है कि देखते ही मन तन्मय हो जाता है, मानो किसी स्वर्गीय कलाभिज्ञ ने युग-युगान्तरों से कठोर साधना के द्वारा इस अपार्थिव सौन्दर्य-सौध को गठित कर लिया है! देखते देखते हृदय की अतृप्त वासना बढ़ती जा रही थी। नेत्र और भी देखना चाहते थे उस विमल शोभा को,

और मन चाहता था कि अपने चित्त-पट पर उसकी प्रतिकृति चिरकाल के लिए अङ्कित कर ले !

मायावती पहुंचने के एक मील पहले ही स्वामी दुर्गात्मानन्द तथा आश्रम के दो संन्यासियों से भेंट हो गयी। वे लोग हमारे स्वागत तथा साथ ले जाने के लिए आ रहे थे। स्वामी दुर्गात्मानन्द भी हमारी कैलाश यात्रा के एक साथी हैं। दूर से ही परस्पर अभिनन्दनसूचक उच्च 'जै कैलाशपति की जै' ध्वनि से पर्वतीय प्रदेश प्रतिध्वनित होने लगा !

दिन के लगभग १२ बजे के समय एक पर्वत शिखर के अन्तिम प्रान्त से थोड़ा मोड़ घूमते ही सामने नीचे की ओर मायावती आश्रम दिखाई पड़ा। श्यामल आवेष्टनी के भीतर ऊँचे-नीचे स्तरों में सजाये हुए आश्रम के भवन बहुत ही सुन्दर प्रतीत होने लगे। आश्रम में प्रवेश करते ही आश्रमवासियों ने हमें गाढ़ालिंगनपाश से आबद्ध किया।...

६७०० फुट ऊँचे तपोभूमि हिमालय के अति एकान्त प्रदेश में, अद्वैत साधना के केंद्ररूप से इस अद्वैत आश्रम की प्रतिष्ठा श्री स्वामी विवेकानन्दजी ने की थी। १८९९ ई० में आश्रम स्थापना के समय से ही स्वामीजी के पाश्चात्य शिष्य सेवियर-दम्पति के प्रचुर अर्थव्यय तथा अत्यधिक सेवा द्वारा यह प्रतिष्ठान गुरुभक्ति के अमर स्तम्भ में परिणत हुआ है। उनकी पुण्य स्मृति आज भी आश्रम में सर्वत्र विराजमान है। दीर्घकालीन क्रमोन्नति के फलस्वरूप आज यह अद्वैताश्रम एक सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतिष्ठान है। साधन भजन द्वारा स्वकीय आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता विधान के अतिरिक्त आश्रम के संन्यासियों ने रामकृष्ण विवेकानन्द युगवाणी अंग्रेजी भाषा द्वारा अनेक ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित करके संसार के मनुष्यों को रामकृष्ण-भावधारा

के साथ परिचित कराया है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिष्ठित अंग्रेजी मासिक पत्र 'प्रबुद्ध भारत' भी इसी आश्रम से प्रकाशित होता है। आश्रम के कार्यकर्ताओं के द्वारा विगत ३० वर्षों से परिचालित दातव्य चिकित्सालय इस समय एक देशीय राजा के अनुदान से समस्त अल्मोड़ा जिलेभर में सर्वोत्कृष्ट चिकित्सालय और अस्पताल रूप से परिगणित हुआ है।*

---

* स्वामी विवेकानन्दजी ने नर-नारायण सेवा के लिए १८९७ ईस्वी में जिस 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की थी वह प्रतिष्ठान सारे विश्व में विभिन्न जन-हितकर कार्यों के माध्यम से जातिवर्ण निर्विशेष मानव-जाति की विविध सेवा कर रहा है। बेलुड़ मठ से 'जेनरल सेक्रेटरी' के द्वारा १९६२ ई० के मई मास में प्रकाशित १९६०-६१ साल की कार्य-विवरणी में दिखायी पड़ता है कि वर्तमान में भारत और भारतेतर देशों—पूर्वी पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, सिंगापुर, फिजी, मारीशस, फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड, इंगलैण्ड, अर्जेन्टाईना, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में रामकृष्ण मठ और मिशन के १३८ स्थायी केन्द्र और २२ उपकेन्द्र हैं। उपकेन्द्र भी रामकृष्ण संघ के संन्यासियों द्वारा परिचालित हो रहे हैं।

उन केन्द्रों से उस साल चिकित्सा विभाग में १२ अस्पतालों के अन्तर्विभाग में २७,८१६ रोगियों की चिकित्सा हुई, और ६८ दवाखानों में ३७,०२,९६६ रोगियों को दवा दी गई। शिक्षा विभाग में १७६ शिक्षाकेन्द्रों से ४३,४०२ छात्रों तथा १८,१२९ छात्राओं ने शिक्षा प्राप्त की है।

इसके अतिरिक्त ग्रामोन्नयन, नारी कल्याण और श्रमिकों तथा अनुन्नत श्रेणी के लोगों में व्यापक सेवा-कार्य किया गया है। ग्रन्थ प्रकाशन विभाग से अंग्रेजी तथा भारत के प्रधान आठ भाषाओं में श्रीरामकृष्ण भावधारा और भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए अनेक

चार दिन महान् आनन्द से मायावती में बिताये । आश्रमवासियों से हम लोगों ने यथेष्ट आन्तरिकता और उत्साह पाया । नवीन अनुप्रेरणा लेकर ज्येष्ठ के २६ तारीख को दोपहर के भोजन के बाद हम आठ व्यक्ति मायावती से कैलाशयात्रा पर निकल पड़े । सामान 'बनजाड़ा' घोड़ों की पीठ पर लाद दिया गया। सभी सहयात्री घोड़ पर सवार होकर चले । मैंने आरम्भ से ही संकल्प किया था कि पैदल कैलाश दर्शन को जाऊँगा । सबकी इच्छा के विरुद्ध यातायात का सारा मार्ग ही मैंने पैदल तय किया था। तेरह मील यात्रा के बाद आज 'छेरा' में रात बितानी होगी । प्रथम तीन मील उतराई पथ का अतिक्रमण करने के बाद ही 'लोहाघाट' नामक अल्मोड़ा जिले का एक तहसीली शहर है। सरकारी कचहरी, वन विभाग का दफ्तर, कलक्टरी, जिला बोर्ड का अस्पताल, अंग्रेजी मिडल स्कूल, डाक-घर, तार-घर, बड़ा-बाजार तथा बहुत से रहने के मकान हैं । सभी मकान पत्थर के बने हैं। शहर छोटा होने पर भी बहुत सुन्दर है। पहाड़ के तने पर ऊँचे-नीचे स्तरों में सज्जित पहाड़ियों के मकान देखने में चित्र के समान प्रतीत होते थे। कुछ दूर पर पहाड़ की तराई में एक छोटा सा शिवमंदिर है । लोहाघाट पार होने के बाद से ही वर्षा आरंभ हुई । रास्ता पहाड़ी, पथ

ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। पाश्चात्त्य देशों में विशेष रूप से भाषण, क्लास, आलोचना और ग्रन्थ प्रकाशन के माध्यम से धर्म और संस्कृति के प्रचार का कार्य किया गया है। इस तरह स्वामीजी ने मानव जाति के कल्याण के लिए जिस रामकृष्ण मठ और मिशन रूप यन्त्र को चालू कर दिया था वह अग्रगति के रास्ते पर चल पड़ा है और उन्होंने कहा था—"इस यन्त्र को कोई रोक न सकेगा।"

(हिन्दी संस्करण की पादटीका — ग्रन्थकार)

की दृष्टि से चौड़ा और समतल था । दोनों ओर चीड़ और देवदारु का वन था । घोंड़े, खच्चर और मनुष्य सभी चल रहे हैं, मानो सभी किसी दैवबल से बलीयान् हैं । कहीं विश्राम न लेकर तेरह मील के अन्त में 'छेरा' पड़ाव में शाम को ६ बजे पहुंचे । हृदय में अदम्य उद्दीपन, अन्तर में पथ-यात्रा का दुर्जय संकल्प था । घने चीड़ जंगल के भीतर डाक-बंगला में आश्रय लिया गया । इस स्थान की ऊँचाई ४२०० फुट है । क्रमशः सन्ध्या हो गई । दिगंत की सीमा के अन्त में तुषार-मंडित एक पर्वत-शिखर अस्तगामी सूर्य की किरणों से लाल हो गया । एक सहयात्री सानन्द गान करने लगे—

"सुन्दर तोमार नाम दीनशरण हे ।
बरिषे अमृतधार, जुड़ाय श्रवण, ओ प्राणरमण हे ।।
एक तव नाम धन, अमृत-भवन हे ।
अमर हय शेइ जन, जे करे कीर्तन हे ।।
गभीर विषादराशि निमिषे विनाशे ।
जखनि तव नाम सुधा श्रवने परशे ।
हृदय मधुमय तव नाम गाने, हय हे हृदयनाथ चिदानन्दघन हे ।।"

अर्थात्—सुन्दर तुम्हारा नाम, हे दीनशरण । अमृत की धारा बरस रही है, कान आनन्द पूरित हो गये । हे प्राणरमण ! एक ही तुम्हारा नाम धन अमृत भवन है । जो कीर्तन करता है वही अमर हो जाता है । जभी तुम्हारी नाम-सुधा कानों में पहुंचती है तभी गम्भीर विषाद पुञ्ज क्षण भर में विनाश प्राप्त हो जाता है । तुम्हारे नाम गान से हे हृदयनाथ, हे चिदानन्द-घन, मेरा हृदय मधुमय हो जाता है ।

गान में जो व्यंजना थी मानो वह दसों दिशाओं में तथा अन्तःकरण में खिल उठी।

एक पहाड़ी सहयात्री अतिसार रोग से आक्रान्त हो गया। रात उत्कण्ठा में बीती, किन्तु ३ बजे के बाद ही यात्रा की तैयारी में सब लोग लग गये। बीस मील पहाड़ी पथ तय करके आज ही पिथौरागढ़ पहुंचना होगा। इस कारण भोर के अन्धकार ही में हमलोग निकल पड़े। हवा ठण्डी थी, आकाश मेघाच्छन्न था, तेज हवा के साथ बूँदा-बाँदी हो रही थी। बैठे रहने से काम न चलेगा। आगे चलना ही होगा। दोनों ओर ऊँचे पर्वतों के भीतर से संकीर्ण पथ क्रमशः अधिक उतराई। वह इतनी खड़ी कि घुड़सवार घोड़े पर नहीं चल सके सभी पैदल चल रहे हैं। प्रायः ४ मील इसी ढंग की उतराई—सरयू नदी के किनारे तक उतर आयी है। दो पर्वतों को विदीर्ण कर भीमगर्जन के साथ सरयू नदी का जल तीव्र वेग से बहता जा रहा है। उसी के किनारे-किनारे पहाड़ के तने पर से पथरीला सँकरा पथ। पत्थरों से ठोकर खाते हुए हमलोग चल रहे हैं। नदी के ऊपर का १५० फुट लम्बा झूला पुल पार होकर कुछ दूर आने के बाद ही चढ़ाई शुरू हुई। डा० दे महाशय परेशान होकर बोल उठे—"इतनी चढ़ाई-उतराई की बला क्यों? सीधा रास्ता होने से आराम होता।" लगभग हजार फुट की चढ़ाई समाप्त कर ऊपर पहुंचते ही कुछ दूरी पर सरयू और रामगंगा का संगम-स्थल दिखलाई पड़ा। प्रातःकालीन स्वर्णालोक से चारों दिशायें हास्यमय हैं। नदी के स्रोत-जल में वह स्वर्ण-रश्मि प्रतिफलित हो रही है। नयनाभिराम दृश्य!

उस स्थान का नाम रामेश्वर प्रयाग है। पहाड़ी प्रदेशों के लोग इस

प्रयाग को महान तीर्थ समझकर दूर-दूर से शव लाकर यहाँ दाह संस्कार करते हैं और संगम में अस्थि-विसर्जन करते हैं। उस समय भी एक शव की दाह-क्रिया हो रही थी।

न जाने किस अनजान आकर्षण से हमलोग अन्तहीन पथ पर उदासीन चल रहे हैं। चारों ओर वृक्ष-लताहीन प्रस्तरमय पर्वतमाला। नग्न पर्वत की इतनी सुन्दरता हो सकती है, बिना देखे कल्पना भी नहीं की जा सकती। देख देखकर नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे। हमलोग आगे चलने लगे। कहीं अथाह गिरि-खात—दृष्टि जहाँ धूमिल हो जाती है, वहीं जा मिला है। फिर कहीं १॥ हजार फुट नीचे एक छोटी पहाड़ी नदी के किनारे संकीर्ण उपत्यका के हरे खेतों से परिवेष्टित छोटा गाँव, मानो संसार के साथ सभी संयोग छिन्न-भिन्न करके इस पर्वत के सूनसान क्रोड़-स्थल में बसा है।

पहाड़ी स्त्रियाँ पीठ में बच्चों को बाँध कर तथा सिर पर भारी बोझा लिये चल रही हैं। कौतूहलमय दृष्टि से वे हमें देख रही हैं। पहाड़ों में स्त्रियाँ अधिक परिश्रमी हैं। गृहस्थी के कामकाज के अतिरिक्त वे खेती का काम भी करती हैं। पालतू पशुओं के लिए जंगलों से घास-पत्ती काट लाती है, कम्बल बुनती हैं, घी तेल तैयार करती हैं, धान कूटती हैं अर्थात् ऐसा कोई कार्य ही नहीं जो कि वे नहीं करतीं। पहाड़ी स्त्रियों में पर्दे की तो प्रथा ही नहीं है। वे स्वतंत्र प्रकृति की हैं। पुरुष उनकी अपेक्षा अल्प परिश्रमी हैं। इस कारण पहाड़ों पर स्त्रियों की कदर अधिक है।

ग्यारह मील चलने के बाद हमलोग 'गुरना' पहुंचे। यह गाँव ब्राह्मण-प्रधान तथा उन्नत है। बहुत सी दुकानें, डाकघर, विद्यालय और एक पांथ-निवास (चट्टी) भी है। ग्रामीण लोग सभी कृषि-जीवी हैं। इस प्रान्त में

ब्राह्मण भी हल चलाते हैं और खेती के सभी कार्य अपने हाथ से करते हैं। कुछ उच्च श्रेणी के ब्राह्मण खेती का काम नहीं करते। गुरना ग्राम में जल का बहुत कष्ट है, विशेष रूप से गर्मी के दिनों में। प्रायः आधी मील नीचे एक ही छोटा झरना है, उससे जल ढोकर लाना पड़ता है। इस स्थान की ऊँचाई ४८२५ फुट है। भोजन के बाद विश्राम का अवकाश नहीं था और भी नौ मील चलना था। हमलोग धीरे-धीरे पथ पर उतर आये। केदारनाथ, बद्रीनारायण या उत्तराखण्ड के अन्यान्य तीर्थ-मार्गों की तरह इस पथ पर कोई पड़ाव नहीं है। यात्रियों की संख्या बहुत मामूली है। इस कारण पथिकों की तरह यात्रियों को किसी गाँव में या पथ के पास की दुकान में रात बितानी पड़ती है।

जितना ही पिथौरागढ़ की ओर हम अग्रसर होते चल रहे थे पर्वतमाला की ऊँचाई भी क्रमशः घटती जा रही थी। असमान पर्वत-शिखरों के बदले लहरों के समान पर्वतमाला बहुत सुन्दर दिखायी पड़ने लगी। पिथौरागढ़ की प्राकृतिक सुन्दरता की बात सुनी थी, किन्तु वह ऐसी अनुपम है, इसकी कल्पना भी नहीं की थी। अरण्य की सुस्निग्ध श्यामलिमा, वन-मल्लिका की मधुर गन्ध, पुष्प-भाराक्रान्त वनगुलाबों का वितान, मधुपान से मत्त भ्रमरों का गुञ्जन, पक्षियों का सुमधुर गान, मानो वसन्त का समारोह है! किन्तु हमें आगे चलना होगा। एक सहयात्री ने घोड़े से उतरकर कहा—"इसे तो छोड़ जाने की इच्छा नहीं होती।" कुछ देर बैठ गये। अवाक्, मुग्ध दृष्टि से मानो प्राकृतिक सुन्दरता का पान करने लगे।

सूर्य क्रमशः पश्चिम आकाश में ढल गया। धूप आरामदायक थी, आकाश नीलकान्त मणि की तरह उज्ज्वल था। दूर पर आसपास के

पहाड़ों के तने पर चलने वाले पालतू पशुओं के गलघण्टों का ऐक्यतान वादन सुनाई पड़ता था और गड़ेरियों के बालकों के विचित्र अपरिचित सुर का गान भी सुनाई देता था। सभी कुछ पार कर चल रहे हैं। लगभग एक मील दूर से पिथौरागढ़ का दुर्ग दिखाई पड़ा, जो पर्वत के पादमूल में अवस्थित है। वह दुर्ग कुछ बड़ा था। अनेक वर्षों पूर्व यह स्थान नैपाल राज्य का अंश था। पिथर वंशीय एक नेपाली सरदार ने इस स्थान पर अधिकार करके पर्वत के ऊपर दुर्ग बनवाया था और अपने वंश के नामानुसार उस स्थान का नाम रखा था। अंग्रेज सरकार ने नैपाल राजवंशियों को हराकर उस स्थान को भारत में मिला लिया था।

अब हम समतल स्थान से ही चल रहे हैं। दोनों ओर धान के खेत। दूर तक उपज का प्राचुर्य देखकर नेत्र परितृप्त होते हैं। पिथौरागढ़ बहुत उपजाऊ स्थान है। यहाँ का सुगंधमय महीन बासमती चावल प्रसिद्ध है। सन्ध्या के पूर्व पिथौरागढ़ पहुँचकर एक धर्मशाला के दूसरी मंजिल पर रात के लिए आश्रय लिया गया।

आज सभी लोग थके हुए हैं और खासकर घोड़े भी। इस कारण दूसरे दिन प्रातः न निकलना ही स्थिर हुआ। यात्री लोग महान् तृप्ति का निःश्वास छोड़कर आराम करने लगे। सुबह शहर देखने को निकले। यह तहसीली शहर छोटा होने पर भी अति सुन्दर है। ऊँचाई ५४५० फुट है। प्रायः ३५०० आदमियों का निवास है। चारों ओर ही सम्पन्न ग्राम है। पहाड़ की तुलना में इस स्थान को जन-बहुल कहा जा सकता है। बाजार, कचहरी, खजाना, वन-विभाग का बंगला, म्युनिसिपल कार्यालय, अस्पताल, उच्च अंग्रेजी

विद्यालय, तारघर संयुक्त डाकघर, डाक बंगला, टेनिस कोर्ट आदि सब कुछ हैं। ईसाई मिशनरियों का यह एक बड़ा केन्द्र है। बहुत से मकानों के ऊपर बेतार-एरियल भी लगा हुआ है। पिथौरागढ़ ही इस प्रान्त का अन्तिम तारघर है।

अन्यान्य स्थानों के पर्वतीय अधिवासियों की तरह पिथौरागढ़ के लोग भी अत्यन्त युद्ध-प्रिय हैं—खासकर क्षत्रिय लोग। नाटे, परन्तु बहुत हट्टे-कट्टे, मंगोलियन ढंग के या नैपाली गोरखों की तरह के हैं। गत विश्व-महायुद्ध के समय अंग्रेज सरकार ने पिथौरागढ़ से इतने अधिक मनुष्यों को सेना विभाग में लिया था जिसके फलस्वरूप १८ से ५० वर्ष तक के समर्थ लोग कदाचित ही दिखाई पड़ते थे। यहाँ तक कि उन दिनों खेती बारी करने योग्य मनुष्य की कमी हो गयी थी। फलस्वरूप उस प्रान्त में खाद्य वस्तुओं का भीषण अभाव हो गया था।

भोजनादि के बाद हम 'कानाली चीना' की ओर रवाना हुए। चौदह मील का पड़ाव, मामूली चढ़ाई-उतराई, प्रखर धूप, चारों ओर सन्नाटा है। दूर पर्वतों के तने पर सफेद मकान बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। पार्वत्य पृष्ठ-भूमि में एक साधारण कुटिर भी कैसा सुन्दर लगता है। एक सहयात्री का अतिसार बढ़ता ही चला, औषध से कोई फल नहीं हो रहा था, सभी चिन्तित हो पड़े। यात्रा के प्रारंभ में ही ऐसी विपत्ति! अन्त तक क्या होगा इसका निर्णय न कर सकने से उत्साह क्रमशः दबने लगा।

दो पहाड़ी पथिकों से भेंट हुई। वे कंधे के दोनों ओर बोझ लटकाकर लिये जा रहे हैं। योगी देख कर उन्होंने नमो नारायण कहकर नमस्कार

किया। उन्होंने पिथौरागढ़ से धान खरीद लिया है। विपरीत दिशा में दो मील ऊपर एक पर्वत पर उनका मकान है। दुर्गादत्त और रतनमणी उनके नाम हैं तथा दोनों ब्राह्मण हैं। वे ताराप्रसन्न बाबू से सिगरेट पाकर बहुत खुश हुए। दुर्गादत्त प्रौढ़ और अधिक कौतूहली थे, उन्होंने पूछा—'बाबा जी, कहाँ जायेंगे।'

"कैलाश तीर्थ में। शिवजी के दर्शन करने जा रहा हूँ।"

"कहाँ? कैलाश? वहाँ जाकर मनुष्य लौट नहीं आता। हुनिया लोग (तिब्बती) जादू जानते हैं, जिससे वे यात्री को भेड़ बकरी बनाकर रखते हैं। नहीं तो शिव जी के भूत प्रेत उनको मारकर अपने साथी बना लेते हैं। बाबा जी, मैं कहता हूँ, मत जाओ, दादी जी से सुना है कि हमारे गाँव से कुछ लोग गये थे। एक भी लौटकर नहीं आया।"

चुपचाप सुनते जाने के सिवाय कोई दूसरा उपाय ही नहीं था। एक सहयात्री ने गम्भीर भाव से कहा--"देखिये, हमारी अवस्था क्या होगी? अन्त तक हुनिया के भेड़ बकरी बनकर रह जाना न पड़े।"

अब एकदम खड़ी चढ़ाई मिली, नीचे एक छोटा सुन्दर गाँव था, दोनों ओर अखरोट का जंगल। रास्ते में एक मंदिर देखकर देव दर्शन के लिये गये। छोटा सा मंदिर, अत्यन्त प्राचीन, मंदिर के चारों ओर तथा भीतर भी दीनता का साम्राज्य। सेवा पूजा का कोई सुप्रबन्ध नहीं था। देव विग्रह के प्रति उपेक्षा के फलस्वरूप मंदिराभ्यन्तर अस्वच्छता से परिपूर्ण है। मनुष्य के अन्तः-करण की सारी मलिनता और कलुषता मानो देवपूजा के उपचार हैं। मंदिर के भीतर का भाग निविड़ान्धकाराच्छन्न हैं। कुछ देर बैठकर प्रार्थना आदि

करके थोड़ी दक्षिणा चढ़ाकर भाराक्रान्त हृदय से हमलोग रास्ते में निकल आये। भारत के अनेक देव-देवियों के मंदिरों की संभवतः यही अवस्था है।

बिहार के किसी गाँव में तपस्यानिरत एक सन्यासी से गुड़ के सम्बन्ध में एक कथा सुनी थी कि शिवरात्रि के उपलक्ष्य में थोड़ा सा गुड़ खरीदने के लिए निकट की एक दुकान में जाकर गुड़ मांगने पर दुकानदार गुड़ रहते हुए भी देने में आनाकानी करने लगा। कारण पूछने पर उसने कहा—"क्या गुड़ अपने खाने के लिये लोगे?"

स्वामी जी—"नहीं, शिवपूजा के लिए आवश्यक है।"

"तो दे सकता हूँ। गुड़ के घड़े में एक चूहा मर कर पड़ा है। इस कारण आपके व्यवहार के अनुपयुक्त समझकर देने में मैं संकोच कर रहा था। शिवपूजा के लिये देने में कोई बाधा नहीं है।"

यह कैसा भीषण अधःपतन है। शायद इसी कारण भगवान श्रीरामकृष्ण काली की मूर्ति में चिन्मयी की पूजा करके भारत तथा जगत् को दिखा गये कि ज्ञान-कर्म-अष्टाङ्ग-योग द्वारा जिस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, देवविग्रह की आन्तरिक सेवा द्वारा भी वह अवस्था प्राप्त हो सकती है।

क्रमशः सूर्यदेव अस्ताचल की ओर उतर गये। पालतू पशु धीर गति से घर की ओर चल रहे हैं। कहीं पेड़ों में पक्षियों का कूजन सुनाई पड़ने लगा। बायीं ओर चीड़ के वन में मृदु वायुप्रवाह से एक प्रकार की गुंजन ध्वनि होने लगी। हमलोग भी गोधूली के म्लान अंधकार में 'कानाली चीना' में आ पहुँचे। पास ही एक गाँव दिखाई पड़ा। बहुत प्रयत्न करने

पर भी रुग्ण सहयात्री के लिए थोड़ा सा दूध या दही जुटाना संभव न हुआ। कल हमें आस्कोट जाना होगा, संभव हुआ तो और भी आगे। बहुत लम्बा पड़ाव है—बीच में एक प्राणान्तकारी तीन मील की खड़ी चढ़ाई है। भोजनादि किसी तरह समाप्त कर झटपट सब लोग सो गये।

तड़के ही हमलोग निकल पड़े। आकाश मेघाच्छन्न है। ऊषा की रागिणी की तरह पक्षियों का कूजन सुनाई पड़ता था। निःस्तब्ध जंगलों के भीतर से चढ़ाई का पथ। वायु, मृदुमन्द और शीतल। बहुत आराम से ही ऊपर चढ़ने लगे। लगभग ७ बजे घन मेघजाल को भेद कर सूर्य-किरणों की एक झलक निकल आयी, मानो देवदेव शिव के तृतीय नयन की ज्योतिष्छटा! अब सीधे उतराई पथ में कुछ दूर आकर एक पहाड़ी नदी के किनारे सब लोग बैठकर थोड़ा विश्राम लेने लगे। इतने में भोटिया यात्री के एक दल से खबर मिली कि 'लिपुलेक' पास में बहुत बरफ रहने पर भी कुछ आदमियों का चलना शुरू हो गया है। इस खबर से सभी आनंदित हुए। लिपुलेक दर्रा, तिब्बत का प्रवेश-द्वार है। *

---

* भारतभूमि से पश्चिम तिब्बत में प्रविष्ट होने के लिये १० प्रसिद्ध दर्रे या प्रवेश-द्वार हैं—

(१) टनकपुर या अलमोड़े से रवाना होकर आस्कोट और गर्ब्याङ के रास्ते लिपुलेक पास, ऊंचाई १७१६० (मतान्तर में १६७५०) फुट।

(२) अलमोड़े से रवाना होकर खेला के भीतर से 'दर्मा' पास, ऊंचाई १८५१० फुट।

(३) अलमोड़े से 'मिलाम' होकर 'उल्टाधुरा' पास, ऊंचाई १७६५० फुट और जयन्ती पास, ऊंचाई १८५०० फुट तथा 'कुङ्गरी बिङ्गारी' पास,

बहुत अधिक बर्फ गिरने से ६-७ महीने तक इस दर्रे में मनुष्यों ऊंचाई १८३०० फुट। इस मार्ग में एक पर एक ३ दर्रे लांघकर तिब्बत में प्रवेश करना पड़ता है।

(४) हरद्वार से बदरीनाथ के रास्ते जोशीमठ होकर 'नीति' पास १६६०० फुट है। नीति पास के ऊपर से आकाश साफ हो तो कैलाश का दर्शन होता है।

(५) जोशीमठ से भोटियों का नीति ग्राम होकर 'दामु-जामु नीति' पास है। ऊंचाई १६३५० फुट।

(६) जोशीमठ से दूसरे रास्ते 'होती नीति' पास है, ऊंचाई १६३९० फुट।

(७) हरद्वार से बदरीनारायण का दर्शन करके 'माना' पास है, ऊंचाई १७८९० फुट है।

(८) हरद्वार से उत्तरकाशी, उसके आगे गंगोत्तरी के रास्ते 'मुखबा' होकर 'जेलू खासा' पास (तिब्बती नाम है संचोकला), ऊंचाई १७४९० फुट।

(९) शिमला से प्रथम 'सिपकी पास' (भारत की अंतिम सीमा) १५४०० फुट लांघकर सिरिङ्ला पास १६४०० फुट। उसके आगे गारटोक (पश्चिस तिब्बत की राजधानी) १५१०० फुट पार कर तीर्थापुरी हाकर कैलाश।

(१०) काश्मीर, श्रीनगर होकर 'जूजीला' पास ११५७८ फुट और लद्दाख ११५३० फुट, उसके आगे टास्लाङ्ला पास, १७५०० फुट, पार कर गारटोक और उसके आगे कैलाश।

का यातायात बन्द रहता है। उस समय तिब्बत में प्रवेश या तिब्बत से निष्क्रमण दोनों ही असंभव है। गर्ब्याङ जाकर अनिर्दिष्ट काल के लिये हमें गिरिमार्ग खुलने की प्रतीक्षा में अब बैठे रहना नहीं पड़ेगा। अब जितनी जल्दी हो सके अग्रसर होना ही अच्छा है।

छोटी नदी को पार करते ही चढ़ाई शुरू हो गई। एक पर एक तान चढ़ाइयां हैं। डा० दे और मैं पहाड़ी भोटियों की तरह धीरे-धीरे चढ़ाई तय करने लगे, थोड़ी दूर जाकर खड़े हो जाते थे। प्यास से छाती फटने लगती थी, कहीं भी एक बूंद जल नहीं था। डा० दे की बोतल में जो थोड़ा जल था वह बहुत पहले ही खत्म हो चुका था। धीरे-धीरे घोंघे की तरह चढ़ रहे थे। धूप क्रमशः तेज होने लगी। डा० दे से अब चला नहीं जाता। लाठी पर सिर रखकर वह बैठ गये। मेरी भी वैसी ही दशा थी। संसार के सभी सुख-दुःखों का अन्त अवश्य ही है। सभी शान्त हैं, प्रायः मुमुर्षु अवस्था में चढ़ाई के अंतिम प्रान्त—पर्वत-शिखर आसकोट का राजमहल। परन्तु अभी भी लगभग पाँच मील दूर है। लंगड़ाते हुए किसी प्रकार अपने को खींचकर आसकोट गांव में आ पहुंचे।

ग्राम के प्रान्तभाग में ही वनविभाग का एक बंगला है। ग्रामवासियों की छोटी छोटी झोपड़ियों के पास से हम लोग चल रहे थे। यह मानो मूर्तिमती दरिद्रता की शोभायात्रा है। इस स्थान को छोड़कर आगे दिखाई पड़ा तिमंजिला राजमहल, जो आधुनिक ढंग से बना है। ऊपर रेडियो का एरियल लटक रहा था। सामने के छोटे मैदान के भीतर भारतीय झण्डा

सिर ऊंचा किये फहरा रहा था। सुदूर हिमालय के निर्जन प्रान्त में देश का झण्डा देखकर हृदय में आनन्द उमड़ने लगा। पथ का पता लेकर धर्मशाला की ओर हम लोग चलने लगे। दोनों ओर ही दरिद्रों की टूटी-फूटी कुटियां थीं। तिमंजिले राजमहल के पास ऐसी दरिद्रों की कुटियाँ बहुत ही अशोभन प्रतीत हो रही थीं, खास कर वर्तमान गणजागरण के दिनों में। धनी और निर्धन के बीच में इतना बड़ा व्यवधान देखकर चित्त भाराक्रान्त हो उठा।

पत्थर की बड़ी सी धर्मशाला थी। नीचे दुकानें थीं। जिनमें आवश्यक चीजें अधिक दाम में मिलती हैं। पास ही डाकघर है। कैलाश यात्रियों के कई दल अलमोड़े के रास्ते से आकर इसी धर्मशाला में टिके थे। राहगीर भी थे। बहुत कहने सुनने पर कोने का एक छोटा कमरा हम लोगों को मिला।

आसकोट गर्म स्थान है। ऊंचाई केवल ३००० फुट है। साग-भाजी फल-फूल प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं। कई दिनों के बाद थोड़ा स्वादिष्ट भोजन मिला। रुग्ण सहयात्री का अतिसार क्रमशः रक्तातिसार में परिणत हो गया। सभी लोग शंकित और चिन्तित हो पड़े। विश्राम और सुचिकित्सा-की आवश्यकता थी। दोनों का ही यहां अभाव था। हमारी इच्छा थी कि आसकोटमें जलपान और विश्राम करके और भी ६ मील आगे जाकर 'जौनजीबी' में रात्रिवास करेंगे। किन्तु सिङ्गली की चढ़ाई ने सब को अधमरा कर डाला और सहयात्री की ऐसी अवस्था देखकर आसकोट में रहना ही स्थिर हुआ।

आहार और विश्राम के बाद इस स्थान को घूमकर देखने के लिए निकले। ग्रामवासियों के फटे कपड़े, रुग्ण देह, रूखा चेहरा। बुरी हालत तथा अभाव की ताड़ना ने इनके देह मन को जर्जर कर डाला है—यह देख कर हृदय पीड़ित हो उठा।

किन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियों की अवस्था कुछ अच्छी है। तथाकथित नीच जाति के लोगों के दुःख की सीमा नहीं है। हिमालय में एक प्रकार के निम्न श्रेणी के हिन्दू हैं, जिन्हें उच्च वर्ण के लोग 'डोमरा' कहते हैं। वे बहुत कुछ दक्षिण भारत के 'पारिया' या 'पंचम' की तरह घृणित त्याज्य और अस्पृश्य हैं (पंचम का अर्थ है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त पंचम निकृष्ट वर्ण) इन डोमरों की संख्या सारे पर्वत-निवासियों में एक-चतुर्थांश है। इनकी दुर्दशा की सीमा नहीं है। एक ही झरने से इनको जल तक नहीं लेने दिया जाता। उचित दाम देने पर भी इन्हें एक बूंद दूध कोई नहीं देता। कुसंस्कार-जनित धारणा है कि डोमरों को दूध देने से गृहस्थों का महान् अकल्याण होता है—गाय-बछड़े मर जाते हैं, समाज में डोमरों का स्थान कहां तक नीचे है—बिना देखे उसकी धारणा भी नहीं होती।

आसकोट गाँव घूमकर देखते समय एक परिचित ग्राम-निवासी से भेंट हो गयी। एक साल पहले वह बीमार होकर श्यामलाताल अस्पताल में भरती हुआ था। हमें पाकर उसके आनन्द की सीमा न रही। अनेक प्रकार से वह हमें अपनी कृतज्ञता जताने लगा।

सन्ध्या के अनन्तर लखनऊ का एक कैलाशयात्री-दल धर्मशाला के आंगन में रात तक भजन कीर्तन करके सभी को बहुत ही आनन्द देता रहा। अनेक भजन उन लोगों ने गाये थे, परन्तु उसकी एक ही पंक्ति मुझे याद है—'ऐसी ही हरि, कर तू दास पर प्रीति।' बहुत चेष्टा करने पर भी उस भजन की अन्य पंक्तियां नहीं याद आयीं। अनेक वर्ष पहिले की एक सदृश घटना का स्मरण हुआ। बेलूर मठ के श्रीराम महाराज की एक बात याद आई। वह उन

दिनों मठ के लिये बाजार से साग-भाजी लाया करते थे। घुसुड़ी के बाजार से तरकारी आदि खरीदकर वह नौका से लौट रहे थे। माझी ने एक भजन गाया। वह उन्हें बहुत अच्छा लगा। मठ में लौट आकर स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज को बताया—'माझी ने गान गाया था, बहुत ही उत्तम गान, किन्तु याद नहीं आता।'

'एक पंक्ति भी याद नहीं ?' प्रेमानन्द जी ने पूछा।

'अंतिम पंक्ति ही याद है।'

'अच्छा तो उस अंतिम पंक्ति को ही बता दो।

'आमि आबोल ताबोल बोलते पारि।
शुधु बोलते नारि दुर्गा शिव।'

अर्थात्—हम इधर उधर की हजारों बातें भले ही करते हैं परन्तु 'दुर्गा' 'शिव' नामोच्चार बिलकुल नहीं कर सकते।

स्वामी प्रेमानन्द जी सुनकर उल्लास के साथ बोल उठे 'हाँ हाँ, वह एक पंक्ति ही यथेष्ट है, और प्रयोजन ही क्या है ? उसीसे सब कुछ सिद्ध हो गया।'

संध्या के समय कर्मक्लान्त शरीर-मन जब अवसन्न हैं उस समय गोधूली की निर्जनता में सहसा दूरागत वंशीध्वनि की तरह वह पंक्ति कानों में गूंजने लगी—"ऐसी ही हरि, कर तू दास पर प्रीति। हरि कर तू दास पर प्रीति।"

दूसरे दिन अंधेरा रहते ही हम सब लोग चल पड़े। उस समय भी नक्षत्र आकाश में चमक रहे थे। नूतन प्रभात-वायु से मानो हमारा नया जन्म हुआ। गत दिवस के श्रान्त हताश मनुष्य फिर नयी आशा के प्रकाश से

संजीवित होकर खरस्रोता नदी की तरह अग्रसर होते चल रहे थे। एक ही दिन में चौबीस मील पथ तय करके 'धारचुला' पहुंचना होगा। प्रथम तीन मील कंकड़मय उतराई पथ। एक सहयात्री ने कहा—"उतराई देखते ही छाती में धड़कन होने लगती है, फिर घुटने तोड़कर चढ़ाई करनी होगी। गौरीगंगा के पास आकर उतराई समाप्त हुई। गौरीगंगा छोटी पहाड़ी नदी, मिलान हिमवाह से निकलकर आगे कालीगंगा में मिली है। नदी के ऊपर लकड़ी का पुल पार करते ही चढ़ाई शुरू हुई। घुटने कांपने लगे। एक स्थान पर आकर रुकना पड़ा। ऐसी सँकरी पगडंडी पथ कि पहाड़ का तना पकड़कर बहुत धीरे-धीरे चढ़ रहे थे। बहुत सा स्थान तेज वर्षा से धंस गया था, नीचे ही नदी का तीव्र जलप्रवाह देखने से डर लगता था। आंख मूंदकर अग्रसर होते चल रहे थे। निकट ही कालीगंगा का भीम गर्जन सुनायी पड़ता था। चढ़ाई के ऊपर से नीचे गौरी और काली के संगम स्थल पर एक सुन्दर मंदिर दिखाई पड़ा। उस स्थान का नाम है—'जौनजीबी'। आम तथा अन्यान्य पेड़ों के घन श्यामल घेरे के भीतर मानो एक सुन्दर तपोवन है। भजन साधन के लिए बहुत ही उपयोगी स्थान है।

संगमस्थल के उस मंदिर को केन्द्रित करके आसपास के स्थानों की विस्तीर्ण रेती में, हर साल कार्तिक की संक्रान्ति से सप्ताहाधिक समय तक बड़ा मेला लगता है। जोहार दरमा, ब्यास और चौदास पट्टी से सैकड़ों भोटिये और नैपाल के कुछ व्यापारी उस मेले में अनेक रुपयों का व्यापार करते हैं। घोड़े, खच्चर, कम्बल, पशमीने, बकरे, भेड़ के चमड़े आदि की खरीद-बिक्री होती है। दूर-दूर से पर्वतीय लोग इस मेले में आवश्यक चीजों के खरीदने-बेचने के लिये आते हैं।

अब हम काली गंगा के किनारे-किनारे चल रहे थे। उस पार नैपाल का राज्य है। कालीगंगा अपने उत्पत्ति-स्थान लिपुलेक पास से बराबर भारत और नैपाल की सीमा निर्देश करते हुए समतल भूमि में आ गिरी है। साढ़े ग्यारह बजे 'बलुआ कोट' पहुंचे। रास्ते के किनारे एक ही दुकान थी। काली के हिमशीतल जल में स्नान कर हमारी ग्लानि जाती रही। थोड़ी सी खिचड़ी खाकर फिर रास्ते में निकल पड़े। प्रचण्ड तीव्र धूप मानो अग्नि-वृष्टि कर रही थी। छाया-रहित मार्ग में पसीने से तराबोर होकर हांफते हुए सब लोग चलने लगे। पहाड़ पर इतनी गर्मी हो सकती है इसका किसी को ज्ञान नहीं था, श्वास तक गरम हो गयी थी। पथ में कहीं एक भी झरना नहीं मिला, प्यास से छाती फटने लगी। २०० फुट नीचे थी काली नदी, किन्तु उतरकर जल पीना कठिन था। धूप की प्रखरता से चारों ओर का स्थान चमक रहा था।

पथ का अन्त नहीं, कष्ट का भी अन्त नहीं, ऐसा ही लगता था। रात के लगभग ८ बजे अन्धकार में 'धारचुला' डाक बंगले में आश्रय लिया। यहां पूरा एक दिन विश्राम किया। रक्तातिसार के रोगी को लेकर हम लोग बड़ी चिन्ता में पड़े थे। रोग क्रमशः बढ़ रहा था। वे बहुत ही दुर्बल हो गये थे। उनके लिए अभी भी लौटने का समय है। यहां से सभी घोड़े लोहाघाट तक लौट जायंगे। इनके साथ ही रुग्ण पहाड़ी यात्री को उसके घर भेज देने का तय हुआ।

दूसरे दिन भोर में वह यात्री रोते हुए घोड़ेवालों के साथ लौट चला। जाते समय गद्‌गद् कंठ से उसने कहा—'शिवजी की कृपा नहीं हुई, इस कारण इतनी दूर आकर भी मुझे लौट जाना पड़ा।' पहाड़ी यात्री लौट गया। तारा

प्रसन्न बाबू ने उदास भाव से कहा—'हाराधन के दस लड़कों की तरह एक-एक कर सभी खिसकते न जायं। शरीर की जो दशा और पथ की जो अवस्था है उससे अष्टवज्रों के सारे वज्रों का पतन न हो जाय।'

गत कई दिनों में हम लोग पहाड़ी रास्ते से ११४ मील चलकर आये हैं। गर्ब्याङ अभी भी ५५ मील दूर है। पथ का यह अंश बहुत ही संकरा और कठिन है। घोड़े नहीं चल सकते, सभी सामान कुली की पीठ पर ढोकर ले चलना होगा और सभी लोग पैदल चलेंगे। कण्डी में बैठकर जाया जा सकता है। कण्डी एक लम्बी टोकरी है, उसमें पैर लटकाये बैठना पड़ता है। एक मजदूर यात्री समेत उस टोकरी को पीठ में बांध कर ढो ले जाता है। कंडी में जाने से चलने का कष्ट कुछ घट सकता है। किन्तु उसमें आराम नहीं है। कण्डी में जाने के लिए कोई राजी नहीं हुआ। बोझ ले जाने के मजदूर भेजने के लिए हम लोगों ने मायावती से ही 'खेला' के पोस्टमास्टर को लिखा था। अग्रिम रुपया भी भेजा था। यहां एक दिन के विश्राम के अवकाश में हम लोगों ने वस्त्र तथा देह का बहुत कुछ संस्कार कर लिया।

'धारचुला' एक बड़ा गांव है। काली नदी के किनारे-किनारे लोगों की बस्ती है। यहां जिला बोर्ड का अस्पताल, माध्यमिक विद्यालय, डाकखाना, ईसाई प्रचारकों का एक बड़ा केन्द्र, डाक बंगला तथा बहुत से सम्पन्न लोगों का निवास है। ऊंचाई ३००० फुट। स्थान यथेष्ट गर्म है। प्रचुर मात्रा में आम, केला, अमरूद आदि फल उत्पन्न होते हैं। व्यास और चौदास पट्टी के भोटियों का यह शीतनिवास है। धारचुला के दूसरे पार काली के किनारे नैपाल सरकार की कचहरी, तहसील, जेलखाना,

खजाना और एक छोटा सेना-निवास है। नैपाल राज्य में प्रवेश करने की यह एक घाटी है। एक लेफ्टिनेन्ट के आधीन ५० सुसज्जित जवान बारहों महीने इस घाटी का पहरा देते हैं। २-३ मोटी रस्सियां नदी के इस पार से उस पार तक लटक रही हैं। उन्हीं की सहायता से यहां के लोग थोड़ा बहुत सामान पीठ में बांधकर लटकते हुए एक अनोखे ढंग से उस पार जाते हैं। नैपाल की ओर कचहरी के पास के घाट में ३-४ छोटी-छोटी नावें भी बंधी रहती हैं।

विश्राम के द्वितीय दिन—आषाढ़ ३ रविवार १० बजे तक बोझ ढोने वाले मजदूर खेला से आ गये। लम्बे मार्ग में एक मजदूर लगभग तीस सेर बोझ ले जा सकता है। दोपहर के बाद ही खेला की ओर हम लोग रवाना हुए। दस मील का रास्ता था। किन्तु अन्तिम भाग में विकट चढ़ाई थी। दो मील चलने के बाद ही तपोवन मिला, काली नदी के ठीक ऊपर ही। बहुत ही मनोहर स्थान है। कुछ साल पहले यहां रामकृष्ण मिशन के दातव्य औषधालय तथा निःशुल्क विद्यालय थे। आजकल मिशन के अधिकारियों ने यहां का काम बन्द करके आश्रम को जिला बोर्ड के हाथ में दे दिया है। यह स्थान बहुत ही उपजाऊ है। नदी के किनारे से पहाड़ की ढाल तक खेती होती है। पर्वत के तने पर से संकरा पथ, बलुआ पत्थर, कहीं-कहीं रास्ता तंग होकर हाथ भर ही रह गया है। प्राण हाथ में लिये ही चलना पड़ता है। सबसे अधिक कष्ट अरुण बाबू को हो रहा था। वह दस कदम आगे जाकर ही बैठ जाते थे।

दूर पर एक छोटा गांव दिखाई पड़ा। थोड़े से घर, मानो चित्रपट पर अंकित कुछ मकानों की छाया थी। हम लोग क्रमशः ऊपर की ओर चढ़ने

लगे। नदी के उस पार बहुत ही मनोरम शोभा सूर्य के प्रकाश से चमक रही थी। पर्वत प्राचीर हमारी प्यासी दृष्टि को अब रोक नहीं सकते थे। मुग्ध दृष्टि ने प्रकृति के स्निग्ध अवकाश के भीतर अपने को खो दिया है। हम बराबर नदी के किनारे-किनारे चलते जा रहे थे। कहीं कहीं चार-पांच सौ फुट नीचे गरजती हुई नदी बिजली के वेग में बहती जा रही थी। पर्वत के तने के साथ नदी की शक्ति-परीक्षा रोमाञ्चकर है। पथ बहुत ही संकीर्ण है। एक पैर भी फिसल गया कि काली गंगा के अगाध जल में सलिल-समाधि प्राप्त हो सकती है। अन्तिम दो मील की कठिन चढ़ाई आ गयी, सन्ध्या के कुछ पूर्व खेला के प्रताप सिंह की दुकान के पास एक खपरैल के मकान में हम लोग टिक गये। बोझ ढोने वाले मजदूर खेला के आसपास के रहने वाले हैं। पता चला कि दूसरे दिन भोर में आ जायेंगे। उस दिन रात को रसोई की झंझट न करके प्रताप सिंह की दुकान से रोटी-तरकारी मंगवा ली गयी।

हमलोग क्रमशः बर्फ के राज्य की ओर अग्रसर होते चल रहे थे। खेला में रात को बहुत ही ठण्ढक थी। स्थान की ऊंचाई ५५०० फुट है। चारों ओर बहुत ही ऊँची पर्वत-मालायें थीं। खेला ग्राम एक पहाड़ के शिखर पर स्थित है। ग्राम सम्पन्न तथा बहुत दूर तक फैला हुआ है। यहां का घी मशहूर है। हमलोगों ने पहले ही पोस्ट मास्टर के पास आवश्यक घी खरीद रखने के लिए रुपये भी भेज दिये थे। ग्राम के भीतर ही डाकघर, बहुत सी दुकानें, एक धर्मशाला, विद्यालय और एक वैद्य भी हैं। स्थानीय लोग प्रायः सभी खेतिहर हैं। सभी के खेत हैं। हर वर्ष कैलाश यात्रियों के आने जाने से ग्रामीण लोगों को अच्छी आमदनी हो जाती है। यहां से तिब्बत जाने के

दो पथ हैं—एक दरमा पास लांघकर और दूसरा लिपुलेक के भीतर से पश्चिम तिब्बत में पहुंचा है। हमलोग दूसरे पथ से जायँगे। पता चला कि पहले ही यात्रियों के कई दल आगे जा चुके हैं।

दूसरे दिन अपने वादे के अनुसार एक भी मजदूर न आया। इधर सामान बिना लिये जाना भी संभव नहीं था। दौड़कर मैं पोस्ट मास्टर के घर पहुँचा। इधर-उधर पता लगाया गया, परन्तु फल कुछ न हुआ। सहयात्री लोग कृत्रिम क्रोध प्रकट करने लगे, किन्तु भीतर ही भीतर सभी प्रसन्न थे, बिछौनों पर लेटे-लेटे वे लोग करवट बदल रहे थे। वह दिन खेला ही में बिताना पड़ा। तीसरे पहर चारों ओर थोड़ी दूर टहल आये। शीत के समय खेला में इतनी अधिक वर्फ गिरती है कि ग्राम के लोग सभी धारचूला, आस-कोट, अलमोड़ा आदि कुछ गर्म स्थानों में उतर जाते हैं। उस समय इस वर्फ के राज्य में कोई भी मनुष्य नहीं रहता। वर्फ का गलना प्रारम्भ होने पर फाल्गुन, चैत्र मास में सभी लोग गांव में लौट आते हैं।

सन्ध्या के कुछ पूर्व मजदूर वापस आये। दूसरे दिन जब हमलोग निकले तो चारों दिशायें मानो निद्रित थीं। ऊषा का प्रकाश पूर्वाकाश में दिखाई पड़ने लगा। मन्द-मन्द शीतल वायु के स्पर्श से देवदारु के वन में कम्पन आरम्भ हो गया था। ठंढक बहुत अधिक थी। सभी लोग कांपते हुए चल रहे थे। पर ठंढक में ही अच्छी तरह चला जा सकता है। कुछ दूर चलने के बाद ही शरीर गर्म हो जाता है। उस समय चलने में उतना कष्ट नहीं होता। लगातार उतराई है। थोड़ी दूर पर धौलीगंगा और कालीगंगा का भीषण गर्जन पहाड़ों में प्रतिध्वनित होकर गम्भीर संगीत की सृष्टि कर रहे थे। प्रायः डेढ़ मील उतर आकर जब हमलोग धौलीगंगा के तीर पर उपस्थित

हुए उस समय भी प्रभात की अरुण-आभा धरती के पृष्ठ पर नहीं पहुंची थी। एक अनिर्वचनीय स्तब्धता से दिगन्त परिव्याप्त था। केवल कानों में धौली का क्रुद्ध निरवच्छिन्न गर्जन आ लगता था। पर्वत के साथ नदी की क्रीड़ा देखते ही बनती है। नेत्रों को उधर से फेरना कठिन हो जाता है। देख-देखकर मैंने अपने मन में उस अनुपम दृश्य की फोटो खींच ली और पुनः उसी में मग्न हो गया।

दर्मापास से निकल कर धौलीगंगा आगे काली के साथ मिल गयी है। नदी के ऊपर का हिलता हुआ अस्थायी लकड़ी वाला पुल किसी तरह डरते हुए पार कर हम लोग इस पार आये। सामने ही पंगू की चढ़ाई है। सुना है कि यह चढ़ाई सभी को पंगुल कर देती है। चढ़ाई के पाददेश में एकत्रित होकर एक बार क्षीण कंठ से कैलाशपति की जयध्वनि देकर धीरे-धीरे चढ़ाई करना आरम्भ किया गया। तीन मील की चढ़ाई है परन्तु चढ़ना पड़ता है लगभग ५००० फुट। स्मरण आते ही अन्तरात्मा आर्तनाद कर उठती है। सामने भयंकर विपत्ति देखकर हमलोग एक दूसरे का मुंह देखने लगे। साहस दे सकने की भाषा किसी को नहीं सूझी। पथ तिर्यग् गति से ऊपर ऊँचा होता गया है। हम लोग भी धीरे-धीरे चढ़ने लगे—बराबर ही चढ़ते चले। नीचे तीव्र वेग से दोनों नदियाँ दौड़ती चली जा रही थीं। पर्वत का तना पकड़कर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ना पड़ता था। लगभग एक घंटा चढ़ाई के बाद दिखाई पड़ा कि चारों ओर के पर्वतशिखर नवारुण-छटा से चमक रहे हैं। चढ़ाई के ऊपर की ओर देखकर उसका अन्त कहां है, कुछ भी समझ में नहीं आया। 'हिमालयन क्लब' का उपदेश अक्षरशः पालते हुए अर्थात् छोटा-छोटा कदम रखना, प्रत्येक कदम पर एक बार सांस लेना और एक बार छोड़ना। सामने

की ओर झुककर चलना, मुंह में लाजेन्ज ठूसना, सब कुछ विधि से करते हुए हमलोग चढ़ने लगे। तो भी क्रमशः घुटने टूटना ही चाहते हैं, सारा शरीर कांपने लगा। हम लोग चढ़ते ही रहे। एक झरना देखकर सब लोग एकसाथ उसपर टूट पड़े। गले तक जल पीकर उसी झरने के पास सभी लम्बे पड़ गये और एक कदम चलने की भी किसी में शक्ति नहीं थी।

बहुत देर तक लेटकर, बैठकर, कुछ जलपान करके फिर से पैरों पर खड़ा होना पड़ा। चढ़ाई पर चढ़ाई। किसी के मुख में शब्द नहीं। न बात करने की शक्ति और न इच्छा ही थी। शरीर और मन की सारी शक्तियों को केन्द्रीभूत करके केवल चढ़ते ही जाने लगे। इससे पहले हमलोग 'डिवड़ी', सरयू और सिगाली की चढ़ाई लांघकर आये हैं। परन्तु यह तो चढ़ाई नहीं, मानो चार हाथ-पैरों से रेंगते हुए सीढ़ी–रहित पर्वत के तने पर से ऊपर को चढ़ना था। निर्वाक, विस्मित होकर एक बार ऊपर की ओर देखना और फिर चलना, एक बार बैठना फिर उठना, यही क्रम था। कितना चढ़ चुके हैं और कितना बाकी है, कुछ भी नहीं जानते थे। चढ़ाई का मोड़ घूमकर हमलोग ऐसे स्थान पर आये जहां से धौलीगंगा के नील वक्षस्थल से ऊर्ध्वशीर्ष पर्वत-शिखर का प्रायः समूचा अंश ही दिखाई पड़ता है। ऊपर और नीचे दृष्टिपात करके जो देखा, उसे जीवन भर नहीं भूल सकता। नील धौली के कुछ ऊपर पहाड़ की कमर के पास मेघों का संघर्ष, विद्युत का स्फुरण, प्रचण्ड वज्रध्वनि और प्रबल वृष्टि हो रही थी। हम लोग जहां खड़े थे वहां स्वच्छ धूप। पुनः कुछ ऊपर में मेघसंभार, वज्र ध्वनि और बिजली की चमक थी। मेघमाला और सूर्य-किरण का ऐसा युगपत् समावेश सौम्य और कठोर का ऐसा मिलन कभी नहीं देखा था। विश्व

प्रकृति की लीला देखकर नयन और मन दोनों सार्थक हो गये। भक्तिभाव से परमपिता के चरणों में मैंने सिर झुकाया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी स्नेहमयी देवी के कोमल कर-स्पर्श से सकल श्रान्ति-क्लान्ति दूर हो गयी।

जब लगभग ११ बजे हमलोग चढ़ाई के अन्तिम पर्वत-शिखर पर खड़े हुए तो हृदय के अन्तस्तल में जाग्रत देवता की मानो आश्वास-वाणी सुनायी पड़ी—'मा भैः मा भैः'। पथ के पास ही गोल-गोल काले कंकड़ों का एक स्तूप दिखायी पड़ा। साथ के मजदूरों ने कहा—'वह देवस्थान है'। आने जाने के समय उस देवस्थान में पत्थर चढ़ाने की प्रथा है। हम लोग भी देवता की प्रसन्नता के लिए पत्थर चढ़ा कर आगे चले। पंगू की चढ़ाई ने सबको विशेष रूप से थका डाला था। दोपहर की धूप में ऐसी कठिन चढ़ाई कर आने पर भी अत्यधिक शीत मालूम हो रहा था। इस स्थान की उच्चता लगभग ६००० फुट है। मील भर बाद ही पंगू गांव है और एक धर्मशाला भी है। पास के एक विशाल अखरोट वृक्ष के नीचे छायामय एक बड़ी चट्टान पर थके शरीर को लुढ़का दिया। चारों ओर विस्तृत उज्ज्वल धूप में पड़े रहने में आराम मालूम हो रहा था। भूख-प्यास तो जैसे भूल गये।

सहसा मौन भंग होने पर पास की धर्मशाला से एक यात्री दल का कोलाहल सुनायी पड़ा। परन्तु आश्चर्य था, एक अंध व्यक्ति धीरे-धीरे सहयात्री का हाथ पकड़कर आगे आने लगा। देखने से इस प्रान्त का निवासी नहीं मालूम होता था। मन में कौतूहल उत्पन्न हुआ। उनके पास जाकर मैंने कहा—"नमस्ते बाबू जी, आप का घर कहां है?" अंधे व्यक्ति ने हाथ उठाकर नमस्कार करते हुए उत्तर दिया—'प्रतापगढ़ जिला, उत्तर प्रदेश में।'

प्रश्न पूछने की इच्छा हुई—'कैलाश दर्शन में जा रहे हैं क्या ?' 'किन्तु अन्ध से ऐसा प्रश्न पूछना उचित न होगा, समझकर मैंने कहा–'कहां जाइएगा ?' अञ्जलिबद्ध दोनों हाथ मस्तक पर रख कर तथा दृष्टिहीन दोनों आंखें ऊपर उठाकर उन्होंने उत्तर दिया—'कैलाश दर्शन के लिए।'

'दर्शन के लिये ? क्या देखेंगे ?' इस बात को मुंह से निकालते ही मुझे बड़ी लज्जा हुई, छिः छिः कैसी धृष्टता हो गयी। असावधानी के कारण हुए अपराध के लिए माफी चाहूं या नहीं—सोच रहा था। इतने में उस सज्जन ने स्मित हास्य के साथ कहा—"महाशय कैलाशपति की इच्छा नहीं है कि मैं इन स्थूल नेत्रों से उनका दर्शन करूं, नहीं तो वे मुझे अन्धा बनाकर संसार में क्यों भेजते ? तो इतना कष्ट सहकर स्वेच्छा से क्यों मैं जा रहा हूं, उनके दरबार में हाजिर होने के लिए ? मैं तो उनका दर्शन नहीं कर सकूंगा किन्तु वे तो मुझे देख लेंगे। उसी से मेरा जीवन सार्थक हो जायगा।"

उनके दृष्टिहीन नेत्रों से दो बिन्दु प्रेमाश्रु गाल पर से बह निकले। मैं निर्वाक् विस्मित कुछ क्षण खड़ा रहा। उस चक्षुहीन शिवभक्त देवी सहाय की बात याद आयी, जो शिवजी की कृपा से स्थूल नेत्र पा कर शिव रूप देख कर धन्य हुए थे।

उठकर फिर सब लोग चल पड़े। पहले डेढ़ मील की उतराई थी। उस कठिन चढ़ाई के बाद उतरने में आराम होने लगा, परन्तु बहुत देर तक नहीं, फिर शोसा की चढ़ाई आरम्भ हुई। चढ़ाई और उतराई, पत्थरों में ठोकर खाते-खाते पैरों में दर्द हो गया। अवसन्न शरीर से चार मील पथ तय करने के अनन्तर हम लोगों ने ढाई बजे सिखरा ग्राम की धर्मशाला में आश्रय

लिया। उस समय हमारी अवस्था देखने पर कठोर हृदय भी दया से पसीज जाता।

गांव कुछ बड़ा था, किन्तु कतवारों से भरा हुआ तथा प्रायः सभी जगह से दुर्गन्ध आती थी। गांव के लड़के-लड़कियां कौतूहलवश आकर हमें घेर कर खड़े हो गये—मानो मूर्तिमान वीभत्सता है। उनकी आंखों के चारों ओर मानो मक्खियों का छत्ता, परन्तु मक्खियों को भगाने के लिये कुछ भी प्रयास नहीं था। यहीं पहले-पहल हमारा भोटिया ग्राम में प्रवेश था। मकान के सामने ही इधर-उधर मल-मूत्र त्यागकर समूचे स्थान को दूसरे नरक में परिणत कर रखा है। धर्मशाला के भीतर का अंश भी गन्दा था। मक्खियों का उत्पात इतना अधिक था कि वर्णन करना भी संभव नहीं है। सर्वत्र छत्ते की तरह मक्खियां लटक रही थीं। ताराप्रसन्न बाबू ने कहा—'मधु-मक्खियों का छत्ता अब तक देखा है—यहां तो देखता हूँ मक्खियों का छत्ता है?' सुनकर इतनी अवसन्नता के भीतर भी सबके चेहरे पर हँसी दिखायी पड़ी। ग्राम-निवासियों के शिष्ट व्यवहार तथा अकपट शिष्टाचार से मुग्ध होना पड़ा, खास कर हमें संन्यासी देखकर वे हर तरह से हमारी सेवा में लग गये।

बम्बई प्रान्त के एक यात्री दल ने स्थानीय स्कूलघर में आश्रय लिया था। गांव के ऊपर ही ईसाई धर्मप्रचारकों का एक बड़ा केन्द्र है। वृहत् मकान, सामने फल-फूलों का बगीचा, २-३ पादरी रहते हैं। सिखरा ठण्ढा स्थान है। रात को बहुत शीत मालूम हो रहा था।

हमारी स्मृति-शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। गत दिन के कष्ट की बात हम भूल गये। सुख-दुःख केवल छू मात्र ही जाते हैं, मन पर रेखांकन नहीं कर

सकते। उस दुर्लभ आकर्षण से समूचे मन-प्राण व्याप्त हो रहे थे। न जाने कैसे नशे में हमलोग पागल थे। आज ग्यारह मील चलना है, 'जिप्ती' तक। बहुत ठंढ में ही निकल पड़े। प्रथम दो मील उतराई थी, सुमेरिया झरने के पास तक। बहुत बड़ा झरना है। मानो एक छोटी पहाड़ी नदी हो। पहाड़ी लोग बड़े कौशल से उस झरने के जल को काम में लाते हैं। नाला काटकर बहुत दूर तक ले जाकर खेत में पानी पहुंचाते हैं। इसके अतिरिक्त एक स्थान में ऊपर से जल को धार में गिरा कर पनचक्की भी चलाते हैं। मजदूरों का सरदार कहता था कि आज भी दो मील की एक कठिन चढ़ाई है। चढ़ाई की बात सुनते ही आतंक होने लगता है। घने जंगलों के भीतर से रास्ता, दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़। शीतकाल में यहां का समूचा राज्य बर्फ से ढँक जाता है। प्रचुर तुषारापात के फलस्वरूप वृक्षों पर बर्फ जहाँ तहाँ सीवार-सा लटक रहा है। घने जंगल के बीच-बीच में ऊपर साफ आकाश दिखाई पड़ता था और प्रभात की निर्मल सूर्य-किरणें वृक्ष-पत्रों के भीतर से नीचे आ गिरती थीं। पर्वतों के तने पर भोटिये लोग सैकड़ों भेड़-बकरियों को चरा रहे थे। निश्चल श्यामल वन-भूमि के बीच-बीच में सचल सफेद भेड़ें देखने में बहुत अच्छी लग रही थीं। चढ़ते हुए, छाती के भीतर हथौड़ी पीटने की तरह शब्द सुनकर मैं स्वयं ही चौंक उठा। हाँफते हुए पसीने से तराबोर होकर 'सुमेरियाधार' के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ कर जब चारों ओर दृष्टि डाली तो देह मन की सारी क्लान्ति क्षण भर में मिट गई। अहा! कैसा अपूर्व सौन्दर्य—वैभव था। आकाश का दिग्वलय विस्तृत होकर असीम के साथ मिल रहा था। दृष्टि की सारी बाधाएँ दूर हो गयीं। हृदय प्रफुल्लित हो गया। कभी विदीर्ण मेघों के छेदों में से सूर्य-किरणोज्ज्वल आकाश की झलक चित्त को शांति देती थी।

इस विपुल परिवेश के भीतर अपना क्षुद्रत्व डूब कर विराट के साथ एक हो गया है।

यहां भी पर्वत-चूड़ा के ऊपर कंकड़ पत्थरों का एक स्तूप था। उसके पास एक झंडा फहरा रहा था। इस स्थान की ऊँचाई लगभग १०,००० फुट है। रास्ते में भोटिये स्त्री-पुरुषों से भेंट हो जाती है। उनका शरीर गरम पोशाक से आवृत्त है। सभी के हाथ में एक-एक तकली है। रास्ता चलते हुए वे ऊन का सूत बटते जाते हैं। बीच-बीच में भोटियों की ग्रामीण शोभा दिखलाई पड़ती है। कौतूहली बालक-बालिकायें रास्ते में भीड़ लगाये खड़ी हो जाती हैं। कुछ कहती भी हैं किन्तु उनकी भाषा हम लोग नहीं समझ सकते। एक-एक पैसा देने पर वे खुशी से नाचने लगे। देखने में ये बहुत ही भद्दे किन्तु इनका स्वास्थ्य देख कर ईर्ष्या होती थी। चेहरे पर खून की लाली, शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ था।

जिप्ती ग्राम बहुत ही अच्छा है। सिखरा की तुलना में इन्द्रपुरी सा है। वैसी गन्दगी नहीं है और न मक्खियों का अभियान—चारों ओर खुला है। दूर पर पर्वत-मालाएँ। शांति की श्वास ली गई, परंतु निरन्तर सुख कहीं नहीं है। यहां स्थानाभाव है। केवल एक ही दुकान और उसके पास एक ही छप्पर मात्र है। हमसे पहले ही दो यात्री दल उस स्थान पर कब्जा किये बैठे हैं। उनके साथ आदमी भी बहुत से हैं। तीनों यात्री दलों में कुल मिला कर ६० आदमी हैं। किसी तरह एक दूसरे से सटकर सब लोग पड़े रहे। इस मार्ग में चट्टी नहीं है, बीच-बीच में १-२ दुकानें या धर्मशालाएँ हैं, उन्हीं में यात्रियों को रहना पड़ता है।

खेला छोड़कर इतनी दूर तक कालीगंगा से कहीं भेट नहीं हुई। यहां

दिखाई पड़ा कि जिप्ती के ४–५ सौ फुट नीचे एक दर्रे के भीतर से काली बहती चली जा रही है। जिप्ती के बाद ही मालपा है। फासला आठ मील का है, किन्तु यह आठ मील पथ बहुत ही दुर्गम और विपत्ति-पूर्ण है। ऊपर से बड़े-बड़े पत्थर लुढ़क पड़ने से हर साल यहां लोग मर जाते हैं। किन्तु बचाव का कोई उपाय नहीं है, प्रथम वर्षा में ही पत्थर अधिक लुढ़कते हैं।

१९३१ ई० में मैसूर के भूतपूर्व महाराजा के कैलाश यात्रा के उपलक्ष्य में जिप्ती से मालपा तक यह रास्ता बनाया गया था। पहले स्थानीय मनुष्य और यात्री लोग 'निरपानिया' चढ़ाई नामक पथ से आते-जाते थे। उस पथ में चढ़ाई अधिक है और एक बूँद जल कहीं नहीं मिलता। इस कारण उस पथ का नाम 'निरपानिया' पड़ा है। किन्तु उस पथ में पत्थरों से गिर कर मरने की आशंका बिलकुल नहीं थी। आजकल निरपानिया के रास्ते से लोगों का आना-जाना बन्द है।

तीसरे पहर थोड़ा इधर-उधर टहल कर हम लोग देख रहे थे। इतने में जल भरे बादलों ने आकर हमें घेर लिया। फिर देखते-देखते घने बादलों की छाती फाड़ कर सूर्य-रश्मि की एक झलक ने आकर सब कुछ रंगीन कर दिया। प्रकृति के रंगमंच पर प्रतिक्षण विचित्र पट-परिवर्तन देख कर मुग्ध होना पड़ता है। सन्ध्या के पहले ही आकाश में घनघटा छा गयी। 'जहां जाय कानी, वहीं पड़े पानी।'—हमारे भाग्य में वही हुआ। जोर से मूसलाधार वृष्टि होने लगी। मालपा के मार्ग में किसी दुर्घटना होने की आशंका से सभी के मुख सूख गये। सारे यात्री-दल में आतंक उत्पन्न हो गया। इधर जिस घास छप्पर के नीचे हम लोगों ने आश्रय लिया था, उसके सैकड़ों छिद्रों से जल गिर कर बिछौना आदि सामान भींग गये। शीतप्रधान स्थान, चारों ओर खुला,

बिछौना भींगा हुआ, मानो मणि-कांचन-संयोग ! वृष्टि एक ढंग से चल रही थी, मजदूर सरदार से राय करके तय हुआ कि दूसरे दिन सुबह यदि जोर की वृष्टि न हुई तो आगे चल देना ही उचित होगा। नहीं तो अनिश्चित काल के लिए जिप्ती में ही प्रतीक्षा करने के सिवाय कोई दूसरा उपाय न रहेगा।

भोर में भी आकाश मेघाच्छन्न था, थोड़ी-थोड़ी वृष्टि हो रही थी। दूसरों को अधिक सोचने का अवकाश न देकर मैं दो पहाड़ी सहयात्रियों को लेकर निकल पड़ा। मजदूर-सरदार अन्य लोगों को साथ लेकर बाद में आयेंगे, ऐसा तय हुआ। उस समय मन की कैसी दशा थी, उसे भाषा में व्यक्त करना सम्भव नहीं। ऐसा लग रहा था कि फिर हम सब लोग नहीं मिल सकते। आधी मील के बाद लगातार उतराई शुरू हो गयी—काली नदी के किनारे तक। पथरीला संकरा पथ, पग-पग पर फिसलने की आशंका, पैर दबा-दबा कर पहाड़ का तना पकड़ कर अत्यन्त सावधानता के साथ हम लोग बहुत धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे। पथ की चौड़ाई १॥ फुट मात्र थी। पथ के ऊपर से वृष्टिजल का स्रोत चल रहा था। दाहिनी ओर अथाह गिरि-खात—उनकी ओर देखने से छाती धड़कने लगती थी। तनिक सा पैर फिसला नहीं कि मृत्यु के गर्भ में ! किसी तरह बकइयां करते हुए नीचे उतरने लगे, काली के गर्भ तक तो उतर आये। फिर चढ़ाई आ गई। इस संकरे पथ के नीचे से नदी का तीव्र प्रवाह दौड़ता चला जा रहा था। दो साल पहले इसी जगह एक मराठी बुढ़िया यात्री कण्डी और वाहक समेत डूब गयी थी। डर लग रहा था कि कैलाश यात्रा का अन्त शायद यहीं हो जाय !

दिन चढ़ने के साथ-साथ आकाश साफ होने लगा। बहुत सावधानी से कदम डालते हुए 'निजांग' जल-प्रपात के पास आये। कई सौ फुट ऊपर से

एक गिरि-गात्र का भेद करके निजांग जलप्रपात भीम वेग से नीचे गिर रहा था। यह प्रपात इतने वेग से गिर रहा था कि जलकणों से चारों ओर के स्थान आच्छन्न हो गये थे। यह प्रपात देखने योग्य है, किन्तु हमें आगे चलते जाना है। देखते-देखते मेघमाला का भेदन करके सूर्य-किरण उन जल-कणों में प्रतिबिम्बित होकर रामधनुष के सात रंगों से वह स्थान अनुरंजित हो गया। अहा! कैसा नयनाभिराम दृश्य है! निजांग का जलस्त्रोत काली नदी में जा गिर रहा है। प्रपात के ऊपर वाला लकड़ी का पुल पारकर हम लोग दूसरे किनारे पर आ गये। सामने का डेढ़ मील पथ बहुत विपत्ति-जनक है। यहां पत्थर के गिरने से प्रायः लोग मरते हैं। पास का पहाड़ वृक्षलताहीन अनुपजाऊ, बलुई मिटट्ी और पत्थर का बना है। वृष्टि होने पर पत्थर के ढोंके लुढ़क कर नीचे गिरते रहते हैं। हम लोग डरते हुए पहाड़ के तने से सटकर धीरे धीरे अग्रसर होने लगे। गिरते समय अपने गतिवेग के कारण प्रायः पत्थर कुछ दूर जा गिरता है। पर्वत से सटकर चलना ही उचित है। पथ के ऊपर लुढ़क कर गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थर दिखाई पड़े। किसी तरह चलते रहे। एक स्थान पर हमारे सामने धमाका हुआ, एक भारी पत्थर लुढ़क कर आ गिरा। साथ का एक पहाड़ी सहयात्री 'मर गया, मर गया,' कह कर चिल्ला उठा। दैव की कृपा से मृत्यु-संकुल उस पथ का अतिक्रमण कर हम लोग आगे निकल आये। काली गंगा के किनारे किनारे रास्ता है। १० बजे तक हम लोग 'मालपा' में निर्विघ्न आ पहुंचे। आस पास केवल दो ही छप्पर थे, एक में डाक-हरकारे और दूसरे में यात्री आश्रय लेते हैं। बहुत खुशामद करके उस छप्पर में थोड़ी जगह मिल गयी। हिमकण मिश्रित जोर की बर्फीली हवा छाती के भीतर तक कंपा देती है। सहयात्रियों के न

पहुंचने तक घवराहट की सीमा वनी रही। जितनी देर हो रही थी, उतनी ही उत्कंठा बढ़ने लगी। लगभग १२ बजे दूर से दिखाई पड़ा कि स्वामी दुर्गात्मानन्द अपनी 'हिल-स्टिक' के ऊपर विजय पताका की तरह गेरुआ वस्त्र उड़ाकर हमें आगमन की सूचना दे रहे हैं।

हम लोग तो बेखटके पहुँच गये, किन्तु दिन के २ बजे खबर मिली कि अन्य यात्री दल का मजदूर-सरदार निजांग प्रपात के थोड़ी दूर पर पहाड़ी पत्थर से दब कर मर गया है। हरकारों से ऐसी खबर पाकर हम लोगों के मन में भय का संचार हुआ। पता चला १०-१२ मजदूर पीठ पर बोझा ढोते हुए एक पंक्ति में आ रहे थे, ऐसे समय एक भारी पत्थर के आ गिरने से मजदूर सरदार वहीं मर गया। नीचे काली नदी के तीव्र गर्जन के कारण उतने बड़े पत्थर के लुढ़कने का शब्द भी किसी को सुनायी नहीं पड़ा। शेष मजदूर बोझा उतार कर साथी के शव पर पहरा दे रहे हैं। यह क्रम बहुत रात तक चलता रहा। अन्त में यात्री दल का गाइड मजदूरों को इनाम देने का लालच देकर बहुत रात बीते सामान लेकर मालपा में आया।

गिद्धों और सियारों के हाथ से बचाने के लिए उस शव को बड़े बड़े पत्थरों से दबा कर वे लोग आ गये। पटवारी की आज्ञा के बिना उस लाश को हटाने का किसी को अधिकार नहीं है। पटवारी का हेड क्वार्टर 'गर्ब्याङ' में है। शायद २-३ दिन बाद खबर मिलने पर वह आयेगा। सारी घटना ने जटिल होकर मन के भीतर न जाने कैसी विश्रृंखलता उत्पन्न कर दी। जीवन का यही परिणाम है। हम लोग प्रकृति के हाथ के पुतले मात्र हैं। जानता हूं कि मृत्यु के सामने मनुष्य के लिए कोई पक्षपात नहीं है तो भी इस प्रकार

की मृत्यु बहुत ही मर्म-विदारक है। मृत व्यक्ति का भी शायद कहीं स्नेह-नीड़ है। उसके भी शायद दुलारे बच्चे, स्नेही पुत्रियाँ हैं। उनके मुख में थोड़ा अन्न देने की आशा से अपने प्राणों की ममता छोड़कर इस मृत्युमय दुर्गम पथ में बिचारा अपने को खींच लाया था। शायद १-२ मास के बाद ही उसका मत्यु-समाचार परिजनों के कानों में पहुंचेगा।

सन्ध्या के पहले से आंधी-पानी आरम्भ हो गया। प्रकृति की कैसी प्रलय-कारी मूर्ति है। रात के एक बजे के बाद वृष्टि रुकी, आकाश साफ हो गया। शुक्ल त्रयोदशी की शुभ्र चांदनी से पर्वत-शिखर, गिरि कन्दर, काली नदी की सुगंभीर उपत्यका, सभी उद्‌भासित हो उठे। कितना सुन्दर और कैसा भीषण था वह दृश्य। नीचे नदी के वक्षस्थल पर उज्ज्वल विगलित चाँदी की धारा भीम गर्जन से प्रवाहित थी। बीच में सुवर्ण-मंडित स्निग्ध पर्वतगात्र, ऊपर कर्पूर-गौर शुभ्र आकाश। एक अपूर्व रूप-समावेश था। कब तक मैं बाहर खड़ा रहा याद नहीं। भीषण शीत से चौंक उठा, फिर धीरे-धीरे झोपड़ी में मैं प्रविष्ट हुआ।

मालपा से बुधी तक आठ मील का पथ भी बहुत खराब है। परन्तु पत्थर गिरने से मरने का भय नहीं है। सुबह, गत रात्रि के इतने बड़े दुर्योग का चिह्न मात्र भी कहीं नहीं था। आकाश स्वच्छ हो गया। धूप में सब कुछ मानो हंस रहे हैं। आषाढ़ ८ शुक्रवार के शुभ प्रभात में गर्ब्याङ की ओर हमलोग बढ़े। लगभग आठ मील चलकर बुधी में भोजन समाप्त किया। उसके बाद और भी पांच मील जाकर सन्ध्या के पहले गर्ब्याङ पहुंचने की आशा थी। मालपा के बाद ही प्रथम दो मील खड़ी चढ़ाई है। लगभग १००० फुट चढ़ना पड़ा। पर्वत का चेहरा क्रमशः बदलता जा रहा था। अब वैसे श्यामल

वन-शोभित पर्वत दिखाई नहीं पड़ते। यहां के पहाड़ों पर वृक्ष का नाम भी नहीं है, खाली पत्थर है। उसके बाद सामने चढ़ाई-उतराई मिला हुआ पथ। आगे आने पर एक घुड़सवार तिब्बती को आते देख कर समझ में आया कि वह हमारा ही कैलाश गाइड कीच्खम्पा है। उसने जैसे ही आगे आकर अभिनन्दन करते हुए हंस कर आत्मपरिचय दिया हम लोगों ने आनन्द से 'कैलाशपति की जय' ध्वनि से पहाड़ों को प्रतिध्वनित कर दिया। खेला से गाइड को खबर भेजी गयी थी। अरुण बाबू के लिए घोड़े की विशेष आवश्यकता थी। कीच्खम्पा के साथ भेंट होने के बाद से ही हम लोग पथ के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गये थे। बहुत तेज तिब्बती घोड़ा है। अरुण बाबू उस पर सवार हो गये। चढ़ाई शुरू हो गई। बुधी तक दो मील की चढ़ाई थी।

दोपहर को बुधि ग्राम के स्थानीय पाठशाला-गृह में थोड़ी देर विश्राम करने के लिए बैठ गये। ग्राम बड़ा और सम्पन्न है। चारों ओर प्रचुर खेत हैं, एक धर्मशाला भी है। सामने ही नैपाल पर्वत माला के रौद्रोज्ज्वल हिमवाह की रोमांचकारी शोभा अवर्णनीय है। बुधी की उच्चता ८५०० फुट है। इस प्रान्त में अधिक शीत के कारण गेहूँ धान विशेष पैदा नहीं होते। जौ भी मामूली ही, पर भुट्टा, माँदरा, मुंडवा, गांध, भट आदि काफी उत्पन्न होते हैं। ठंढक के समय सभी लोग नीचे उतर जाते हैं। उस समय नैपाल के साथ इनका हजारों रुपयों का व्यापार चलता है।

आकाश क्रमशः मेघमलिन हो गया। वृष्टि की आशंका से हम झटपट निकल पड़े। ढाई मील तक लगातार चढ़ाई—२००० फुट से अधिक ऊँचाई

तक की थी, दीवार की तरह खड़ी चढ़ाई। लगभग ११००० फुट चढ़ आये। आकाश घन मेघावृत, गुरु-गंभीर मेघगर्जन, तीव्र झंझा, मानो उन्मत्त दानव दौड़ा चला आ रहा है। इतनी भीषण शीत ? हम लोग तीव्र गति से उतराई पथ पर दौड़ते हुए चलने लगे। चारों ओर अँधेरा छा गया, बहुत निकट की वस्तु भी नहीं दिखाई देती थी। पथरीले उतराई पथ में ठोकर खाते लुढ़कते हुए चल रहे थे। ऐसी वृष्टि मानो आकाश टूट पड़ा। वर्षा विन्दु बर्फ की तरह ठंढे। हिमकण-मिश्रित आंधी ने बहुत ही परेशान कर डाला। क्रमशः "चंपूचु" के किनारे आ कर भयभीत हृदय लिये हुए कुछ क्षणों तक खड़े रहे।

'चंपूचू' एक छोटी पहाड़ी नदी है, थोड़ी दूर पर जाकर वह कालीगंगा से मिल गई है। हिमावृत्त नदी पार कर दूसरे किनारे पर आने से दिखाई पड़ा कि सामने एक खड़ी चढ़ाई भ्रूकुटी-सी तनी खड़ी है। वर्षा का जल स्रोत के रूप में पथ के ऊपर से प्रवाहित होता चल रहा था। थोड़ी देर में बादल छँट गये। बारिश रुक गई। आसपास में देवदारू का घना जंगल, नीचे कल-नादिनी काली अविराम गति से दौड़ती-सी लग रही है। पथ सुनसान है और हम लोग घोड़े सहित ४ प्राणी प्रतिकूल मौसम से लड़ते हुए चुपचाप चल रहे हैं।

तीसरे पहर लगभग ४ बजे बारिश में भींगते हुए पसीने से लथपथ जब गर्ब्याङ्ग के पास आ पहुंचे, तो अनजान में ही मन की शान्ति का अनुभव हुआ। ऐसा लगा, इतने दुर्गम पहाड़-पर्वत लांघ कर, इतनी बाधा-विपत्तियां, दुःख-कष्ट और निराशा का घनान्धकार झेल कर जब गर्ब्याङ्ग आ चुके हैं तो दीर्घ काल के ध्यान की वस्तु कैलाश का दर्शन भी अवश्य संभव होगा। देवता

प्रसन्न हैं ! क्षण भर में शरीर और मन की ग्लानि तथा अवसाद दूर हो गये और किसी परम देवता के दिव्य अंगुलीस्पर्श से मानो हृदय की सभी नीरव तंत्रियां एकसाथ अव्यक्त आनन्द से झंकृत हो उठीं !

अब हमलोग चढ़ाई के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गये । इस स्थान की ऊँचाई लगभग ११००० फुट है। चारों ओर के असमान पर्वत हमारे नीचे थे। वृष्टि रुक गयी। उस समय कुछ मेघ ऊपर और नीचे खेल रहे थे। हमलोग अब मेघमाला से बहुत ऊपर उठ आये। नीचे के पार्वत्य प्रदेश घने मेघ से आवृत किन्तु चारों दिशाएं मेघ-निर्मुक्त सूर्य-किरणों से मानो हँस रही थीं।

सामने घन-वन - शोभापूर्ण विस्तीर्ण प्रान्तर । इतने ऊंचे पर्वत पर एक बड़े मैदान को देख कर हमलोग आश्चर्यचकित हो गये। चारों ओर हरियाली, श्यामल तृणाच्छादित प्रान्तर में विविध वर्णों के अपरिमित मौसमी फूलों का विशाल समारोह देखकर हृदय आनन्द से नाच उठा। कैसे स्निग्ध और कमनीय दृश्य ! यह तो फूलों का राज्य है। जहाँ तक दृष्टि जाती है सर्वत्र सुमनों का उद्यान ही दिखाई देता है। प्रकृति देवी ने मानो परमदेवता की पूजा के लिये इस विशाल फूलों के टोकरे को यत्न से सजा रखा है। जिनके इशारे से इस प्रकार सुन्दरता की सृष्टि हुई है, उस चिरसुन्दर के चरणों में सिर अपने आप झुक गया !

प्रान्तर के आसपास बकरे, भेड़, घोड़े, जब्बू आदि पालतू जानवर चर रहे थे। एक कोने पर एक छोटा मंदिर था, वह मंदिर बिलकुल परित्यक्त है; अथवा, भोटिया प्रान्त में सभी हिन्दु मन्दिरों की यही अवस्था होगी।

मन्दिर में कोई देवता का विग्रह नहीं है। चारों ओर जानवरों की खोपड़ी, सींग, हड्डी आदि बिखरे पड़े हैं। गड़रियों के लड़के पैसे मिलने की आशा से मन्दिर के सामने वाले लटकते हुए घंटे को बजा रहे थे। उनके हाथ में कुछ पैसे देते ही वे खुश होकर चले गये।

उस प्रान्तर के अन्तिम भाग से गर्ब्याङ ग्राम बहुत सुन्दर दीख रहा था। उसे दोनों ओर से घेर कर एक विशाल पर्वत सिर उठाये खड़ा था। उसी के पादमूल में प्रशस्त पठार पर गर्ब्याङ बसा है। गांव के प्रवेश-पथ के दोनों ओर भोटिये स्त्री-पुरुष खेती के काम में लगे हुए दिखाई पड़े। कीचड़ और कतवार से भरे पथ में ग्राम के भीतर से हम लोग आगे डाकबंगले की ओर बढ़ रहे थे। पहले सुना था कि भोटिया गांव की तरह गर्ब्याङ भी बहुत गंदा स्थान है। कैलाश यात्री के दल पहले ही डाकबंगला दखल कर बैठे थे। हम लोग बंगले की दीवारों से घिरे चौड़े आँगन में खेमा लगाकर रहने का प्रवन्ध करने लगे।

कुछ देर बाद ही हमारे साथी आ पहुंचे। विश्राम के बाद चाय पीते समय सुनाई पड़ा कि बुधी की चढ़ाई के बीच रास्ते में उठते ही ताराप्रसन्न बाबू सिर में चक्कर आने के कारण अवसन्न हो कर बैठ गये थे। डा० दे और स्वामी दुर्गात्मानन्द कई बार भीषण पतन से बच गये हैं। वायु के दबाव की कमी के कारण सभी को विशेष श्वास-कष्ट हो रहा था। डा० दे के साथ दवा थी, उससे बहुत लाभ हुआ।

गत १५-१६ दिन में हमलोग १७६ मील पथ तय कर लगभग ११००० फुट ऊपर हिमालय के अन्तिम प्रान्त में पहुंचे। बुधी की चढ़ाई करने में,

खास कर उस स्थान की ऊंचाई के कारण सभी लोग बहुत निर्बल हो गये थे। इस दुस्तर और दुर्गम पथ में मनुष्य अपने को इतना असहाय और दुर्बल समझता है कि अनजान में ही वह श्रीभगवान् के चरणों में आत्म-निवेदन करने को बाध्य हो जाता है।

'गर्ब्याङ' तक देवता के आशीर्वाद से आना सम्भव हुआ। महा संकटापन्न दुःखकष्टों का भोग यथेष्ट हुआ है। इस कष्ट का वरण करके ही इस दीर्घ पथयात्रा में हम सब निकल पड़े थे। मन में केवल यही एक आशा थी कि दारुण दुःख-कष्टों की दीप-शिखा के प्रकाश में देव-देव के चरणों का दर्शन कर अपने क्षुद्रत्व को चिरकाल के लिये महत् बना लूंगा। इसी कारण वेदनार्त हृदय लेकर आशा का क्षीण दीपक जलाकर करोड़ों नरनारियों की युग-युगान्तर के ध्यान की वस्तु, उस विराट पुरुष के चरणों में चलता रहा हूं। उनकी थोड़ी सी कृपा हो जाने से अपनी अपूर्णता सदा के लिये पूर्ण हो जायगी, परन्तु हृदय की सभी आशाएं पूरी नहीं होतीं। एक प्रार्थना संगीत से हृदय-मन भर गये—

"हृदय-चातक मोर चाय तोमारि पाने शान्तिदाता,
शान्ति-पीयूष-वारि हे बरिष बरिष।
नयनेर तुमि तारा, प्रेमचन्द्र हृदाकाशे शोकतापसन्तापहा
तुमि मात्र आशा सदा सुखे-दुःखे।.........."

अर्थात्, मेरा हृदय रूपी चातक, हे शान्तिदाता, तुम्हारी ओर देख रहा है, हे प्रभु, शान्ति-पीयूष वारि का वर्षण करो। तुम नयनों की पुतली हो, मेरे

हृदयाकाश के तुम चन्द्र हो तथा शोक-ताप-सन्ताप हरने वाले हो। केवल तुम ही सुख-दुःख में सदा आशा-भरोसे के आश्रय हो।

भीषण शीत ने हम लोगों को व्यथित कर दिया। तम्बू के बाहर जाने की शक्ति नहीं थी। कैलाश के पथ पर यही पहले पहल तम्बू का निवास था। यात्रा समाप्त कर गर्ब्याङ लौट आने तक इसी पटावास में रातें बितानी थीं।

गर्ब्याङ के पोस्ट-मास्टर चिट्ठी-पत्रादि लेकर हाजिर हुए। स्वजनों और बान्धवों का कुशल-समाचार पाने के लिए हमारे सहयात्री बहुत व्याकुल थे। पोस्ट-मास्टर के आने पर रुपये-पैसे उन्हीं के पास छोड़ जाने की व्यवस्था हुई। तिब्बत में रुपये साथ लेकर जाना बहुत ही विपत्ति-जनक है। भारतीय मुद्रा खास कर नोट वहां बिलकुल नहीं चलते। तिब्बत भारत के बाहर का स्वतन्त्र देश है। वहां की मुद्रा बिलकुल अलग है। उसे वहां के लोग 'टंका' कहते हैं। देखने में वह हमारी अठन्नी की तरह गोल है, किन्तु है कुछ पतला। उस टंका के दोनों तरफ तिब्बती भाषा में कुछ लिखा है। साधारणतया हमारे एक रुपये के बदले वहां के आठ टंका मिलते हैं। टंका अर्धटंका, सूका टंका का भी प्रचलन है। तकलाकोट और तिब्बत की दूसरी मंडियों में भोटिये व्यापारियों से रुपये के बदले टंका मिलते हैं। हमलोगों ने देव-सेवा, मंदिर की भेंट, साधु और दरिद्रनारायण की सेवा के लिए तकलाकोट से २५ रुपये की तिब्बती मुद्रायें साथ ले ली थीं।

हमारा डेरा लगते ही 'डा० स्वामी' आ गये यह समाचार गाँव भर में फैल गया। बहुत से लोग रोगी लेकर आये। इस पहाड़ी प्रांत में कोई

डाक्टर या चिकित्सालय नहीं है। कितने ही लोग चिकित्सा के अभाव में रोग से पीड़ित हो अकाल में ही प्राण खो बैठते हैं इसकी गणना कर सकना भी सम्भव नहीं है। रोगी देखकर डा० दे अपना कष्ट भूल गये और विशेष यत्न से सबको दवा देने लगे। तिब्बत आने-जाने के समूचे पथ में सैकड़ों रोगियों को औषध वितरण करके हमारा कैम्प घूमने वाले चिकित्सालय का काम कर रहा था। डा० दे की निःस्वार्थ सेवा सचमुच ही प्रशंसा-योग्य है। उनके ऐसे सेवा-परायण चिकित्सक जगत् में विरले ही मिलते हैं।

रात को हमें आगे की यात्रा का प्रोग्राम तैयार करना था। रसोई की कोई विशेषता तो नहीं थी 'केवल रोटी और चावलिया साग-भाजी'। बहुत दिनों के बाद कुछ साग-भाजी पाकर सभी लोगों ने परम तृप्ति से रोटी खायी। सबसे अधिक आनन्द की बात थी कि दूसरे दिन चलना नहीं था। जल्दी-जल्दी खा-पीकर सभी लोग गाइड के साथ परामर्श करने लगे। पहले से ही हमारी इच्छा थी कि कैलाश और मानसरोवर के अतिरिक्त पश्चिम तिब्बत में जो खचरनाथ आदि तीर्थ-स्थान हैं उन्हें और पथ के आस-पास के बौद्ध लामाओं के मठ-मंदिर आदि यथासंभव देखेंगे। कीचखम्पा एक पक्का गाइड (पथप्रदर्शक) है। गत ३० वर्षो से यात्री लेकर वह कम से कम ५० बार पश्चिम तिब्बत के तीर्थ-स्थान आदि घूम आया है। थोड़ी ही देर की बातचीत के बाद तय हुआ कि तकलाकोट से पहले खचरनाथ का दर्शन करके सीधे तीर्थापुरी जायेंगे। उसके अनन्तर कैलाश की परिक्रमा और दर्शन करेंगे फिर यदि संभव हुआ तो मानस-सरोवर की परिक्रमा करके, नहीं तो मानस में स्नान कर गर्ब्याङ लौट आयेंगे। इतना चक्कर लगाने में २६ दिन लगेंगे। तिब्बत भ्रमण के लिये आवश्यक खाद्य, तम्बू, कम्बल आदि बहुत

सी चीजें और सवारी के और बोझ ढोने के लिए घोड़े आदि का प्रबन्ध कर गर्ब्याङ से निकलना तय हुआ।

कीचखम्पा के ऊपर इन्तजाम का भार देकर उस रात्रि के लिए सभा भंग कर दी गयी और सब लोगों ने अपने अपने तंबू का आश्रय लिया, किन्तु खेद की बात है कि श्वासकष्ट के कारण अनेकों को ही अनिद्रा में रात बितानी पड़ी। वह एक विचित्र अनुभव था। अधिक ऊंचाई पर वायु का दबाव घट जाता है—यह बात पुस्तकों में ही पढ़ी गयी थी। उसकी उपलब्धि हुई गर्ब्याङ आकर। सभी अपने-अपने बिस्तरे पर बैठ कर नाना प्रकार के आसन और मुद्रा करने में लग गये। सभी की नाक से लम्बी सांस चल रही थी। कौन कितनी देर तक पूरक, कुम्भक और रेचक की कसरत दिखा सकता है, इसी की प्रतियोगिता चलने लगी। यह एक अद्‌भुत वेदना-दायक अनुभूति थी। अन्त में डा० दे ने औषधि देकर सभी का कष्ट घटा दिया। स्वामी दुर्गात्मानन्द को बहुत चिन्ता हुई। जब गर्ब्याङ में ही यह अवस्था है तो खास तिब्बत में विशेषरूप से कैलाश परिक्रमा के समय १८,६०० फुट की ऊंचाई पर दोलमाला में क्या होगा? डा० दे ने सबको आश्वासन दिया था कि २४ घण्टे नहीं तो ४८ घण्टे के भीतर यहां की आबहवा में रहने से बहुत कुछ अभ्यास हो जायगा। देह की रक्त-कणिकायें और फुसफुस क्रमशः इसकी व्यवस्था आप कर लेते हैं।

दूसरे दिन विश्राम था। विश्राम शब्द सुनते ही मन शान्त हो गया। सुबह मुझे उठते देखकर ताराप्रसन्न बाबू ने कहा—'अभी कैसे उठे, क्या निकलना होगा? कहिये तो झट बिस्तरा बाँध लूँ।" गत कई दिनों से पिछली रात

में मैंने किसी को सोने नहीं दिया था, लगातार तंग करता रहा था। आज का दिन सभी मौज से बिताने लगे थे। बिछौना छोड़कर कोई उठना नहीं चाहता था। केवल करवट बदलते रहे। हम लोग विश्राम के लालची हो गये थे। जीवन में ऐसा ही होता है, जिसे हम नहीं पाते, उसी के लिए मानो हमारी सारी सत्ता बुभुक्षु रहती है। एक ही वस्तु जब उसे हम नहीं पाते तभी मालूम होता है कि उसी की आवश्यकता सबसे अधिक है। सुख-दुःख की अनुभूति भी इसी प्रकार के पाने और न पाने के ऊपर ही निर्भर है। हृदय की क्षुधा कभी एक ही वस्तु को मीठा बना देती है, फिर तृष्णा मिट जाते ही उस वस्तु पर वितृष्णा आती है।

कुछ दिन चढ़ने के बाद डाकबंगले के यात्रीदल से परिचय होने पर पता चला कि उनके रवाना होने में जल्दी नहीं है। पंचाङ्ग देखकर तय किया गया कि सात दिन बाद एक शुभ मुहूर्त में वे यात्रा आरंभ करेंगे। किन्तु हमारा संकल्प है 'शुभस्य शीघ्रम्'। वह यात्री-दल भी बड़ा है, कुल ८ आदमी हैं— उत्तर प्रदेश के एक अवसर-प्राप्त (सेवानिवृत्त) इंजीनियर, उनके एक बंगाली मित्र, एक सेवा-निवृत्त राज-कर्मचारी, तीन साधु और दो नौकर। इंजीनियर ही उस दल के प्रधान हैं। वे लोग बिना पंचाङ्ग देखे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ते। परन्तु ऐसी विधि की विडम्बना है कि अलमोड़े से निकलकर गर्ब्याङ तक आने में प्रायः प्रतिदिन ही उन्हें अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा और उसी कारण वह और अधिक पंचाङ्ग के ऊपर ही निर्भर हो गये हैं। किन्तु हम लोग पंचाङ्ग छोड़कर श्रीभगवान् के ऊपर ही निर्भर होकर चल रहे हैं। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि—

"दुर्गा-दुर्गा बोले जेइ पथे चले जाय।
शूल हस्ते शूलपाणि रक्खा करेन ताय॥"

अर्थात्, जो दुर्गा-दुर्गा उच्चारण करते हुए यात्रा में निकलता है शूलपाणि महादेव शूल हाथ में लेकर उसकी रक्षा करते हैं। हम लोग भी दुर्गा-दुर्गा कह कर निकले थे। अबतक शूलपाणि ने हमारी रक्षा की है और विश्वास है कि अन्त तक वही हमारी रक्षा करेंगे। किन्तु यह बात निश्चित है कि इस दुर्गम पर्वतीय पथ में असुविधाओं और दुःख-कष्टों से पूर्णतया मुक्त रहना संभव भी नहीं है।

कीचखम्पा से खबर मिली कि हमारे लिए घोड़े और खच्चर लाने को आदमी भेजा गया है। हिमालय के ८, ९, १० हजार फुट के ऊपर बड़ा बाघ प्रायः दिखाई नहीं पड़ता। बघेरा (लकड़बग्घा) नामक एक छोटा बाघ १३-१४ हजार फुट ऊपर भी दिखाई पड़ता है। बघेरा बकरा, भेंड़, छोटे हरिण के सिवाय बड़े जानवर को नहीं मार सकता। किन्तु एक प्रकार का जंगली कुत्तों का दल है। उनके हाथ से बड़े जानवर भी नहीं बच सकते। "गर्ब्याङ" के समीप कस्तूरी मृग मिलते हैं। ये देखने में छोटे हरिण की तरह होते हैं। ऐसे ही मृग की नाभि में कस्तूरी उत्पन्न होती है। भोटिये लोग दलबद्ध होकर बंदूक लिये कस्तूरी मृग का शिकार करने जाते हैं। सुना गया है कि किसी-किसी मृग की नाभि से तीन तोले तक कस्तूरी मिलती है।

तीसरे पहर हम तीन आदमी थोड़ा इधर-उधर टहलने लगे। उस समय सन्ध्या होने में अधिक विलम्ब नहीं था। सूर्यकरोद्भासित नील आकाश के नीचे तुषारकिरीट और श्यामल अरण्यमय पर्वतमाला, उसी के नीचे ग्राम के

पास ही तेज धार वाली नदी। पतनोन्मुख सूर्य की रक्त-रश्मि चारों ओर के उच्च पर्वत-शिखरों में प्रतिफलित होकर मनोरम शोभा की रचना कर रही थी। ऐसा लगता था मानो दिनमणि का अंतिम आशीर्वाद-रूप रक्त-तिलक ललाट पर धारण करके पर्वतमाला गर्व से खड़ी है। थोड़ी दूर के एक पर्वत की श्याम शोभा के भीतर से गलित बर्फ की तरह श्रेणीबद्ध सैकड़ों सफेद भेड़-बकरियों का दल उतरता चला आ रहा था। पहाड़ ऐसा खड़ा है कि सिर को पीछे की ओर झुका कर ऊपर की ओर देखना पड़ता है। परन्तु आश्चर्य है कि एक भी प्राणी पैर फिसलने से गिरता नहीं था। पीठ पर काठ का भारी बोझा लिये वन से लौटी भोटिया स्त्रियों का जुलूस अच्छा दीख रहा था। स्त्रियों की पोशाक में विशिष्टता है। वे अपने हाथ से रंगे रंग-बिरंगी ऊन का लहँगा पहिने हुई, शरीर पर कुरती डाले, सिर पर ऊन का रंगीन चादर ओढ़े, हाथ कान नाक गले में सोने-चाँदी के विविध प्रकार के गहने पहिने हुई थीं।

क्रमशः मौन सन्ध्या उत्तीर्ण हो गई और साथ ही मनोहर ज्योत्सना उतर आई। आज गर्ब्याङ में बैठ कर विशेष रूप से हमारी यात्रा के आरम्भ से गत कुछ दिनों की स्मृतियां मानस पटल पर छाया-चित्रों की तरह तैरने लगीं। उसमें हैं—कितने ही वन-उपवन, गिरि-शृंग, पर्वत-गह्वर, वर्षा और धूप के दिन, कितनी ही नदियों की कल-कल ध्वनि, भाषाहीन पक्षियों की काकलि, गड़रियों के लड़कों के अबोध्य संगीत, स्निग्ध ऊषा की किरणधारा, सन्ध्या के आकाश का स्वर्ण-प्रकाश, कितने ही स्तब्ध निर्जन वन, कर्म-कोलाहलमय जनपद, वन-फूलों की सुमधुर गन्ध से भाराक्रान्त मृदु वायु का स्पर्श, कितनी

ही हिम-जर्जर तीव्र झंझा का कशाघात, कितने ही स्नेहमय दया-दाक्षिण्य तथा कर्कश अवहेलना—सभी अब अतीत की मधुर स्मृति में पर्यवसित हैं।

आज भी हमारा विश्राम का दिन है। अन्य सामान सभी जुटा लिया गया है, केवल घोड़े खच्चर नहीं आये हैं। प्रतीक्षा करने के सिवाय कोई उपाय ही नहीं है। हम सब का तो विश्राम है, किन्तु शान्त सेवक डा० दे का सेवाकार्य निरन्तर चल रहा है। डाकबंगला के यात्री-दल के प्रायः सभी लोग अस्वस्थ हैं। कल और भी तीन दल यात्री ग्राम के भीतर वाली धर्मशाला में आ टिके हैं। उनमें से एक को निमोनिया हो गया है और एक दूसरा रक्तामातिसार रोग से ग्रसित है। इस पथ में सर्दी, ज्वर, शरीर में दर्द आदि छोटी-मोटी बीमारियों की तो परवाह ही नहीं है। गर्ब्याङ गाँव के कुछ लोग रोगी लेकर हमारे तंबू के चारों ओर भीड़ लगाये हुए हैं।

तीसरे पहर गांव के प्रधान बाबू कल्याण सिंह के घर में हमारा निमन्त्रण है, मकानों के आस-पास तथा बाहरी रंग-ढंग भद्दे होने पर भी भीतर का अंश बहुत ही साफ-सुथरा है। दुमंजिल के ऊपर वाले एक कमरे में सुन्दर गलीचे के ऊपर हमें बैठाया है।

असबाब की सुन्दरता देख कर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। प्रधान लगभग १०० घोड़े जब्बुओं तथा ५०० भेड़ बकरियों के मालिक हैं। हर साल तिब्बत और नेपाल के साथ वह हजारों रुपयों का व्यापार करते हैं। घोड़े, जब्बू और भेड़-बकरियां ही भोटियों के सबसे बड़ी सम्पत्ति और पण्य वस्तुओं का एकमात्र वाहन हैं। इन भारवाही पशुओं की सहायता से वे हिमाच्छन्न पथ-रेखाहीन दुर्गम पहाड़ों को लांघ कर अपना व्यापार चलाते

हैं। एक घोड़ा १।।–२ मन और भेंड़-बकरी १५–२० सेर बोझ लेकर १७-१८ हजार फुट ऊँची पर्वतमाला तक लांघ कर चली जाती है।

कुछ बातचीत करने के बाद हमारे लिए जाफरान मिला हुआ गाढ़ा दूध और बदाम, पिश्ता, किसमिस आदि मेवा आये। भोजन समाप्त होने पर कल्याण सिंह अपनी बीमार पत्नी के साथ आशीर्वाद लेकर रोग ठीक कराने के लिए आये। साधु-संन्यासियों के प्रति उनकी भक्ति अगाध है। डा० दे ने जांच कर औषधि की व्यवस्था कर आवश्यक पथ्य का निर्देश दे दिया। लौटते समय पता लगा था कि उस औषधि और पथ्य से कल्याण सिंह की पत्नी का बहुत दिनों का शूल-दर्द अच्छा हो गया।

इस ग्राम में २०० सौ से अधिक भोटिया परिवारों का निवास है। भोटिये हिन्दू हैं, किन्तु वे प्रायः भूत-प्रेतों की उपासना करते हैं, अन्य पूजार्चन विशेष कुछ नहीं जानते। ये लोग शिव जी के भक्त हैं। काशी में जाकर बाबा विश्वनाथ का दर्शन करना, जीवन का महा सौभाग्य और पुण्य क्षण (मूहूर्त) समझते हैं। इन लोगों में वर्ण-विभाग या खाने-पीने का छुआ-छूत नहीं है। स्त्रियों की स्वतंत्रता बहुत अधिक है, भोटिये बहुत मांसप्रिय हैं। हिमालय के सभी पर्वतीय मांस खाना बहुत ही पसन्द करते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी। शीत-प्रधान देश में उनके लिये मांस अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। भोटिये पुरुषों की पोशाक हैं—गरम पायजामा, गरम जामा कोट, सिर पर टोप की तरह गरम टोपी, जूता भी सभी लोगों को इस्तेमाल करना पड़ता है। बलिष्ठ सुगठित शरीर, चिपटी नाक, कोटरगत छोटी आंख—मंगोलियनों की तरह होते हैं। इनकी भाषा, आचार-पद्धति, सामाजिक रीति-

नीति कुमायूनी (अल्मोड़ा, नैनीताल और गढ़वाल इन ३ जिलों के लोगों को कुमायूँ कहते हैं) हैं। यह लोग अन्य पर्वत-निवासियों से सम्पूर्ण स्वतंत्र हैं। भोटियों के इतिहास के बारे में कुछ भी जाना नहीं जाता। कुछ शताब्दियों के पूर्व कुमायूँ का उत्तरांश तथा पच्छिम तिब्बत का कुछ स्थान भूटान राज्य के अन्तर्गत था। बाद में कुमायूँ का उत्तरांश भारत सरकार के अधिकार में आ गया। पच्छिमी तिब्बत की कैलाश श्रेणी के दक्षिणांश के टार्चान, तथा तकलाकोट के निकट का खोचरनाथ अभी भी भूटान राज्य के अधिकार में है।* भोट के राज्य-कर्मचारी (इन्हें लाब्रङ कहते हैं) थोड़ी सेना लेकर उन स्थानों का शासन-कार्य परिचालित करते हैं। हो सकता है कि वर्तमान भोटिये भूटान के ही अधिवासी हों और बाद में इस प्रान्त में आकर उपनिवेश स्थापित करके बस गये हों। अथवा भोट के अधिकृत स्थान होने के कारण अन्यान्य पर्वतवासी उस स्थान के निवासियों को भोटिया कहते हैं। अलमोड़ा जिले के अत्युच्च उत्तरांश में व्यास, चौदास, दर्मा, जोहार, माना आदि ६-७ पट्टियों में भोटियों का निवास है। कुल संख्या तीस हजार है। व्यापार के संपर्क से समतल देशवासियों के संस्पर्श में आने

---

* यह तीर्थयात्रा सन १९३९ में की गई थी। उस समय से आजतक संसार में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। तदनुसार तिब्बत की परिस्थिति में भी गत कई वर्षों में अनेक परिर्वतन हो गये हैं। अतः तिब्बत संबंधी इस ग्रंथ में वर्णित अनेक घटनाएं तथा भौगोलिक परिस्थितियां आजकल की परिस्थितियों के साथ मेल नहीं खातीं। पाठक पचीस वर्षों पहिले का तिब्बत अपने संमुख रखेंगे। (ग्रन्थकार)

के कारण इनके भीतर सभी विषयों में बहुत ही द्रुत परिवर्तन आ गया है। उच्चशिक्षित तथा मार्जित-रुचि-सम्पन्न भोटियों की संख्या एकदम अल्प नहीं है। स्त्री-स्वतंत्रता बहुत है। परन्तु बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित न रहने से अनेक स्त्रियाँ उच्च शिक्षा पाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

घोड़े आज भी नहीं पहुंचे। इससे सभी लोग चंचल हो उठे। देखते-देखते तीन दिन गर्ब्याङ में बीत गये। इन कई दिनों में हमें खूब ही विश्राम मिला था और स्वामी दुर्गात्मानन्द के सुनिपुण तत्त्वावधान में भोजनादि का ऐसा रुचिकर प्रबन्ध हुआ था कि सभी अच्छी तरह ताजा हो उठे। नूतन उत्साह, अनुप्रेरणा और सहज प्राणधारा ने सभी को आगामी यात्रा के लिए उद्बुद्ध कर लिया।

आषाढ़ १२ मंगलवार। भोर होते ही कीचखम्पा सुसमाचार लेकर हाजिर हुआ। रात्रि से पूर्व ही घोड़े आ गये थे। उसी दिन रवाना होने के लिये सब लोग एकमत हुए। यात्रियों में झटपट तैयार होने में हड़बड़ी मच गई। हमारे सारे खाद्य पदार्थ, तम्बू, रसोई के सामान, बिछौने, गाइड तथा ६ घोड़ेवालों के असबाब, घोड़ों के २६ दिन के लायक खाद्य आदि ढो कर ले चलने तथा मुझे छोड़ कर अन्य सहयात्रियों की सवारी के लिए कुल १७ घोड़ों का प्रबन्ध हुआ।

आज ग्यारह मील दूर कालापानी पहुंचना होगा। भोजनादि समाप्त करके माल-असबाब लादकर हमलोग १०॥ बजे चल पड़े। विभिन्न प्रकार की सजावट से सज्जित, १७ घोड़े, ७ यात्री गाइड, घोड़ेवाले, उनके साथी, सब मिलाकर लगभग ५० आदमी एक साथ एक श्रेणी में चलने लगे। ऐसा

लग रहा था, मानो एक विराट जुलूस देवादिदेव के दर्शनों के लिये निकल पड़ा है। यात्रापथ के वाधाविघ्नों को दूर करने के लिये ग्राम के अन्तिम भाग में प्रधान खड़े हो कर हमारे सिर पर मंत्र-पूत चावल-गेहूं आदि अस्पष्ट ध्वनि करते हुए छिड़कने लगे। कुछ आगे चलने पर आधी मील खड़ी उतराई, काली और टिङ्कर नदियों के संगम तक थी। उस समय सभी पैदल चल रहे थे। वैसी खड़ी उतराई पथ में घोड़े की सवारी से जाना एकदम असम्भव है। घोड़ों की सम्मिलित गलघंटा-ध्वनि और काली-टिंकरों का मिलनोच्छ्वास मधुर ऐक्यतान संगीत की सृष्टि कर रहे थे। काली गंगा के ऊपर वाला लकड़ी का कांपता हुआ पुल पार करने के बाद ही प्रस्तर-समाकीर्ण रेतीली भूमि के ऊपर से पथ न जाने कहां नदी के गर्भ में जा मिला है। दाहिनी ओर घना देवदारु का जंगल। दूसरे तीर पर अभ्र-भेदी पर्वतमाला। सभी घोड़े पर सवार हो गये, किन्तु डा० दे किसी तरह घोड़े पर चढ़ने को राजी नहीं हुए। वे मेरे साथ पैदल चलने लगे। डा० दे प्रारम्भ से ही घोड़े पर चढ़ने के अनिच्छुक थे। क्योंकि वे पहले से ही पैदल पर्वत पर चढ़ने में अभ्यस्त हो गये थे। उन्होंने नन्दा देवी अभियान में जाने के इरादे से स्विडिश पर्वतारोहियों के साथ कुछ दिनों तक विज्ञान-सम्मत भाव से पर्वत पर चलने का अभ्यास किया था। परन्तु अन्त तक उस दल के साथ उनका जाना संभव नहीं हुआ था। मैंने उनसे कहा था—'तो भी आपके लिये एक घोड़ा साथ में रहना चाहिये।' मेरे विशेष अनुरोध से उन्होंने उसमें आपत्ति नहीं की।

क्रमशः हम लोग ऊपर की ओर चढ़ने लगे। पथ संकीर्णतर होता जा रहा था। पास ही प्रखर सूर्य-किरण-प्रति-फलित निर्मल नील जलप्रवाह

अविराम गति से दौड़ता चला जा रहा था, पथ सुनसान था, जल के निरन्तर कल्लोल से वह निरव भाव और भी गंभीर हो रहा था। पथ क्रमशः बहुत अधिक दुर्गम होने लगा। घुड़सवार बहुत सावधानी से घोड़ा चलाकर आगे बढ़ते जा रहे थे। सबके हृदय में विपुल आनन्द और अदम्य उत्साह था। नदी के स्रोत की तरह हम लोग निरन्तर अप्रतिहत गति से अग्रसर होते चल रहे थे। अनिर्वाण आशा—'अब थोड़े ही दिनों में युग-वांछित वस्तु का दर्शन लाभ होगा', हमारे हृदयों को प्रफुल्लित किये हुए थी।

आकाश मेघ से मलिन हो गया। कुहरे जैसे पतले मेघ से सारा स्थान छा गया। दूर की सब कुछ वस्तुएँ अवलुप्त होने लगीं। हम लोग कालीगंगा के उत्पत्तिस्थान लेपूलेक दर्रे की ओर चल रहे थे। दोनों ओर अर्धमृत देवदारु वृक्ष मानो इकट्ठे होकर बरफ के अत्याचारों के विरुद्ध मौन प्रतिवाद जता रहे थे। रास्ते में कोई जन-प्राणी नहीं दिखलाई पड़ा। पक्षियों का कूजन भी नहीं। हमारा प्रकाण्ड दल शान्त, सुन्दर पार्वत्य प्रदेश की निविड़ निस्तब्धता का मन्थन करता हुआ अग्रसर होने लगा। क्रमशः आकाश ने प्रलयकारी रूप धारण कर लिया। मेघ गरज उठे, प्रबल वृष्टि आरंभ हो गयी। ऊँचे-नीचे पथरीले सँकरे मार्ग से नदी के किनारे-किनारे शीतार्त शरीर के ऊपर बर्फीली हवा का तीव्र कशाघात चुपचाप सहते हुए हम लोग चल रहे थे।

थोड़ी देर में वृष्टि रुक गयी। परन्तु विपत्ति के ऊपर विपत्ति! हमारा दल कुछ आगे निकल गया था, मैं और डा० दे क्रमशः पिछड़ जाने लगे। एक चढ़ाई समाप्त कर कुछ समतल स्थान पर पहुंचे। इतने में डा० दे ने क्षीण स्वर से कहा—"अब तो मैं नहीं चल सकता, सिर में चक्कर आ

रहा है और न जाने कैसे मिचली आ रही है।" इतना कहते हुए ही वह बैठ गये। साथ में थर्मस में चाय थी, मैंने कहा—'थोड़ी गरम चाय पीजिये? विश्राम लेते ही इतनी बेचैनी का भाव दूर हो जायगा।' "नहीं चाय भी नहीं पी सकूंगा।" कहकर वह सिर की टोपी खोल कर एकदम मुर्दे की तरह पड़ गये। तबतक उनके शरीर से पसीने की धारायें बह चलीं, देखते-देखते चेहरा पीला पड़ गया। नाम लेकर मैं पुकारने लगा—पर कोई शब्द नहीं, नाड़ी बहुत क्षीण, मैं भारी विपत्ति में पड़ गया। किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर श्रीभगवान् का स्मरण करने लगा। डाक्टर को ऐसी स्थिति में छोड़कर आगे दौड़कर साथियों को खबर देने का कोई उपाय नहीं था, ऐसे समय मानो देवदूत की तरह दो भोटिये विपरीत दिशा से आते दिखाई पड़े। वे गर्ब्याङ होकर बुधी गांव जानेवाले थे। उनसे पता लगा कि कीचखम्पा का दल आधी मील से अधिक आगे चला गया है। अधिक पुरस्कार देने का लालच देने पर एक भोटिया दौड़ता हुआ, कीचखम्पा को घोड़े और औषध सहित लाने के लिए चला गया। लगभग ४० मिनट के बाद घोड़ा और औषध का बाक्स लेकर कीचखम्पा आ पहुंचा। उसके पीछे-पीछे स्वामी दुर्गात्मानन्द भी आ गये। डा॰ दे को कुछ प्रतिषेधक और उत्तेजक औषधि सेवन कराने पर धीरे-धीरे वह स्वस्थ होकर बैठ गये। उन्हें घोड़े पर सवार कराकर कीचखम्पा पकड़ते हुए ले चला। सन्ध्या के कुछ पहले जब हम लोग कालापानी आये, तब तक घोड़ेवालों ने कालीगंगा के तट पर कुछ समतल स्थान में तम्बू डाल दिया था। वहाँ एक छोटी धर्मशाला थी। परन्तु इससे पहले ही भोटिये व्यापारी उसे दखल किये बैठे थे। कालापानी

में पेड़-पोधे बहुत ही कम थे। जलाने की लकड़ी का अत्यन्त अभाव था। इस कारण उस दुर्जय शीत में भी थोड़ी आग जलाकर हाथ-पैर गरम करने का कोई उपाय नहीं था। रसोई आदि भी स्टोव पर ही करनी पड़ी।

डा० दे क्रमशः स्वस्थ हो उठे। यहाँ से समूचे कैलाश-यात्रा-पथ में तथा तिब्बत से लौटकर अलमोड़ा पहुंचने तक उन्होंने फिर कभी घोड़े पर चढ़ने पर आपत्ति नहीं की थी। रात बहुत ही कष्ट से बीती। रात्रि अधिक होने के साथ-साथ मूसलाधार वृष्टि होने लगी। बाँध से जल नहीं रोका जा सका। तम्बू के भीतर तक जल घुस आया। भयंकर ठण्ढा जल था। तम्बू के चारों ओर जल के घुस आने से बिछौने आदि भींग गये।

नींद खुल गयी। किन्तु जड़ता और अनिद्रा-जनित क्लान्ति से शरीर अवसन्न था। तो भी तृप्ति इतनी थी कि सुबह ही चलना न पड़ेगा, कुछ देर तक करवट बदलते रहने के बाद उठकर मैं बैठ गया। दिखायी पड़ा कि गत रात को जो बर्फ गिरी थी, उससे चारों ओर के अगणित पर्वत शिखर ढक गये हैं। इतना होते हुए भी हमारे घोड़े और खच्चर उस बर्फ से ढंके पहाड़ पर आनन्द से चर रहे थे। क्रमशः धूप से चारों ओर की पर्वत-मालाएं मानो हँसने लगीं। आकाश स्वच्छ हो उठा। पिछली रात के भीषण दुर्योग का कहीं चिह्न मात्र भी नहीं था। बर्फ के पर्वत का भेदन कर कालीगंगा की निर्मल शीतल जलधारा उतर आयी। चारों ओर के बरफ के स्तूप नवारुण-छटा से झिलमिला रहे थे। सुबह चलने की शक्ति किसी में नहीं थी।

आज का पड़ाव ८ मील का है। लिपूलेक दर्रे के पादमूल में—

'सियाङ चू' में जाकर आज रहना होगा। कालापानी की उच्चता १२००० फुट है और सियाङ्चू १५००० फुट। ८ मील में ३००० फुट चढ़ना होगा। भोजनादि के बाद ताजी धूप में १० बजने पर हम लोग निकल पड़े। काली-नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। चारों ओर नयनाभिराम दृश्य, मानो स्वप्नराज्य है! दुर्दान्त शीत के अलावा सभी कुछ उपभोग करने योग्य हैं। मील भर जाने पर एक छोटी पहाड़ी नदी ने हमारा गतिरोध कर दिया। नदी के ऊपर का पुल ऐसा जीर्ण और जर्जर है कि उसके ऊपर से जानवरों को पार ले जाना असम्भव है। नदी छोटी है किन्तु गहरी और तीव्र-स्रोता है। कीचखम्पा झट अपने आदमियों को लेकर उस पुल की मरम्मत करने में लग गया। दो बड़े पेड़ काटकर नदी के ऊपर डाल दिया और पत्थर के दीवाल की मरम्मत कर सबको लिये इस पार आ गया। गत रात्रि की वृष्टि से पथ की हालत बहुत ही शोचनीय हो गयी थी। कुछ देर बाद और एक रुकावट सामने आ गयी। एक छोटी पहाड़ी नदी—चलकर पार होने लायक थी। परन्तु पिछली रात की बारिश से नदी का किनारा ऐसे धंस गया था कि उसके ऊपर से जल-स्रोत के साथ बड़े जोर से कंकड़ीले पत्थर आ गिर रहे थे। उस दिन के लिये वहीं रुक जाने के सिवाय और कोई उपाय ही नहीं था। किन्तु इंजीनियर ताराप्रसन्न बाबू की प्रत्युत्पन्न बुद्धि की तारीफ करनी चाहिए। उन्होंने गाइड के आदमियों को कुल्हाड़ी के साथ बहुत ऊपर से घूमकर दूसरे पार भेज दिया। वे दोनों ओर से छोटे-छोटे पेड़ काटकर नदी में फेकने लगे। उन पेड़ों के कारण पत्थर अब नीचे न आ सके। हम लोग धीरे-धीरे घुटने भर जल में चलकर उस पार चले गये।

ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ने लगे, त्यों-त्यों हिमालय का दृश्य बदलता जाने लगा। यहां के पहाड़ अनुपजाऊ, वृक्ष-लताहीन और कर्कश हैं। यद्यपि इससे पहले मैं यमुनोत्री, उत्तर काशी, गंगोत्री, गौमुखी, केदारनाथ, बद्रीनारायण, शतपंथ, स्वर्गारोहण आदि हिमालय के दुर्गम तीर्थ-स्थानों का पैदल दर्शन कर आया था और कहीं-कहीं लगभग १६,००० फुट तक चढ़ना पड़ा था, किन्तु उन स्थानों के दृश्यों से, हिमालय के इस अंश की समोन्नत रेखा का दृश्य पूर्णतया पृथक है। शतपंथ के रास्ते में १४-१५ हजार फुट ऊँचे स्थान में भी भोजपत्र के अनेक वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। फिर गौमुखी से दो मील दूर भोजपत्र के पेड़ के सिवाय विपरीत दिशा में लगभग १७,००० फुट ऊपर पर्वत शिखर पर नाटे-नाटे देवदारु के वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इधर १४,००० फुट पर वृक्ष-लतादिक का निशान भी कहीं नहीं है। अत्यन्त अधिक तुषारपात और पत्थरों की अधिकता ही संभवतः इसका कारण है।

एक चढ़ाई के समाप्त होने पर भोटियों के देवोद्देश्य से निर्मित एक प्रस्तर-स्तूप के पास खड़ा होकर मैं अवाक मुग्ध नेत्रों से पर्वत की सुमनोहर नग्न शोभा देख रहा था। इतने में एक सफेद हल्के मेघ ने वायुचालित होकर समूचे पर्वत शिखर को आच्छन्न कर डाला और साथ साथ सूर्य-किरणों से सारा पहाड़ अनुरंजित हो उठा। मानो तापस गिरिवर गैरिक वसन से सर्वाङ्ग आच्छादित करके हंसते हुए हमारी शुभ कामना जता रहा था।

कालापानी से लगभग ६ मील दूर आये हैं। काली गंगा के किनारे एक चौड़ा मैदान दिखाई पड़ा। वहां नये ढंग के बहुत से तम्बू लगाये हुए हैं। गाइड ने कहा—'तिब्बती खम्पा व्यापारियों की छावनी है, उसी

की बगल से हमारा रास्ता है। तम्बू के पास आने पर सुनाई पड़ा कि भीतर से अस्फुट गुंजन ध्वनि मधुर संगीत की तरह तैरते हुए आ रही है। बहुत बड़े एक तम्बू के भीतर और बाहर बरामदे में तिब्बती स्त्री-पुरुष समवेत प्रार्थना में संलग्न हैं। उनकी वेशभूषा का वैचित्र्य और तंबू के भीतर की सजावट ध्यान देने योग्य है। भीतर जाकर उनकी पूजा और प्रार्थना आदि की पद्धति देखने की बड़ी इच्छा थी, किन्तु गाइड ने मना किया। सामने के मैदान में सैकड़ों तिब्बती बकरे, भेड़, जब्बू चर रहे थे। बाघ की तरह बड़े-बड़े कुत्तों को लेकर गड़रिये उन पशुओं पर पहरा दे रहे थे। कुत्तों की हिंसक दृष्टि से हृदय कांपने लगता है। बकरों की आँखें हरिणों की तरह लम्बी और बड़ी-बड़ी हैं। शरीर में लम्बे-लम्बे लोम हैं। देखने में भारत के बकरों की तुलना में कुछ छोटे हैं।

एक घुटने-तोड़ चढ़ाई के अन्त में मोड़ घूमते ही दिखलायी पड़ा— थोड़ी दूर पर ही एक चौड़ी घाटी में सियाङ्चू था। इसके पहले ही बहुत से तम्बू वहां पड़ चुके हैं। अगणित बकरे-भेंड़ चर रहे हैं। आदमियों की चहल-पहल से एक छोटा नगर जैसा लग रहा था।

हमारे भी तम्बू लग गये। उस समय थोड़ी धूप थी। उज्ज्वल धूप से मानो सभी हंस रहे थे। पास ही एक छोटी नदी में बर्फ के पिघले हुऐ जल का कल्लोल शब्द सुनाई देता था। थोड़ी दूर पर नीले आकाश के ठीक नीचे बरफ के पहाड़ पतनोन्मुख सूर्य-किरणों से रंग गये थे। सामने हमारी दृष्टि को रोक कर दूर आकाश के साथ मिलकर दुर्लङ्घ्य एक दूसरा बरफ का पहाड़ खड़ा था। सियाङ्चू आकर अच्छी तरह जाना गया कि एक बर्फ

के राज्य में हम लोग आ गये हैं। थोड़ी दूर पर ही वह भयजनक लिपूलेक गिरिद्वार अग्रगति को रुद्ध करके गर्व से सिर उठाये खड़ा है। दूर्बीन की सहायता से उस गिरि संकट को बहुत देर तक देखा। दूर से उसकी दुर्गमता कहाँ हैं कुछ समझ में नहीं आया, बल्कि उस पर्वत शिखर के शांत गांभीर्य से हृदय में आनन्द का स्पन्दन उत्पन्न हो रहा था। ऐसे निरापद स्थान में जाने में इतना भय! अरुणबाबू तो कह बैठे—"चलिये आज ही लिपूपास पारकर लिया जाय, २॥ मील से अधिक तो नहीं है। धूप भी काफी है। इतने समीप आकर निश्चेष्ट बैठे रहने से अस्वस्ति ही मालूम हो रही है।" किन्तु वैसा करना सम्भव नहीं था, क्योंकि वह 'पास' लाँघ जाना ऐसी विपत्तिजनक बात है कि कभी-कभी आधे घंटे के भीतर वहां की आबोहवा एकाएक बदल जाती है और अनजाने बर्फ से आक्रान्त होकर उस गिरिद्वार में अनेकों को विपदापन्न होना पड़ता है। दोपहर के बाद ही उस गिरिद्वार में विपत्ति की आशंका अधिक है। इस कारण लिपू लाँघने वाले यहां तक कि भोटिये या तिब्बती भी सियाङ्चू में अड्डा लिये लिपू पार होने के अनुकूल आबोहवा और समय के लिए प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहते हैं। साधारणतया भोर में बर्फ गिरने का डर कम रहता है। इस कारण सियाङ्चू से भोर में वे लोग रवाना होकर और लिपू लांघकर यथासमय तिब्बत में प्रवेश करते हैं। हमें भी वैसा ही करना होगा।

सियाङ्चूं उपत्यका बहुत चौड़ा स्थान है। निवासस्थान या धर्मशाला कुछ भी नहीं है। बहुत ऊँची बरफाच्छन्न पर्वत-मालायें उस स्थान को घेरे खड़ी हैं। ज्येष्ठ के अन्तिम भाग से ४-५ मास तक प्रतिदिन तीसरे

पहर सैकड़ों पालतू पशुओं को लेकर अनेक मनुष्य यहां आकर मिलते हैं। अस्थायी तम्बू लगाकर वे यहां रात भर के लिये रहते हैं। उस समय दूर से मालूम होता है कि मानो कोई बड़ा नगर है।

बहुत ही भयंकर ठण्ढ की रात्रि थी, ऐसा लगता था मानो बरफ के भीतर रहना पड़ रहा है। श्वासकष्ट भी बहुतों को सता रहा था। रात के ३।। बजे के बाद से ही भोर के अभियान के लिये सब लोग तैयार होने लगे। बहुत जल्दी करने पर भी ४।। बजे से पहले निकलना सम्भव न हुआ। उस समय भी बहुत अन्धेरा था। आकाश की अवस्था भी भयजनक थी, किन्तु उसी में उस वृहत् उपत्यका को छोड़ कर सब लोग निकल पड़े। पहले ही प्रस्तरबहुल चढ़ाई का रास्ता पड़ा। शरीर शीत से अकड़ गये थे। इच्छानुसार हाथ-पैर चलाना सम्भव न था, मानो सभी अंग सुन्न हो गये थे, पैर अपने ख्याल से चल रहे थे। पत्थर में ठोकरें लगती हैं, सामने गिर पड़ते हैं, गढ़े में कोई लुढ़क जाता हैं, पत्थरों की झरी में पैर अटक जाते हैं, फिर भी पैर खींचकर किसी तरह चढ़ते जाते हैं, जाना ही पड़ेगा। हमारे घुड़सवार सहयात्री आपादमस्तक गर्म पोशाक से आवृत्त होकर गरम दस्ताना पहने हाथ से किसी तरह लगाम पकड़कर घोड़े की पीठ पर बैठे हुए थे।

अब हम लोग बर्फ-राज्य के भीतर से चल रहे हैं। नीचे बरफ, चारों ओर भी बरफाच्छादित पर्वत हैं। कहीं-कहीं वह बरफ इतनी नरम है कि पैर उसमें धंस जाने लगा। कदम-कदम पर पैर खींचकर चलना पड़ता था, प्राणान्तकर व्यापार है। वायु के दबाव की स्वल्पता के कारण सबको भीषण श्वासकष्ट होने लगा। सभी निर्बल हो गये। क्रमशः सुबह हो आई,

किन्तु सूर्यालोकहीन प्रभात था। प्रकाश और अन्धकार का कोमल मधुर मिश्रण। क्रमशः चारों दिशायें उज्ज्वल हो उठीं। किन्तु वह उज्ज्वलता सूर्य-किरणों की नहीं—यह शुभ्र तुषार का प्रकाश है। आकाश की अवस्था क्रमशः भयजनक होने लगी। एक विकट निस्तब्धता समस्त पर्वत प्रदेश को घेरकर बैठी है। इस मृत्यु तुल्य मौन के भीतर केवल अपने साथ के घोड़े खच्चर आदि जानवरों के गलघंटे का क्षीण शब्द और तिब्बतियों और भोटियों के तीव्र स्वर से निकली हुई सीटी की आवाज ही सुनाई पड़ती थी। अब हम लोग योगीवर के जटाजाल का स्पर्श करने—उनके शुभ्र विराट शरीर के ऊपर से दुर्बल शिशु की तरह किसी प्रकार बकइयां भरते हुए धीरे-धीरे चल रहे थे। बकइयां लेना भी दूभर हो रहा था, भीषण ठण्ढ थी। हताशा के पीड़न से अन्तरात्मा बार-बार मर्मभेदी आर्तनाद करने लगती थी।

सियाङ्चू से हम लोग बहुत दूर आ गये। एकाएक जोर की बर्फीली हवा चली। अवस्था की उपलब्धि करने में विलम्ब न हुआ। हिमझंझा (बरफ की आंधी)! झर-झर-झर शब्द करता हुआ बर्फ झरने लगा। चारों ओर निस्तब्ध, मानो आसमान से पुष्पवृष्टि हो रही है। मल्लिका फूल की तरह सफेद अजस्र हिम तुषारों ने धीरे-धीरे नृत्य की गति से उतर कर संकीर्ण गिरि वर्त्म को आच्छन्न कर डाला। क्रमशः सर्वाङ्ग तुषार से ढँक गया। सिर के ऊपर तुषार का ही चँदवा था। लिपू के ऊपर तुषारपात! आतंक से हृदय कांप उठा। लिपू अतिक्रमण करना अब सम्भव न होगा समझकर शरीर, मन, इच्छा-शक्ति सब कुछ लुप्त हो गये। ऐसे समय कीच-

खम्पा ने सब को साहस देकर जता दिया कि गिरिद्वार की अंतिम सीमा पर पहुँचने में अब थोड़ा ही शेष है। डरने की कोई बात नहीं है।

कुछ समय के पश्चात् बर्फ का गिरना रुक गया। जी में जी आया, बर्फ के गिरते समय न जाने कैसे एक नशे की तरह भाव हो जाता है—समस्त शरीर अकड़ जाता है, तन्द्रा आने लगती है। शरीर मन की समस्त शक्तियों को केन्द्रीभूत करके हम लोग आगे चलते रहे। ठीक इसी समय हमारे बायीं ओर के एक पर्वत शिखर के पीछे से सूर्यनारायण, ज्योति की किरीट मस्तक में धारण करके हँसते हुए दिखायी दिये। चारों दिशाएँ एक दिव्य आलोक-छटा से उद्‌भासित हो उठीं। हृदय में आशा की नयी चेतना जाग उठी। कैसा महिमामय सुप्रभात था। जीवन में प्रतिदिन ही तो सूर्योदय देखता हूं, किन्तु ऐसा अपूर्व सूर्योदय तो कभी नहीं देखा था। इतने दिनों के बाद भी उसे स्मरण कर मन में आनन्द होता है कि उस दिन 'तपनदेव' का विराट रूप देखकर मैं धन्य हो गया था।

—

तिब्बत में प्रवेश

सुबह ८॥ बजे सब लोग लिपू के सर्वोच्च शिखर पर आ उपस्थित हुए। इससे पहले कुछ भोटिये और तिब्बती गिरिद्वार में पहुंच कर उच्चस्वर से प्रार्थना और मन के आनन्द से छाङ (अपनी तैयार मदिरा) पीने में लग गये थे। गिरिद्वार केवल २५-३० हाथ ही चौड़ा है। दोनों ओर बरफाच्छादित अलंघनीय उच्च पर्वत—दुर्भेद्य प्राचीर की तरह खड़े हैं। चारों ओर का समूचा स्थान बर्फ से ढँका हुआ है। गिरिद्वार के दोनों ओर सूखे पेड़ की डालें गाड़कर भोटियों ने उसमें रंग-बिरंगे झंडे फहरा दिये हैं। क्रमशः अनेक लोगों के समागम, स्तव, स्तुति, प्रार्थना आदि की ध्वनि से तथा परस्पर आलिंगनाबद्ध होकर छाङ पीते रहने से वह स्थान गुंजायमान हो उठा।

गिरिसंकट के ऊपर खड़े होकर जब मैंने पहले-पहल तिब्बत की ओर देखा तो समस्त मन प्राण एक अव्यक्त आनन्दहिल्लोल से उद्वेलित हो गये। कैसा अनुपम रूपवैभव था। दृष्टि की सारी बाधायें खुल गयीं—सारी संकीर्णताएं असीम परिव्याप्ति में विलीन हो गयीं। अहा! कैसा रूप-गौरव! प्रभात की नवारुण छटा से उद्भासित तिब्बत मानो अपने सौन्दर्य के मणिप्रकोष्ठ का द्वार गर्व से उन्मुक्त करके वरमाला हाथ में लिये हंसते हुए खड़ा है। ऊंचे नीचे स्तरों में सज्जित विभिन्न वर्ण की पर्वत-मालायें तथा सबसे पीछे, लहरिये

बरफाच्छन्न शिखरों वाला 'गुरला मान्धाता' खड़ा है। ❀ इस रूप की वर्णना संभव नहीं है। शत-शत निपुण कलाकार युगों तक कठोर साधना करके भी इस माधुर्य की एक कण मात्र का विकास करने में समर्थ नहीं होते। भारत के अन्तिम प्रान्त लिपू के ऊपर खड़े होकर मुग्ध नेत्रों से उस लोकातीत सौन्दर्य-सुधा का आकण्ठ पान करके भारत की ओर एक वार अंतिम दृष्टि डालकर हम लोग उत्तर की ओर उतरने लगे। उस समय मन के भीतर आनन्द और शोक की विपरीत भाव-तरंगें आन्दोलित हो रही थीं। कैलाशपति के दर्शन से मन-प्राण को परितृप्त करने के लिए हम लोग नये देश में चल रहे हैं। किन्तु दुःख भी हो रहा था कि संभवतः पुण्य-भूमि भारत को जन्म-भर के लिए छोड़कर चले जा रहे हैं।

हम लोग बर्फ के ऊपर सें उतरते जा रहे थे। उतराई इतनी खड़ी और फिसलाहट की थी कि प्रतिक्षण भय हो रहा था कि अभी २००० फुट नीचे गिरिखात में लुढ़क पड़ेंगे। सभी को पैदल उतरना पड़ रहा था। क्योंकि ऐसे मार्ग में सवारी नहीं चल सकती थी। बरफ काटकर भोटियों ने सीढ़ी की तरह बना ली थी। वे दो तीन आदमी मिल कर एक एक घोड़े की पूंछ पकड़कर पीछे की तरफ खींचते हुए किसी तरह अपने जानवरों को उतारते चल रहे थे।

❀ गुरला मान्धाता पर्वत लिपूलेक पास से बहुत दूर पर तिब्बत के बीच में अवस्थित है। यह महर्षि मान्धाता का तपस्या स्थान है। इसकी उच्चता २५,३५५ फुट है।

लगभग एक मील किसी तरह लुढ़कते हुए उतर आकर तिब्बत के पठार पर पहुंच गये। पास ही एक छोटी नदी लिपू के पिघले हुए बरफ-जल ढोती हुई तीव्र वेग से दौड़ती चली जा रही थी। धूप प्रखर थी, अब तक शीत की सिकुड़न घट गयी थी। नदी के किनारे हाथ-पैर फैलाकर सब लोग पड़ गये। थोड़ी देर इसी तरह आराम करके कुछ जलपान के बाद, फिर हम लोगों ने यात्रा शुरू की। नदी के किनारे-किनारे एक गिरिखात के भीतर से पथरीला संकरा पथ था। पैदल चलने में ही डर हो रहा था। एक पैर फिसला नहीं कि नदी के बरफ जल में सलिल-समाधि ही प्राप्त होने की शंका रहती थी! परन्तु तिब्बती और भोटिये घोड़े अति सहज गति से उस संकटपूर्ण मार्ग में चले जा रहे थे। ये प्राणी इतने सावधान हैं और इतने दृढ़ पदक्षेप से चलते हैं कि किसी तरह पैर रखने भर ५-६ इंच चौड़े पथ में भी उनका पैर कभी नहीं फिसलता।

दोनों ओर और सामने कहीं भी पेड़ पौधे या घास-खेत दिखाई नहीं पड़ते। केवल मटमैले नंगे पहाड़ों के अलावा और कुछ नहीं दिखायी पड़ता। ऊपर सुनील स्वच्छ अनन्त आकाश में धूप की असीम लीला! उतराई के पथ में लगभग दो मील आने के बाद हमारा पथ नदी लाँघकर दूसरे पार चला गया है। एक मास पूर्व भी यह पथ, यह स्थान, सब कुछ ही बरफ के नीचे समाधिस्थ होकर स्थाणु की तरह पड़ा था। प्रतिदिन सैकड़ों प्राणियों के पद-स्पर्श से इस समय इस स्थान के प्राणों में मानो नूतन जागरण आ गया है।

नदी में घुटने भर का जल। चौड़ाई भी अल्प, स्रोत भी अधिक नहीं था। सभी लोग घोड़े की पीठ पर आराम से नदी पार हो गये। परन्तु जूता

मोजा-पहने मैं कैसे पार होऊं ? सब खोलना आरंभ कर दिया, इतने में कीचखम्पा ने पीछे से आकर मुझे पीठ पर लाद कर नदी पार करा दिया।

मील भर के बाद ही 'पाला' आ गया। यहां दो छोटी-छोटी धर्मशालायें हैं। बहुत लोग लिपू लांघकर 'पाला' में ही रह जाते हैं, आगे नहीं जा सकते। अनेकों को 'पाला' में आश्रय लेते हुए देखा भी। हम लोगों ने निश्चय किया था कि और भी पांच मील जाकर तकलाकोट में पड़ाव डालेंगे। पास की छोटी नदी की कलकल-ध्वनि स्नेहमयी जननी के बच्चों को सुलाने के गान की तरह अति मृदु मधुर होकर कानों में आ लग रही थी।

अब हम लोग तिब्बत के पठार के ऊपर से चल रहे हैं। चढ़ाई-उतराई विशेष नहीं है। मानो सागर की लहरों के ऊपर से तैरते जा रहे थे, अधिकांश स्थान ही कूर्म-पृष्ठ की तरह है, किन्तु चारों ओर की पर्वत-मालाओं के रूप-रंग का विन्यास बहुत ही चित्ताकर्षक था। लिपू से निर्गत 'टीसुम्चू' और 'जुङजिन्चू' नामक दो छोटी पर्वतीय नदियों के संगम के पास से लकड़ी का पुल पार होकर बायीं ओर एक मोड़ घूमते ही पर्वत के निम्न भाग में चित्रपट की तरह सूर्य-करोज्ज्वल 'तकलाकोट' दिखलाई पड़ा। उसी के ठीक ऊपर पर्वत के शीर्ष देश में दुर्ग की तरह 'शिमुलिङ' गुम्फा (मतान्तर में शिवलिङ गुम्फा) अवस्थित है। फासला अभी भी ३॥ मील का है। सामने का विस्तीर्ण प्रान्तर प्रखर सूर्य-किरणों से मरुस्थल की तरह चमक रहा था। हमारी अग्रगति को रोकते हुए विपरीत दिशा से बड़े जोर की आंधी बहती जा रही थी। हम लगभग १४००० फुट के ऊपर चल रहे थे, किन्तु उच्चता की तुलना में ठण्ढक अधिक नहीं थी। पथ टेढ़ा-मेढ़ा था, हम सभी श्रान्त क्लान्त थे। लोग आगे-पीछे जैसे भी हो जी जान से आगे जाने की चेष्टा कर

रहे थे। एक मोड़ घूमते ही दिखाई पड़ी—दूर पर एक तिब्बती बस्ती। कुल ३-४ घर ही मात्र थे। जौ, मटर, सरसों आदि के हरे शस्यक्षेत्रों से परिवेष्टित वह ग्राम, मरुस्थान की तरह दिखाई पड़ता था। ढीले लबादे की तरह काली फटी पोशाक से शरीर को किसी तरह ढंककर कुछ तिब्बती स्त्रियां खेतों में नाले से जल सींच रहीं थीं। गाँव के पास पथ के किनारे रंग-बिरंगे झंडों से शोभायमान दो छोटे स्तूप थे। वे ग्रामवासियों की समाधियां हैं। समाधि स्तूपों के आसपास बहुत दूर तक सैकड़ों पत्थर के ढोके दीवार की तरह सजाये हुए रखे हैं। प्रत्येक प्रस्तर पर ही 'ॐ' मणिपद्मे 'हुंङ' मंत्र तिब्बती लिपि में बड़े बड़ें अक्षरों में खुदा हुआ है। इस मंत्र के सिवाय अन्य अनेक अनुशासन मंत्र भी किसी-किसी पत्थर पर खुदे हुए हैं। जो व्यक्ति जितना अधिक सम्पन्न है उसका समाधि-स्तूप उतना ही बड़ा है तथा उसकी आत्मा की ऊर्ध्वगति के लिए मंत्र खुदे हुऐं पत्थर भी अधिक स्थापित होते हैं।

और भी आगे चलने पर रास्ते के पास एक बड़ा ग्राम मिला। उसका नाम 'मगरूम' है। ५०–६० परिवारों का यह निवास-स्थान है। सभी मकान छोटे-बड़े गोल पत्थरों और कीचड़ से बने हैं और मरम्मत न होने से जीर्ण हैं। तीन ओर हरे खेत हैं। जौ, मटर, सरसों आदि खूब फले हैं। पश्चिम तिब्बत के प्रधान खाद्य ही हैं—जौ-मटर का सत्तू, मांस, मक्खन और चाय। पथ के दोनों ओर ग्राम हैं। यात्रियों का दल देख कर आधे नंगे बालक, स्त्री, वृद्ध हरेक टूटे-फूटे घरों के सामने आग्रह से खड़े हो गये थे। बच्चों के हाथ में एक-एक तिब्बती पैसा देते ही उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। जीभ निकाल कर सब कृतज्ञता प्रकट करने लगे। गाँव के पास ही आटा

पीसने की पनचक्की है। गाँव के अंतिम भाग में एक प्रायः सूखी नदी जाकर थोड़ी दूर की "करणाली" नदी में मिली है। पत्थरों से भरे नदीगर्भ का अतिक्रमण कर लकड़ी का पुल पार होते ही 'तकलाकोट' है।

नदीगर्भ से लगभग २०० फुट खड़ी चढ़ाई है। तिब्बती स्त्रियाँ पीठ पर जल का भारी घड़ा लिये अनायास ऊपर उठती चली जा रही थीं। 'तकलाकोट' ग्राम, मण्डी, यहाँ तक कि 'शिवलिङ् गुम्फा' (४०० फुट ऊँची होने पर भी) का जल भी इसी नदी से ले जाना पड़ता है। ग्रामवासियों के अनेक घर तथा छप्पर-रहित कुछ कुटियाँ छोड़ कर गाइड के निर्देश के अनुसार हम लोग एक खुली जगह में आ गये। उस समय दिन के दो बज गये थे। प्रखर धूप से मानो चारों दिशाएं झुलसती जा रही थीं। प्रबल आँधी बालू-कंकड़ उड़ा ले जा रही थी। आँख खोलने का भी उपाय नहीं था। तिब्बत में १३,००० फुट ऊपर इतनी गर्मी कल्पना से भी परे थी। तंबू लगाना बहुत ही कठिन हो गया। पत्थरों के गोल टुकड़ों से भरे जमीन में लोहे का खूँटा गाड़ा ही नहीं जा सकता था। तम्बू के कोनों में पत्थरों से भरे थैले बाँध कर किसी तरह तम्बू खड़ा किया गया, किन्तु गर्मी के मारे तम्बू के भीतर रहना कठिन हो गया। ताप की मात्रा ६० अंश (फारेनहाइट) थी। अन्त में गर्ब्याङ्ग गाँव के प्रधान कल्याण सिंह के एक खाली दुकान-घर में आश्रय लेना पड़ा। छत-रहित घर, चारों ओर केवल दीवारें मात्र खड़ी थीं। काले कम्बलों से किसी तरह छत को ढँक लिया गया था। तकलाकोट में भोटिये व्यापारियों के प्रायः दो-तीन सौ दुकान-घर हैं। सभी उसी एक ही तरह छत-रहित हैं। आषाढ़ से कार्तिक तक पांच मास उन घरों में व्यापारी

रहते हैं। उस समय वे शामियाना देकर ऊपर का छाजन बना लेते हैं, फिर छोड़ते समय वह शामियाना खोल ले जाते हैं। यह व्यवस्था अनोखी है। पश्चिमी तिब्बत में वृष्टि की अपेक्षा ओलों का गिरना और तुषारपतन बहुत अधिक होता है—खास कर शीतकाल में। इस कारण खुली दीवारें नष्ट नहीं होतीं।

समूचा तीसरा पहर लेट, बैठ कर बिता दिया गया। निकलने लायक उत्साह किसी में नहीं था। कल्याण सिंह का लड़का किशन सिंह तकलाकोट की दुकान चला रहा था। इस लड़के के शिष्ट, निष्कपट और हार्दिक व्यवहार से मुग्ध होना पड़ता है।

सन्ध्या के पूर्व कुछ भोटिये व्यापारियों के साथ व्यापार के विषय में वार्तालाप हुआ। खासकर भोटिये लोग ही इस प्रान्त के व्यापारी हैं। पश्चिम तिब्बत में 'तकलाकोट', 'गारटोक', 'नार्भा', थोकर', 'गानिमा' और 'टारचान' मण्डियाँ ही प्रधान हैं। इन व्यापार के केन्द्रों में भोटियों और तिब्बतियों में हर साल हजारों रुपयों का कारोबार होता है। अधिकांश क्रय-विक्रय चीजों की अदला-बदली से होता है। भारत से चावल, गेहूँ, जौ, गुड़, चीनी, वस्त्र, मिट्टी का तेल, बर्तन और आधुनिक सभ्यता के अनेक उपकरण भोटिये मंडियों में ले जाते हैं। बदले में तिब्बत से वे ले आते हैं—ऊन, कम्बल, गरम कपड़े, भेंड़, बकरी, घोड़े-खच्चर के चमड़े, सोहागा, सोडा आदि चीजें। ऐसा सुना जाता है कि आजकल भारत के व्यापारी उन्हें बहुत धोखा दे रहे हैं, इस कारण तिब्बती लोग भारत के व्यापारियों से अप्रसन्न रहते हैं। तिब्बत में व्यापार करना बहुत ही कठिन बात है। सामान आदि लेकर भोटिये एक

मण्डी से दूसरी मण्डी में जाते समय बन्दूक आदि से सुरक्षित होकर दलबल सहित जाते हैं। मौका पाने पर तिब्बती डाकू इनका सामान, घोड़े, खच्चर आदि सब लूट ले जाते हैं। उस समय खण्ड-युद्ध हो जाता है। दोनों पक्षों के लोग हताहत होते हैं। अब डाकुओं का अत्याचार क्रमशः घटता जा रहा है।

भारत के साथ तिब्बत का सम्बन्ध बहुत प्राचीन समय से है, किन्तु भौगोलिक संस्थान और राजनीतिक परिस्थिति के कारण साधारण भारतीयों के निकट तिब्बत अभी भी अज्ञात देश है। समुद्र की सतह से लगभग १५००० फुट ऊँचा तिब्बत का पठार प्रायः बारहों महीने प्रचुर बर्फ से ढँका रहता है, किन्तु खनिज सम्पत्ति में तिब्बत समृद्ध है। प्राचीन समय में भारत के लोग तिब्बत को 'कुबेर का देश' कहते थे।

भारतीय भू-तत्त्व-विभाग के भूतपूर्व परिचालक सर हेनरी हेवन ने तिब्बत सरकार के द्वारा निमंत्रित होकर १९१२ ई० में तिब्बत का परिदर्शन किया था। उनके मत से तिब्बत के भूगर्भ-स्थित स्वर्ण-भण्डार संसार के किसी देश के खनिज सुवर्ण-सम्पदा से श्रेष्ठ हैं। तिब्बत के प्रधान सेनापति के सहकारी ने अपनी विवृति में कहा था—उन्होंने तिब्बत की अनेक खानों में २० तोले भर के सुवर्ण के ढोके देखे हैं।

अब तक अपनी खनिज सम्पदा के विस्तार के लिए तिब्बत कुछ नहीं कर सका, केवल पाश्चात्त्य शक्तिपुंजों के हस्तक्षेप और शोषण से वह अपनी खनिज संपत्ति को अब तक सब प्रकार से बचाये रखने की चेष्टा ही करता आया है। विगत १९०४ ई० में यङ्गहजबैन्ड के तिब्बत अभियान के बाद से पाश्चात्त्य शोषण के भय से तिब्बत सरकार ने सुवर्ण की खानों के खोदने का

काम एकदम बन्द कर दिया है। विगत महायुद्ध के समय रूस ने चीन-तिब्बत संलग्न 'सिक्याङ्ग' प्रदेश के पास खुदाई और जाँच के द्वारा प्रचुर खनिज तेल और कोयले की संभावना के सम्बन्ध में निश्चित सिद्धान्त कर लिया था। पूर्व तिब्बत में लौह, ताम्र, सीसक और रौप्य की संभावना भी यथेष्ट है। पश्चिम तिब्बत में एण्टीमनी और पारे की खानें भी हैं। गत ३०० वर्षों से तिब्बत की अधुनालुप्त झीलों से प्रचुर सोहागा, क्षार लवण और सोडा आदि संगृहीत होकर भारत में आ रहे हैं।

वर्तमान समय में पाश्चात्त्य शक्तिपुंज के शोषण से अपने को मुक्त रखना तिब्बत के लिए संभव नहीं होगा, ऐसा प्रतीत होता है। धीरे-धीरे चीन अथवा चीन को सामने रख कर उसकी ओट में दूसरी शक्ति तिब्बत के खनिज-संभार का शोषण करने के लिए कटिबद्ध हैं। पाश्चात्त्य शोषणनीति और साम्राज्यवाद तिब्बत तथा प्राच्य जातिसमूह के सम्मुख एक समस्या के रूप में मानो भृकुटीभंग के साथ खड़ा है। चीन का अभ्युत्थान अब तिब्बत की स्वतंत्रता के लिए घातक सिद्ध हो गया है। *

धीरे-धीरे संध्या उतर आयी। पर्वतचूड़ा के पास चन्द्ररेखा। नक्षत्रों से सुनील आकाश छा गया। दिन की तीव्रता और रूक्षता का चिह्न मात्र भी

---

* अन्य घटनाओं के साथ इस बात का भी पता चलता है कि सन् १९११ में चीन में राज्य-क्रान्ति हो गई, जिसके फलस्वरूप चीनी सेना में गड़बड़ी मच गई। तिब्बती लोगों ने ल्हासा से चीनियों को खदेड़ कर अधिकतर तिब्बत को अपने अधिकार में कर लिया। दलाई लामा तथा उनके सचिव ल्हासा लौट आये। उस समय तिब्बती चीनियों से विरोध तथा अंग्रेजों से मित्रता रखते

नहीं है। अपने मन से मैं सामने के समतल स्थान में टहल रहा था। हल्के अन्धेरे में सब कुछ डूबते जा रहे थे।

दिन की तीव्र गर्मी से ऐसा लगा था कि रात को बहुत ठंढक नहीं होगी, किन्तु रात के बढ़ने के साथ-साथ भयानक शीत से हाथ-पैर ठिठुरने लगे। तिब्बत में ताप और शीत का भेद एक दिन में ही ७० अंश तक देखा है। कहीं दो घंटे के भीतर ही ६० अंश का पार्थक्य है। पिछली रात को मैं कुण्डली भर कर लेटा था, इतने में किसी भारी शोरगुल से चौंक उठा।

थे। सन १९१७ में चीनियों ने पुनश्च आक्रमण किया परन्तु पराभूत करके उन्हें सन १९२० में चीनी-तिब्बती सीमा तक खदेड़ दिया गया।

सन १९१२ में रूसियों ने मंगोलिया के साथ सन्धि कर ली, जिससे उस देश में रूसियों का प्रभाव बढ़ गया। सन १९१३ में भारत में ब्रिटेन, चीन तथा तिब्बत इन तीन राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ जिसमें तिब्बत की राजनैतिक समस्याओं पर विचार किया गया, परन्तु इसमें कोई ठोस फल नहीं निकला। इसके बाद विश्वयुद्ध छिड़ गया। तिब्बत ने ब्रिटेन के सहायतार्थ एक हजार सैनिक दिये, जो घटना भूतपूर्व शत्रुता के व्यवहार में परिवर्तन स्वरूप थी।

सन १९२२ में तिब्बती शासकों के बार-बार प्रार्थना करने पर बाह्य जगत् से संबंधहीन ल्हासा नगर तार के द्वारा भारत से जोड़ दिया गया।

सन १९१२ से चीन के वर्तमान आक्रमण तथा अधिकार स्थापना तक तिब्बत एक स्वयं-शासित स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में, भारत के साथ मित्रता का व्यवहार करते हुए शासनकार्य कर रहा था।

(पदटिप्पणी, हिन्दी संस्करण—ग्रन्थकर्ता)

कारण खोजते हुए बाहर आकर देखा कि सामने के मैदान में घोड़ों की लीद बटोरने के लिए आठ-दस तिब्बती स्त्रियों में भारी झगड़ा मचा हुआ है। बाद में पता लगा कि पश्चिम तिब्बत में वृक्ष लतादि नहीं है। इन्धन का अत्यन्त अभाव है। खासकर शीत के छः महीने जी रहने के लिए उन्हें थोड़ी आग अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण १।। हाथ लम्बी 'डामा' नाम की एक प्रकार की कँटीली झाड़ी और मवेशियों का गोबर उन्हें गर्मी के दिनों में जुटाये रखना पड़ता है। तिब्बती स्त्रियाँ हर समय अपनी पीठ में एक टोकरी लटकाये रहती हैं और यदि कहीं गोबर मिल गया तो उसमें रख लेती हैं।

खोचरनाथ

खोचरनाथ गुम्फा (मठ) देखने के लिए जाना है। आने-जाने में चौवीस मील का रास्ता है। सुबह झटपट जलपान करके दोपहर के लिए कुछ खाने की चीजें लेकर सबलोग चल पड़े। यात्रीदल के खोचरनाथ जाने आने के लिए गाइड ने नये घोड़ों का प्रबन्ध कर दिया। उसके दूसरे दिन ही तीर्था-पुरी की यात्रा करनी है। इस कारण हमारे घोड़ों को कुछ विश्राम आवश्यक है। मैं कीचखम्पा के साथ पैदल चलने लगा। सामने ही प्रभातसूर्या-लोकोद्भासित शिवलिङ्ग गुम्फा है, उस गुम्फा के पास से ही हमारा रास्ता है। प्राय: ५०० फुट चढ़ना पड़ा, चढ़ाई के शिखर से दिखाई पड़ा कि नीचे 'कर्नाली नदी' बहती चली जा रही है। पथ के बायीं ओर पर्वत काट कर रहने के लिए गुफा की तरह बनाये हुए श्रेणीबद्ध मकान हैं। हर एक मकान के सामने की ओर केवल एक ही छोटा दरवाजा है। मकान का समूचा अंश ही पर्वत के भीतर है। भीषण तुषारपात से अपनी रक्षा के लिए तिव्बती लोग इसी तरह के वास-स्थान बना लेते हैं। हर घर के सामने आधे नंगे बच्चे, बूढ़ों का अंचल पकड़ कर डरते हुए आग्रह के साथ हमें देख रहे थे।

क्रमश: 'कर्नाली' का लकड़ीवाला पुल पार कर हम नदी के किनारे-किनारे चल रहे हैं। पथ के बायीं ओर पेड़-पौधे-रहित पत्थरमय एक ऊंचा पहाड़ सैकड़ों युगों की स्मृति हृदय में धारण करते हुए खड़ा है। थोड़ी दूर

पर दिखाई पड़ा—काले कम्बलों के कुछ तम्बू हैं। पास ही सैंकड़ों चमड़े के थैंलों में सामानों के ढेर पड़े हैं। तीन-चार साल का एक तिब्बती शिशु परम दार्शनिक की तरह गाम्भीर्य और औदासीन्य लेकर निर्विकार चित्त से बैठा है। पास ही साँकल से बँधा एक भयंकर चेहरे का कुत्ता, शायद उस शिशु और कुत्ते के ऊपर अपने सामानों की रक्षा का भार सौंप कर तिब्बती लोग दूसरे स्थान में चले गये हैं। 'कर्नाली' नदी के किनारे-किनारे हरे-भरे खेत देख कर आंखों को बड़ी शांति मिली। फिर एक पहाड़ी नदी को पार करना पड़ा। वह स्थान एकदम जन-शून्य है। कहीं लोगों की बस्ती का चिह्न मात्र भी नहीं है। प्रायः तीन मील बाद एक गांव दिखाई पड़ा। दूर से ही छोटे-छोटे स्तूपों की श्रेणी और मणिमंत्र-खोदित पत्थरों की कतार देखकर जाना गया कि अब ग्राम दूर नहीं है। उस गांव में कुल सात-आठ घर में ही मनुष्यों का निवास है। घर, दुआर, आदमी सबमें दरिद्रता का चिह्न ! इस गांव के एक फटे वस्त्र पहिने तिब्बती परम परिचित की तरह हम लोगों के साथ बातचीत करने की चेष्टा करने लगा। दो-चार टूटे-फूटे हिन्दी शब्द जानता है। कुछ साल पहले वह एक बार भारत आया था अर्थात् पहाड़ की तराई में 'टनकपुर मंडी' तक। ग्राम के दूसरे लोगों को आश्चर्य-चकित करके उसने विचित्र हिन्दी में बातचीत शुरू कर दी। बहुत कष्ट से हमें हँसी दबानी पड़ी। परन्तु उसकी हार्दिकता और सरल व्यवहार देखकर हमें आनन्द हुआ।

अब 'कर्नाली' का किनारा छोड़कर हमलोग पठार के ऊपर से चलने लगे। रास्ता लहरिया, ऊँचा-नीचा अत्यन्त पथरीला है। विपरीत दिशा से आँधी, धूली के कंकड़ उड़ाकर तीव्रता के साथ बह रही थी जिससे आगे

चलना मुश्किल हो रहा था। धूप का तेज भी बढ़ता चला। अरुण बाबू के सिर का टोप ऐसे उड़ गया कि कीचखम्पा उसके पीछे-पीछे एक फर्लाङ्ग दौड़कर जा किसी तरह उसे उठा लाया। प्रायः सूखी दो पहाड़ी नदियों को पार कर दिन के ११ बजे के बाद एक मोड़ घूमते ही सामने कुछ दूर पर पर्वतीय पट-भूमि में खोचरनाथ गुम्फा दिखलाई पड़ी। चौड़ी कर्नाली नदी बहुत समीप से ही बहती जा रही थी। गुम्फा की आवेष्टनी बहुत ही मनोरम है। क्रमशः हमलोग गुंफा के सामने आ गये। हमें आते देखकर मठ के कुछ व्यक्ति एकत्रित हो गये थे। सभी कत्थई रंग का ढीला अँगरखा पहने थे। मस्तक मुंडित था। हम लोगों के 'जूः लाः' शब्द से तिब्बती भाषा में नमस्कार करते ही साधु लोग बहुत प्रसन्न हुए। 'जूः लाः' शब्द का अर्थ है कि देवतुल्य व्यक्तियों को प्रणाम। कीचखंपा भी तिब्बती है। खोचर-नाथ ग्राम में उसका जन्म है। प्रत्येक वर्ष ही वह एकाधिक बार यात्री लेकर उस गुम्फा का दर्शन कराने के लिए आता है। इस कारण वह वहाँ के लोगों से परिचित है। कीचखम्पा ने 'दरजू देन लामा' अर्थात् काशी के संन्यासी कहकर हमारा परिचय दिया। तिब्बती लामा लोग भारत के खास-कर काशी के संन्यासियों को विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। भारत भूमि में ही भगवान तथागत का जन्म तथा बुद्ध-गया में उनको बुद्धत्व लाभ हुआ था। सारनाथ में उन्होंने सबसे पहले निर्वाण की वाणी का प्रचार किया था और भारत में ही उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। इस कारण समस्त भारत ही बौद्धों के लिए महान पवित्र स्थान है। द्विभाषिये की सहायता से थोड़ा बहुत वार्तालाप करके हमलोग मठवासियों के साथ मंदिर की ओर अग्रसर होते चले। दोनों ओर घरों की श्रेणियाँ थीं। कहीं

तिब्बती स्त्रियाँ छोटे-छोटे करघों में ऊनी कपड़े बिन रही थीं और कोई-कोई ओखली में अन्न कूट रही थीं। बाद में जाना गया कि गुम्फा में सारे कामकाज करने के लिए जो लोग नियुक्त हैं वे अपने परिवार से साथ गुम्फा के संलग्न स्थान में रहते हैं। गुम्फा के प्रवेशद्वार पर कुछ लामा वेशधारियों के साथ भेंट हो गयी। फाटक के बाद ही विस्तृत प्रांगण, दोनों ओर दो मंदिर। प्रधान मंदिर उस समय बन्द था। गाइड के पुजारी के साथ धीमे स्वर से दो-चार बातें करने के बाद ही पुजारी ने मंत्रों का उच्चारण करते हुए मंदिर का दरवाजा खोल दिया। प्रथम ही 'नाट मंदिर' या उपासनागार है, दोनों बगलों में बैठने के लिये गद्दियों पर श्रेणीवद्ध भाव से अनेक आसन लगाये हुए हैं। आसन के सामने करीब एक हाथ ऊँची लकड़ी की मेज है। उपासनागार में एक साथ २०-२५ आदमी बैठ सकते हैं (बाद में जाना गया कि उपासनागार ही भोजनागार के रूप से व्यवहृत होता है)। उपासनागार पार कर हम लोग मंदिर में प्रविष्ट हुए। मन में एक साथ आनन्द तथा विस्मय की भावना से हमलोग एकदम अभिभूत हो गये। तिब्बत के मंदिर में हमारा यही प्रथम प्रवेश है और तिब्बती लामाओं को हमलोगों ने यहीं प्रथम देखा। नाट मंदिर और गर्भ मंदिर में प्रकाश का अत्यन्त अभाव है, केवल ऊपर की ओर एक छोटा रोशनदान था। बृहत् वेदी काठ की बनी प्रतीत हुई। वेदी के मूल देश में एक घी का दीपक क्षीण प्रकाश दे रहा था। स्तब्ध भक्ति-नम्र हृदय से हमलोग सब कुछ देख रहे थे। वेदी के ऊपर ऊँचे-नीचे स्तरों में बहुत से घी के दीपक और पीतल के कटोरे सजे हुए रखे थे, सब कुछ साफ था। एक बड़ी थाली में गेहूँ, जौ, धान, पिष्टक की तरह कुछ खाने की वस्तु भोग के लिए रखी हुई थी। वेदी के ऊपर सुवर्ण-

मय सहस्रदलपद्म के बीच में तीन सुन्दर देवमूर्तियाँ विराजमान थीं। हर एक मूर्ति की उच्चता लगभग ७-८ फुट होगी। बीच की मूर्ति अन्य मूर्तियों से कुछ बड़ी थी—चतुर्भुज, दो भुजायें सुवर्ण की और दो भुजायें चाँदी की। मूर्तियाँ शान्तदर्शन, बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से शोभित और निपुण मूर्तिकला का निदर्शन था। बीच की चतुर्भुज मूर्ति का नाम 'याम व्यायाङ', दाहिनी ओर की मूर्ति का नाम 'चान्‌राजे' (अवलोकितेश्वर) और बायीं ओर की मूर्ति का नाम 'छनदोराज' (वज्रपाणि) था, किन्तु भारतीय यात्रियों के सामने यहाँ के लामा इन मूर्तियों को राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्ति कह कर परिचय देते हैं। सभी मूर्तियाँ अष्टधातु-निर्मित हैं। तीन प्रधान मूर्तियों के अतिरिक्त वेदी के ऊपर धातु की बनी द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, दशभुज देव-मूर्तियाँ, आचार्य शंकर तथा अन्यान्य हिन्दू देव-देवियाँ भी पूजी जाती हैं। बुद्धदेव की कोई मूर्ति नहीं दिखाई पड़ी। पूजा आदि का कोई आडम्बर नहीं था। हम लोगों ने सुगंधित धूपबत्ती जला कर और अगरू छिड़क कर हर एक ही एक-एक टंका प्रणामी दिया और लामाओं की सेवा के लिए भी कुछ टंका पुजारी के हाथ में देने के बाद हमारे कल्याणार्थ वेदी के ऊपर और कुछ घी के दीपक जला दिये गये। दीपकों के उज्ज्वल प्रकाश से मूर्तियाँ प्राणवन्त प्रतीत हो रही थीं।

प्रधान मन्दिर का दर्शन करने पर विपरीत दिशा के एक छोटे मन्दिर में हम लोग ले जाये गये। इस मन्दिर के भीतर गहरा अँधेरा था। भीतर प्रविष्ट होने पर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। दो तीन लामा धीमे स्वर से लय के साथ शास्त्र की आवृत्ति कर रहे थे और कुछ लोग जप-चक्र की सहायता से "ॐ मणिपद्मे हूँ" मन्त्र का जप कर रहे थे।

हमने पहले सुना था कि इस गुंफा में महाकाली की नित्य पूजा होती है। पुजारी से पूछने पर वह कुछ देर तक आनाकानी करने लगा, फिर दो अन्य लामाओं से परामर्श करके हमें गुंफा के एक तहखाने में ले चला। नीचे उतरने की सीढ़ियों से पुजारी के साथ हम लोग भी एक-एक कर उतरते हुए एक छोटे कमरे में आ गये। वह कमरा अमावस की रात्रि की तरह अंधकारमय था। एक छोटा दीपक जला कर पुजारी हमें एक कोने पर खड़ी मूर्ति के सामने ले गया। उस पत्थर की मूर्ति पर सिन्दूर लीपा हुआ था। वही महाकाली की मूर्ति है। नाक, कान, मुख हैं या नहीं, मालूम नहीं हुआ। भयजनक अंधकार में रोंगटे खड़े हो गये। पुजारी गाल बजा करके भीषण गंभीर स्वर से मन्त्रोच्चारण करने लगा। विग्रह द्विभुज, चतुर्भुज या अष्टभुज है, पता नहीं चला। देवी-मूर्ति ही मालूम हुई। पास की दीवार में एक लंबा खड्ग लटक रहा था। प्रणामी देकर फिर हम लोग उसी सीढ़ी से ऊपर आ गये। पूजादिक के अनुष्ठान और गुप्त साधन के संबंध में पूछने पर पुजारी अत्यन्त उत्तेजित हो उठा। स्थिति समझ कर गाइड ने हमें चुप रहने का इशारा किया। बाद में सुना था किसी खास तिथि में मध्य रात्रि के समय गुप्त पूजा, भूत-प्रेतों का नृत्य और मूर्ति के सामने पशु बलि आदि होते हैं।

निर्वाण के मार्ग पर चलने वाले बौद्ध श्रमणों के मठ में महाकाली की गुप्त पूजा! इस बात से मन में कुछ उथल-पुथल मची। तिब्बत की अधिकांश गुंफाओं में हिन्दू देव-देवियों की ही पूजा प्रचलित है। अनेक लामा तान्त्रिक साधना, यहां तक कि रहस्य पूजा आदि भी करते हैं। अलौकिक शक्ति और सिद्धि लाभ करने की ओर ही उनका झुकाव अधिक है। विशेष सिद्धि-सम्पन्न लामाओं की संख्या तिब्बत में अल्प नहीं है।

सप्तम और अष्टम शताब्दियों में तिब्बत में बौद्ध धर्म का विशेष प्रसार हुआ था। बौद्ध प्रभाव के विस्तार के पूर्व तिब्बत में शक्ति-पूजा व्यापक रूप से प्रचलित थी और समस्त तिब्बत में हिन्दू धर्म प्रचारित हो गया था। * यह उसी का परिचायक है। बौद्ध प्रभाव के फलस्वरूप प्रकट में पशुबलि बंद होने पर भी छिप कर वह किया जाता था—इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भगवान शंकराचार्य के आविर्भाव के पहले तक भारत में बौद्ध धर्म के साथ हिन्दू धर्म का शायद विशेष विरोध नहीं था। हिन्दू मन्दिर के पास ही बौद्ध मठ, विहार विद्यमान थे। हिन्दू लोग तो बुद्ध देव को दशावतार के एक अवतार रूप से ही ग्रहण करते थे और बौद्ध मठों में भी हिन्दुओं के देव-देवियों की उपासना के प्रचलन का यथेष्ट प्रमाण मिलता है। खासकर तिब्बत में प्रायः सभी बौद्ध मठों में वर्तमान हिन्दू देव-देवी की पूजा आनुष्ठानिक भाव से होती है, किन्तु बौद्ध धर्म की किसी-किसी शाखा

* तिब्बत में बौद्ध धर्म की स्थापना सर्वप्रथम ईसा की ७ वीं शताब्दी में 'साँग-सेन-गाम-पो' राजा के शासनकाल में हुई थी।

सन् १०१३ में धारमपाल नामक भारतीय बौद्ध पण्डित अपने कतिपय शिष्यों के साथ तिब्बत गये थे। सन् १०४२ में अतिशा नामक और भी अधिक विद्वान् पण्डित ५९ साल की उम्र में विक्रमशिला विद्यालय को छोड़ कर तिब्बत गये, जिसकी वहाँ १४ वर्ष बाद मृत्यु हो गई। उन्होंने तिब्बतीय बौद्ध धर्मान्तर्गत 'कार-मा-पा' पन्थ की स्थापना की तथा अनेक ग्रंथ लिखे। उन्होंने मुख्यतया तान्त्रिक सिद्धान्त तथा साधना विषयक अनेक ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। अतिशा तिब्बत में 'चो-वो-रिम्-पो-चे' अर्थात् "अमूल्य प्रभु" नाम से प्रसिद्ध है। (पद-टिप्पणी, हिन्दी संस्करण—ग्रंथकर्ता)

में नाना प्रकार की संकीर्णता और कदाचार प्रविष्ट हो गये हैं। शंकर का अभियान बुद्धदेव या बौद्ध धर्म के विरुद्ध नहीं था, किन्तु संकीर्ण भावापन्न बौद्ध धर्मावलम्बियों के विरुद्ध अथवा संकीर्णता दूर करने के लिए था।

इसके अनन्तर हम लोग गुरु-लामा के दर्शन के लिए चले (प्रधान लामा को 'गुरु लामा' कहते हैं)। मन्दिर के एक कोने पर विशेष आसन के ऊपर वह अपनी साधना में रत थे। सौम्यदर्शन बालक, वयस १३ या १४ साल प्रतीत हुआ। दोनों नेत्र बहुत ही शान्त और स्निग्ध हैं। हम लोग प्रणामी देकर उठ खड़े हुए। हम लोग काशी के लामा हैं, सुन कर वह बहुत ही आनन्द प्रकट करने लगे और बोले कि वह भी एक साल पहले बोध-गया और सारनाथ का दर्शन करने गये थे। काशी के मन्दिर आदि सब कुछ देख आये हैं। गुरु लामा के साथ धर्म-प्रसंग और उनकी साधन-पद्धति के सम्बन्ध में वार्तालाप करने की इच्छा थी किन्तु योग्य द्विभाषिये के न होने से वह संभव नहीं हुआ।

तिब्बत में 'तुलकूलामा' और 'पंचेनलामा' यहां तक कि 'दलाई लामा'— जो एकसाथ समस्त तिब्बत के शासक और धर्मगुरु हैं, उनका निर्वाचन भी एक अभिनव व्यापार है। यहाँ का प्रवाद यह है कि प्रधान लामा निर्वाण मुक्ति नहीं प्राप्त करते। मृत्यु के पहले वे स्पष्ट इंगित कर जाते हैं कि आगे वे कहाँ और किस समय जन्म लेंगे। उस निर्देश के अनुसार अन्यान्य लामा लोग मृत 'गुरुलामा' के भावी उत्तराधिकारी को खोज निकालते हैं। शारीरिक विशेष लक्षण और चेहरे का सादृश्य आदि की परीक्षा करके बहुत ही अल्प वयस में उन्हें ले आकर यथासमय अभिषेक आदि करके गद्दी पर

बिठाया जाता है। खोचरनाथ के वर्तमान बालक 'गुरुलामा' को भी उसी भाव से निर्वाचित करके आचार्य की गद्दी पर बिठाया गया है। किसी-किसी मठ में गुरुलामा का आसन बहुत दिनों तक खाली भी रहता है। १९३३ ई० में भूतपूर्व 'दलाई लामा' के दिवंगत हो जाने पर तिब्बत के प्रधान धर्मगुरु और शासक का पद कई वर्षों तक खाली था। पांच वर्षों तक लगातार खोजने के पश्चात् चीन सीमान्त से एक बालक को दलाई लामा के एक अवतार रूप से ग्रहण करके यथारीति गद्दी पर बिठाया गया है।

दलाई लामा पद का अभ्युदय और दलाई लामा का निर्वाचन बहुत ही विस्मयजनक व्यापार है। जनश्रुति और इतिहास से जाना जाता है कि तिब्बत बहुत प्राचीन समय से ही स्वतन्त्र राज्य है। चीन का आधिपत्य तिब्बत के ऊपर बहुत दिनों तक था, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, बल्कि दिखलाई पड़ता है कि तिब्बत के प्रधान राजा 'नैटश्री-छेन-पो' मध्यभारत के अन्तर्गत किसी प्रदेश के राजपुत्र थे। ❀ वह राज्य-विस्तार करते हुए पंचम शताब्दी के प्रथम भाग में ल्हासा पहुँच गये थे और किसी तिब्बती सुन्दरी से विवाह करके

❀ कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थों से पता चलता है कि तिब्बत की प्राचीन पौराणिक राजवंश परम्परा 'न्या-त्रि-त्से-म्पो' से आरम्भ होती है जो कि (त्सेम्पो) भारतीय कोसलाधिपति बुद्धसमकालीन प्रसेनजित का पांचवा पुत्र था। वह हिमालय के उत्तर तिब्बत में भाग गया था, जिसको वहां के दक्षिण तथा मध्य तिब्बत के जातीय बारह सरदारों ने राजा चुन लिया। उसने (न्या-त्रित्सेत्सेम्पो ने) ल्हासा के दक्षिण में स्थित 'योरलांग' प्रदेश में अपना निवास स्थान कायम किया। प्रथम राजा तथा उसके छः वंशज 'सात स्वर्गीय 'टी' नामसे प्रसिद्ध

वहीं रह गये थे। उनके राज्यकाल में तिब्वत का राज्य मगध प्रदेश तक फैला हुआ था। नैटश्री छेनपो के वंशज नवम शताब्दी के मध्यभाग तक तिब्बत में राज्य करते थे। ८३६ ई० में इस वंश का राज्यकाल समाप्त हो गया एवं तिब्वत का शासन-भार क्रमशः संन्यासी सम्प्रदाय और स्थानीय जमींदारों के हाथ में आ गया। इस समय से पांचसौ वर्षों तक तिब्वत में कोई एकच्छत्र राजा नहीं रहा। चतुर्दश शताब्दी के अन्तिम भाग में तिब्वत में पुनः सम्मिलित राष्ट्र गठित हुआ और प्रथम दलाई लामा का आविर्भाव हुआ। राष्ट्र के राजा दलाई लामा भगवान बुद्ध देव के अवतार रूप से गृहीत हुए। प्रथम दलाई लामा ने सुदीर्घ चौरासी वर्षों तक तिब्बत में धर्मगुरु और राष्ट्रपति रूप से राज्य किया था। वर्तमान दलाई लामा, जो चीनियों के अत्याचार से चार साल पहले भारत में आये हैं, उस अवतार श्रेणी के चतुर्दश अवतार माने जाते हैं। उनका जन्म १६३४ ई० में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में वह उस सम्मानित पद में वृत हुए थे और पूर्ण युवा होने पर उनके ऊपर आनुष्ठानिक भाव से तिब्बत का शासन और धर्मगुरु का कार्यभार अर्पित हुआ था। समूचे तिब्बत में दलाईलामा का अतुल प्रभाव है।

हैं। इसके वाद की परम्परा में छः राजा हैं जो कि भूमि स्थित 'लेक' नाम से प्रसिद्ध हैं तथा इनके अनन्तर आठ अन्तरिक्षगत राजा आते हैं। जो 'डे' नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोसलाधिपति हिन्दू राजा प्रसेनजित के वंशज अठारह पीढियों तक तिव्बत में शासन करते थे।

एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका तथा अन्य विश्वस्त सूत्रों से इसी मत की पुष्टि होती है।

(पद-टिप्पणी, हिन्दी संस्करण—ग्रन्थकर्ता)

मंदिर आदि के दर्शन करने में २ बज गये। भूख-प्यास से सभी कातर हो गये थे। कीचखंपा की चेष्टा से गुंफा की दो मंजिल पर कुछ स्थान मिल गया, वहीं बैठकर जो कुछ खाने की चीजें हम लोग ले गये थे, उसी को कुछ लामाओं और डाबाओं (ब्रह्मचारी विद्यार्थियों) के साथ बांट कर खाया गया। हमारे दिए हुए उत्तम खाद्य उन्होंने बहुत ही तृप्ति के साथ खाये। तिब्बत में जाति-भेद तथा खाद्याखाद्य का विचार बिलकुल नहीं है किन्तु लामा लोग अन्यान्य देशों के पुरोहितों के समान तिब्बत में भी अपना प्राधान्य और स्वातंत्र्य विशेष रूप से रक्षा करते हुए चलते हैं। गृहस्थों के साथ वे एक पंक्ति में बैठकर नहीं खाते—बस यहीं तक। जैसे पाश्चात्त्य देशों में तथा मुसलमानों के भीतर धन और पदमर्यादा के अनुसार जाति-भेद माना जाता है, ठीक उसी प्रकार तिब्बतियों में भी जातिभेद है, धर्म या जन्म के अनुसार हिन्दुओं की तरह जाति-भेद उनके यहां नहीं है, छूआछूत की बला से भी तिब्बत पूर्णतया मुक्त है।

इतने में हम लोगों को नाच दिखाने के लिए नर्तकों का दल सजधज कर गुफा के आंगन में आ गया। हमलोगों के वहां पहुंचते ही वे डमरू, मनुष्य की हड्डी की बांसुरी, घन्टी बंधी हुई खंभड़ी आदि बाजे बजाकर नाच-कूदकर 'नाम डंग' नाच (प्रेत-नृत्य) दिखाने लगे। सभी भूत-प्रेतों के चेहरे लगा कर नाच रहे थे। उनके नाच में विशेष कोई मधुरता या कमनीयता नहीं थी। अधिकांश भाग दौड़ और उछल-कूद ही था, तथापि नई चीज होने के कारण हमें अच्छा लग रहा था। नर्तकों को इनाम देकर हमलोग चले आये।

गुंफा के कुछ दूर पर स्त्री-लामाओं का एक मठ भी है। ७-८ संन्यासिनियां

वहां रहती हैं। समयाभाव से वह मठ नहीं देखा जा सका। जाना गया कि उस मठ के सारे काम काज संन्यासिनियां स्वयं ही कर लेती हैं। पुरुषों के मठ से उनका कोई सम्पर्क नहीं है।

खोचरनाथ भूटान राज्य के अधीन है। यहां भूटान के राज्य कर्मचारी 'लाब्राङ्ग' का वास-भवन है। वह रक्षक सेना के साथ ६ महीने यहां और ६ महीने 'टारचान' में रहते हैं। नैपाल से खोचरनाथ के रास्ते से ही तिब्बत में जाना पड़ता है।

खोचरनाथ मठ में गुंफा निवासियों की संख्या लगभग ५० है। उनमें कुल ५ ही लामा (बौद्ध संन्यासी) हैं, बाकी सब डाबा (प्रवर्तक और विद्यार्थी) हैं। शीत काल में पश्चिम तिब्बत की अन्यान्य गुंफाओं से अनेक लामा इस मठ में आ रहते हैं। उस समय मठ-वासियों की संख्या दो सौ से भी अधिक हो जाती है।

भारत में प्राचीन समय के गुरु-गृह निवास की तरह तिब्बत तथा बौद्ध धर्मावलम्बी देशों में बहुत लोग बचपन से ही श्रमणों के मठ में रहकर विद्याभ्यास तथा तपस्या करते हैं। कुछ वर्षों तक शास्त्राध्ययन तथा अन्यान्य शिक्षा प्राप्त करने पर अपनी इच्छा के अनुसार कोई-कोई अपने-अपने घर लौट जाते हैं और कुछ लोग साधु होकर मठ में ही रह जाते हैं। शिक्षण काल में स्वजनों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। पश्चिम तिब्बत की गुंफाओं में लामा-वेशधारी व्यक्तियों में अनेक ही 'डाबा' श्रेणी के हैं। लामा (श्रमण) की संख्या अल्प है। किसी किसी गुंफा में एक भी लामा नहीं है। सभी 'डाबा' हैं। लामा और डाबा की वेशभूषा में जो बहुत थोड़ा अन्तर है,

वह विदेशियों के लिए समझना कठिन है। इस कारण विदेशी पर्यटक तिब्बत के लामाओं के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त और काल्पनिक धारणा कर बैठते है अर्थात् तिब्बत में एक तृतीयांश लोग ही लामा हैं, उनके आचार-व्यवहार-चरित्र, बहुत ही निन्दित और धर्म-पंथ के विरोधी हैं। इस प्रकार का प्रचार तिब्बत के लामाओं के सम्बन्ध में विशेष रूप से न जानने ही का फल है।

लामाओं का जीवन — विविध साधनाओं और कठोरताओं के भीतर से गठित होता है। प्रत्येक को ही ब्रह्मचारी के रूप से किसी गुंफा में दस-बारह या उससे भी अधिक वर्षों तक नियमानुवर्ती होकर जीवनयापन करना पड़ता है। बाद में उन्हें ल्हासा के किसी प्रधान मठ में जाना पड़ता है। कुछ सालों तक उस मठ में तीव्र साधना और शास्त्राध्ययन करते हुए व्यतीत करने पर प्रधान धर्माचार्य उपयुक्त प्रार्थी को यथा-रीति संस्कृत करके लामा-संघ के अन्तर्भुक्त कर लते हैं और तभी वह लामा पदवी में उन्नीत हो जाते हैं। उससे पहले सभी डाबा या प्रवर्तक हैं। ल्हासा में जाकर पूर्ण कठोरता तथा संयत जीवन व्यतीत करके लामा होने योग्य चरित्रबल या मनोवृत्ति अनेकों में नहीं रहती। इस कारण दिखाई पड़ता है कि अधिकांश डाबा ही किसी गुंफा में कुछ साल तक रहकर फिर घर जाने में बाध्य होते हैं।

तिब्बत भारत से भी अनेक विषयों में गरीब देश है। प्रतिदिन का जीवन चलाना वहां बड़ी कठिन बात है। इस कारण भारत की तरह अनेक भिक्षा-जीवी तिब्बती संन्यासी का वेश धारण कर अपनी जीविका कमाते हैं। उनकी संख्या भी बहुत अधिक हैं। ल्हासा की प्रधान गुंफा से हाल ही में आये शिव-लिंग गुंफा के प्रधान आचार्य लामा के साथ वार्तालाप करने से पता चला कि,

तिब्बत में ३० हजार से अधिक आनुष्ठानिक भाव से दीक्षित लामा नहीं हैं ❀ परन्तु लामा वेशधारियों की संख्या उससे कहीं अधिक है।

भिक्षुक की तरह भिक्षुणियों का जीवन भी संयत और कठोर है। अनेक पर्यटक लेखक तिब्बती भिक्षुणियों के नैतिक जीवन के ऊपर कटाक्ष करने से बाज नहीं आते। अवश्य ही सभी देशों के सभी सम्प्रदायों और सभी स्तरों के लोगों में भले-बुरे का मिश्रण है। किसी व्यक्ति विशेष की दोष-त्रुटि के लिए समस्त प्रतिष्ठान के आदर्श के ऊपर स्याही पोत देना ठीक नहीं प्रतीत होता। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्लावन के पूर्व हिन्दूधर्म और संस्कृति का प्राधान्य था। इस विषय में विश्वसनीय निर्भरयोग्य प्रमाण मिलते हैं, जिनसे निःसन्देह कहा जा सकता है कि तिब्बती लोग पहले सभी हिन्दू धर्मावलम्बी थे और तिब्बत अखण्ड भारतसाम्राज्य के अन्तर्गत था। हिन्दू शास्त्र की व्यवस्था की तरह अभी भी तिब्बत में वानप्रस्थ आश्रम की प्रथा प्रचलित है। हमारे साथ एकाधिक लामा-वेशधारी वानप्रस्थियों से भेंट और बात-चीत हुई है। उनके साथ भिक्षुणी वेशधारिणी स्त्री तथा पुत्र, कन्या आदि भी थे। भिक्षुणी वेशवाली तिब्बती स्त्री की गोदी में बच्चा देखकर ही

❀ तिब्बत की प्रधान-प्रधान गुम्फाओं के नाम तथा लामाओं की संख्या इस प्रकार हैं—ड्रेबङ गुम्फा प्रायः सात हजार, सेराई गुम्फा—प्रायः पांच हजार, गाण्डा गुम्फा—लगभग तीन हजार, कुम्बम गुम्फा—प्रायः छः हजार, फेडे-लिङ गुम्फा—प्रायः ढाई हजार। इसके अतिरिक्त पश्चिम तिब्बत तथा अन्यान्य स्थानों की छोटी-छोटी गुम्फाओं के निवासी परिव्राजक लामाओं की संख्या प्रायः पांच हजार है।

प्राय: पर्यटक लोग भ्रमूलक सिद्धान्त कर बैठते हैं और उस ढंग से अप-प्रचार भी करते हैं।···

अब हमारी लौटने की बारी आयी। साढ़े तीन बजे हम लोग चल पड़े, 'खोचरनाथ गुम्फा को देख सुनकर मन में न जाने कैसा एक असम्बद्ध सुर बज उठा था। गुफा की आबोहवा और आवेष्टनी उच्च आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए विशेष अनुकूल नहीं मालूम हुई। कुछ गुम्फावासियों के साथ वार्तालाप करके देखा कि वे 'शाक्यथोबा' (भगवान बुद्धदेव) के प्रचारित निर्वाण की वाणी के सम्बन्ध में विशेष कुछ भी नहीं जानते और बुद्धदेव के अलौकिक जीवन के सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

तीर्थापुरी यात्रा

आषाढ़ १६ शनिवार सुबह भोजन आदि समाप्त कर कैलाशपति की जयध्वनि करते हुए हम लोग तकलाकोट से तीर्थापुरी के लिए चल पड़े। गर्ब्याङ्ग के कुछ घोड़ों के बदले यहां से कुछ अन्य बलिष्ठ तिब्बती घोड़े ले लिये गये । उन घोड़ों की रखवाली करने के लिए दो तिब्बती भी साथ-साथ चले। तिब्बती साथ जायंगे, सुनकर हमारे साथियों में कुछ लोगों ने आपत्ति उठाई थी, क्योंकि उनका मिजाज बहुत ही रूखा है। मामूली कारणों से वे लोग खून-खराबी कर बैठते हैं। सुना है कि वे डाकुओं के दलों के साथ सहयोग करके यात्रियों का सब कुछ लूट लेते हैं। कीचखम्पा और घोड़ों के रक्षकों का सरदार 'दरबू' भी तिब्बती हैं। उन दोनों ने कहा—'डरने की कोई बात नहीं है।"

पहले शिवलिङ्ग गुम्फा के किनारे तक चढ़ाई है। खोचरनाथ का रास्ता दाहिनी ओर पड़ा रह गया। हमलोग अग्रसर होते चले। कर्नाली के दूसरे पार के छोटे-छोटे ग्राम सुनहली धूप में मानो हंस रहे हैं। 'मापचु' (कर्नाली) के लकड़ी का पुल पार कर नदी के किनारे-किनारे 'टयो' ग्राम तक रास्ता है। ग्राम के पास रास्ते पर ही कुछ तिब्बती स्त्री-पुरुष मदिरापात्र लेकर हमारे दल के सभी तिब्बतियों और भोटियों को अपनी बनायी हुई 'छाङ' शराब पिलाकर चले गये।

हमारे साथ जो दो तिब्बती घोड़े वाले हैं, वे इसी 'टयो' ग्राम के आदमी हैं। उनकी पत्नी और बच्चों के हाथ में एक-एक टंका देते ही वे सब खुश हुए। स्त्रियां भी सलज्ज हँसी के साथ हाथ बढ़ाकर टंका ले रही थीं। मानव प्रकृति सर्वत्र ही समान है। ग्राम बहुत ही छोटा और दरिद्र है। १०-१२ घर मनुष्यों का निवास है। ग्राम के बीच में एक टूटा स्तूप था। गाइड ने बताया "वह काश्मीर के सरदार जोरावर सिंह की 'छोरटेन' (समाधि) है।' उस वीर सरदार ने (सम्भवतः सन् १८४० ई०में) पश्चिम तिब्बत का अनेकांश जीत कर लद्दाख तक काश्मीर राज्य में मिला लिया था। अनेक युद्धों के अनन्तर वह वीर सरदार गुप्त घातक की गोली से इसी टयोग्राम में मारा गया था। जोरावर सिंह की अनोखी वीरता की कहानी अभी भी तिब्बत में जनश्रुति के रूप में प्रचलित है, फिर भी उनके जीवन की ऐसी परिणति है। ❀

विषण्णचित्त से धीरे-धीरे हम लोग आगे चलने लगे। याद आई--बहुत दिनों की एक पुरानी करुण कहानी। मानस चित्र-पट पर एक वेदना-मधुर चित्र अनुभूत हुआ। लाहौर नगरी के पास शाहदरा नामक स्थान में मुगल बादशाहों और बेगमों के समाधिस्थान को देखकर मैं लौट रहा था। इतने में

❀ सन् १८४१ में काश्मीर निवासी पर्वतीय १५,००० डोग्रा सैनिकों ने पश्चिमी तिब्बत पर आक्रमण किया, परन्तु वे तिब्बतियों के द्वारा पराभूत होकर प्रायः सभी मौत के घाट उतार दिये गये। समुद्री सतह से १५,००० फीट के ऊंचाई पर असह्य ठंडक में यह लड़ाई हुई थी इसी कठोर ठंडक के कारण डोग्रा सैनिकों का पराभव हुआ।

(पद टिप्पणी, हिन्दी संस्करण—लेखक)

रास्ते के पास एक छोटे कब्रिस्तान पर दृष्टि पड़ी। जंगलों से भरा वह स्थान था। इमारत के स्थान-स्थान से मसाला छूट गया था। गुम्बज के ऊपर की दरारों से जंगली पेड़-पौधे निकल आने के कारण मालूम हुआ कि इसकी सुरक्षा के प्रति किसी का ध्यान नहीं है। मन में कौतूहल उत्पन्न हुआ। चारों ओर प्रचुर धन व्यय से बनी संगमरमर की अनेक समाधियां हैं—थोड़ी दूर पर सम्राट जहांगीर की विराट समाधि। जनशून्य स्थान! कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद एक मुसलमान फकीर दिखलाई पड़े। उनसे मालूम हुआ कि वह परित्यक्त कब्रिस्तान भारत-साम्राज्ञी नूरजहां का है। उसके बगल में एक और छोटी कब्र थी। ऊपर की छत संगमरमर की थी। दूसरी कब्र नूर-जहां की प्रियतमा कन्या लैली बेगम की थी। नूरजहां की कब्र के ऊपर उनकी रचित फारसी कविता खुदी हुई है--फकीर साहब ने पढ़ सुनाया--

"बर मज़ारे मां गरीबें, नेने चिरागे ने गुले।
नेने परे परत्ताना सुजद्, नेने सदा ए बुलबुले॥"

अर्थात् मैं बहुत ही दीन-हीन हूँ, मृत्यु के बाद मेरी कब्र के ऊपर कोई दीया न जलाया जाय और फूलों से भी न सजाया जाय। यहाँ तक कि एक जुगनू भी वहाँ रोशनी न दे, कोई चिड़िया भी वहां गान न करे।

समूचा हृदय मर्मान्तिक वेदना से आर्तनाद कर उठा। कैसी यह दैवी माया? क्यों ऐसे अनुपम रूप की सृष्टि और क्यों उसका ऐसा शोचनीय परिणाम? नूरजहाँ के अलोकसामान्य दैहिक सौन्दर्य की बात संसार जानता है, किन्तु उसके मन का सन्धान किसी ने आज तक नहीं पाया है। उन दोनों बातों के भीतर उसके मन के एक स्वर्गीय रूप की व्यंजना है,

जिसने उसके शरीर की अतुलनीय रूप-माधुर्य को मलिन कर दिया। नूरजहाँ जीवन में सुखी न हो सकी। शारीरिक सौन्दर्य या अगाध ऐश्वर्य मनुष्य को यथार्थ सुख का अधिकारी नहीं बना सकते।

कुछ आगे आने पर मानससरोवर होकर कैलाश जाने की पथ-रेखा दूसरी ओर छूट गई। प्रायः यात्री लोग उसी मार्ग से जाते हैं। किन्तु हम लोग पहले तीर्थापुरी जा रहे हैं। सामने एक छोटी पहाड़ी नदी—'गारू-चू' (चू शब्द का अर्थ है नदी) के ऊपर काठ का पुल, तटभूमि में पथरीली रेती है। आज आठ-नौ मील जाना होगा।

साफ आकाश में प्रखर रौद्र का मेला लगा है। सामने जहाँ तक देखा जाता है—नीले आकाश के नीचे केवल दिगन्त-चुम्बी वृक्ष-लताहीन धूसर पर्वत-मालायें, नये देश की सभी चीजें नूतन अथच सुन्दर हैं। वृक्ष-लताहीन पहाड़-पर्वत, तीव्र वेग वाली छोटी-छोटी नदियाँ, तृणविहीन प्रस्तर-समाकीर्ण नदी का उपकूल, श्यामल शोभा-शून्य कण्टकगुल्माच्छादित सीमाहीन मालभूमि, जन-प्राणी-विरल पथ —निविड़ निस्तब्धतामय तिब्बत देश। कहीं आकाशमार्ग से एक दो अनजान पक्षी मीठे स्वर से कूजन करते हुए चले जा रहे थे। सब कुछ मन के ऊपर गंभीर रेखापात कर जाते हैं। दूर पर रिंगुङ् ग्राम, उसके पास से मानससरोवर का पथ चला गया है।

साढ़े तीन बजे कर्नाली नदी की विस्तीर्ण रेती पर हमारा आज के लिए पड़ाव डाल दिया गया। घोड़े, खच्चर इधर-उधर दौड़ने लगे। गाइड के तम्बू से कोई तो गोहरी बटोरने गया कोई जल लाने और कोई जानवरों को चराने चला गया। तीखी धूप। तम्बू के ठीक सामने दूर पर चिरतुषारावृत

गुरलामान्धाता प्रर्वत-श्रेणी धूप में चमक रही थी। तिब्बत में साढ़े आठ बजे से पहले ठीक सन्ध्या नहीं होती। आकाश निर्मल रहने पर रात के नौ बजे तक भी एक उज्ज्वल आँखें चौंधाने वाली आभा दिखाई पड़ती है। आज पूर्णिमा है। दिन के अन्तिम प्रकाश के साथ पूर्ण चन्द्र के स्निग्ध मधुर ज्योत्सना का मिलन सा है ! अगणित नक्षत्रों से सुनील आकाशतल में चिरहिम-मंडित 'गुरुलामान्धाता' चांदनी से मधुमय हो उठा। आकाश में ऐसी दीप्ति है कि नक्षत्रों का प्रकाश भी धुँधला हो गया। निस्तब्ध रात्रि में चारों ओर प्रकृति का रोमांचकारी सौन्दर्य-मेला था। ऐसी मधुरता, ऐसी कमनीयता, ऐसा परिपूर्ण प्रशान्त परिवेश, इससे पहले कभी नहीं देखा गया ! बहुत देर रात्रि तक तंबू के खुले दरवाजे से मुग्ध होकर मान्धाता पर्वत की ओर मैं देखता रहा। मानो यह देवलोक है !

रात्रि की गहनता के साथ-साथ दुर्दान्त शीत ने शरीर को सिकोड़ डाला था। सारे गरम कपड़े कंबल आदि आपादमस्तक ओढ़कर भी शांति नहीं मिल रही थी। सुबह उठने की जल्दी नहीं थी। किन्तु धूप निकलने के साथ ही साथ न जाने कहाँ से आकर असंख्य मच्छड़ों ने तम्बू को घेर लिया। १४००० फुट ऊँचे तिब्बत में—जहाँ शीतकाल में १५-२० फुट बर्फ गिरता है, वहाँ मच्छड़ ! सहजात संस्कार के वश जब वे नर-शोणित-पान में मत्त हो गये तो उनके अस्तित्व के सम्बन्ध में संदेह का अवकाश नहीं रहा।

बहुत ही आरामदायक धूप। निर्मल आकाश में प्राणवन्त धूप का खेल—स्निग्ध और दीप्त। नौ बजे के बाद भोजनादि करने के पश्चात् जब तंबू उठाकर यात्रा का आयोजन किया जाने लगा, तब दिखाई पड़ा कि तकलाकोट के दो

घोड़े नहीं हैं, भाग गये या डाकू ले गये। डाकू मौका पाने पर सहायहीन यात्रियों का घोड़ा ले कर भाग जाते हैं। तिब्बत में कानून, राजा, वजीर हैं, ऐसा नहीं प्रतीत होता। लूटमार का देश है । इस कारण घोड़े-खच्चरों के चरने के लिए छोड़ देने पर रात को भी सशस्त्र पहरा रखना पड़ता है और कब वे तंबुओं पर हमला करके मार काट कर सब कुछ लूट ले जायेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं रहता। इस कारण हम लोग अच्छी तरह तैयार होकर आये थे। हर रात को ही तंबू के सामने बन्दूक की खाली हवाई "फायर" की जाती थी और सशस्त्र पहरे का प्रबन्ध किया गया था। हिंसक जन्तुओं से उतना भय नहीं है जितना कि हिंसक मनुष्यों से।

बहुत खोज करने पर भी उन दोनों घोड़ों का पता न मिला। कीचखम्पा ने एक तिब्बती घोड़े-वाले को तकलाकोट की ओर भेज दिया। हम लोग 'छिबरा' की ओर चलने लगे। कर्नाली नदी के किनारे-किनारे रास्ता है। ऊपर सूर्यालोकोद्भासित आकाश का चन्द्रातप, बायें नदी की रेती के बाद ही कल्लोल-मुखरा खरस्रोता नदी। दूसरे पार नात्युच्च नग्न पर्वतश्रेणी—सामने दृष्टि रेखा के शेष प्रांत से और एक उच्च पर्वत मानो भृकुटी चढ़ाये खड़ा है। दाहिने और पीछे दूर-विन्यस्त पर्वतमाला वृत्त के रूप में पर्वत श्रेणी के घेरे की ओर देखने से हृदय में भय का संचार होता है, मानो हम लोग चारों ओर से शत्रुओं के द्वारा घिर गये हैं। इन सबका तो अतिक्रमण करना ही होगा।

नदी की तट-भूमि के ऊपर से लगभग २ मील आगये हैं। ऐसे समय एक आकस्मिक विपत्ति ने सबको भौचक्का कर दिया। सीधा रास्ता समझकर अरुण बाबू को सामने रखते हुए घुड़सवार लोग नदी के किनारे-किनारे चल रहे

थे। एकाएक अरुण बाबू के घोड़े के सामने के दोनों पैर दलदल में घुटनों तक धँस गये। सवार छिटक कर घोड़े के सिर पर से गिर पड़ा। बहुत अच्छे सवार होने के कारण एकाएक गिरने पर भी अरुण बाबू ने अपने को सँभाल लिया था, नहीं तो गर्दन ही टूट जाती। सवार से मुक्त होकर घोड़ा छटपटाकर किसी तरह अपने पैरों को निकालकर एकदम पीछे की ओर दौड़ पड़ा। उस घोड़े को दौड़ते देखकर पीछे के सारे सवार तथा बोझ ढोने वाले घोड़े भीषण चीत्कार करते हुए उसी ओर दौड़ने लगे। क्षण भर में एक महान् विशृङ्खल अवस्था उत्पन्न हो गयी। उन घोड़ों को काबू में लाने में बहुत ही कठिनाई प्रतीत हुई थी। सरदार 'दरबू' के असीम साहस और बहुत ही प्रयत्न से अरुण बाबू के घोड़े को पकड़ना संभव हुआ।

घोड़ा पाकर अरुण बाबू झट उस पर चढ़ गये। कर्नाली की उपत्यका के भीतर से ऊँचा-नीचा पथ निस्तब्ध और जन-प्राणी-शून्य है। कल तकलाकोट छोड़ कर हम 'टयो' ग्राम आये थे। उसके बाद इन दो दिनों के भीतर लोकालय का चिह्न मात्र भी नहीं दिखाई पड़ा, एक चिड़िया तक नहीं। अद्भुत स्थान है—कहानी के निद्रित देश की तरह। दोपहर को धूप बहुत तेज! १४,००० फुट उच्च स्थान में भी पसीने से तराबोर होकर चल रहे थे। उसके विपरीत रात को भीषण सर्दी। तापमान-यंत्र का पारा जमने के बिन्दु के भी नीचे उतर जाता है।

चार घण्टे चलने के बाद अर्थात् प्रातः आठ मील कर्नाली के किनारे-किनारे आकर अब उसे छोड़ना पड़ा। दो पहाड़ों के बीच एक सँकरे पथ से हम लोग आगे बढ़ रहे थे। पास ही एक छोटी पहाड़ी नदी तीव्र वेग से बहती

चली जा रही थी। उसका जल बहुत ही स्वच्छ था। पहाड़ का पादमूल छूकर हमारा रास्ता था। ठीक ऊपर ही विराट् उन्मुक्त पत्थर के ढोके निरालम्ब होकर न जाने किस चुम्बक के आकर्षण से लटक रहे थे। भय होता था कि मामूली शब्द के स्पन्दन से ऊपर के पत्थर खिसक कर हमें दबा देंगे। ऊपर की ओर देखने से डर लगता था। नीचे की ओर सिर झुकाये हम लोग चलने लगे। इसी तरह जितना ही आगे बढ़ रहे थे, उतना ही रास्ता दुर्गम होता जाता था। अबकी हम लोग मानो नदी के जल छूते हुए पत्थरों से भरे बहुत ही सँकरे पथ से चल रहे थे। कष्ट की सीमा नहीं थी, पत्थर से ठोकर खाते-खाते पैर की उगलियां निःसार सी हो गई थीं। पथ की दुर्गमता नित्य नये ढंग से सामने आने लगी। विपरीत दिशा के पर्वतों का नग्न कंकालमय चेहरा देख कर भय की अपेक्षा समवेदना ही अधिक हो रही थी।

उस विपद-पूर्ण पथ का किसी प्रकार अतिक्रमण करके लगभग चार बजे 'छिबरा' में उस छोटी नदी के किनारे पहुँच कर खेमा डाला गया। चारों ओर ही उच्च पर्वतों की आवेष्टनी, नदी के तीर में हरी-हरी घास, घोड़े आनन्द से हिनहिनाते हुए घास खा रहे थे। कुछ देर बाद भगोड़े दोनों घोड़ों को लेकर घोड़ा वाला आ पहुंचा। वे दोनों तकलाकोट—अपने घर भाग गये थे। कष्ट के हाथ से सभी प्राणी मुक्ति पाना चाहते हैं। घोड़े समझ गये थे कि वे सुदीर्घ कष्टपूर्ण मार्ग में खिचे जा रहे थे।

संध्या के कुछ पहले लामा-वेशधारी तिब्बती स्त्री-पुरुषों को तम्बू की ओर आते देख कर हम लोग अवाक् हो गये। जन-प्राणी-हीन देश में मनुष्य का मुख देख कर आनन्द न होकर भय ही अधिक हुआ। सुना था, डाकू दल के

लोग दिन के समय इसी तरह वेश बदल कर सब कुछ देख सुन जाते हैं। उन दो मूर्तियों का आविर्भाव अशुभ ही प्रतीत हुआ। गाइड आगे चला गया। उन लोगों से कुछ बातचीत करके उसने आकर खबर दी कि वे दोनों भिखमंगे हैं, वानप्रस्थ लेकर इसी भाव से भिक्षु का जीवन चला रहे हैं। अच्छी बात है, कुछ सत्तू, गुड़, एक-एक सिगरेट देते ही वे खुश होकर चले गये। किन्तु अधिक दूर नहीं गये, निकट के पर्वत पर चढ़ कर गोहरे जलाकर घूमते और घण्टा डमरू बजाते हुए ऊँचे स्वर से कुछ मन्त्रोच्चारण जोर-जोर से करने लगे। सुना कि भूत भगाने के लिए वे उस प्रकार की प्रक्रिया और मन्त्र पाठ करते हैं। तिब्बतियों में भूत का भय बहुत भयंकर है। उनकी धारणा है कि भूत प्रेत सभी जगह घूमते फिरते रहते हैं और मौका पाते ही गरदन तोड़ देते हैं। संध्या समय बन्दूक की आवाज की गई। रात भर उन दो आदमियों के ऊपर सावधानी रखने का प्रबन्ध किया गया।

रात को शीत से सभी सिकुड़ते जा रहे थे, कोई नहीं सो सका। हड्डी के भीतर तक कम्पन हो रहा था। भोर में डा० दे ने देखा—तम्बू के भीतर तापमान यंत्र का पारा २८ डिग्री पर है। विश्वास नहीं हो रहा था, किन्तु प्याले का जल बर्फ हो गया है—देख कर संदेह का अवकाश नहीं रहा। १४,५०० फुट पर ऐसा भी संभव था। फिर १६,००० फुट चढ़ने पर कैसी अवस्था होगी, उसे सोच कर सभी के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगीं। दुर्गात्मानन्द जी ने एक लम्बी साँस छोड़ कर कहा—'और क्या होगा, रक्त जमकर बर्फ हो जायगा।' इतना कहकर वह रजाई से अच्छी तरह शरीर को ढँक कर दूसरी करवट लेट गये।

आज चौदह मील का पड़ाव है। गन्तव्य स्थान है 'यूपचा'। गाइड ने कहा—रास्ते की हालत बहुत खराब है। अन्तिम भाग में एकदम पानी नहीं मिलेगा। यूप्चा में केवल एक ही छोटा झरना है। लगभग साढ़े दस बजे हम लोग निकल पड़े। पहले ही १००० फुट की चढ़ाई ! पथ का कहीं निशान मात्र भी नहीं था। दिशा बताने वाले पर्वत शिखर पर ध्यान रख कर सीधे चलना होता है। यही यहाँ का नियम है। तिब्बत में पथ-बाट कहीं कुछ नहीं है। पथ-चिह्न-हीन स्थान में किसी खास पर्वत-शिखर को लक्ष्य करके पथ बनाकर अग्रसर होना पड़ता है। चढ़ाई के बाद ही खड़ी उतराई आ गई, तीन बजे तक कंकरीली प्रस्तरसमाकूल इस चढ़ाई उतराई को समाप्त कर हम लोग अपेक्षाकृत समतल भूमि में आ गये। इसका नाम है 'लाङ्छू'।

हम लोग आगे चल रहे हैं। दूर से दो तिब्बती दिखाई पड़े। वे बहुत सी भेड़-बकरियां चरा रहे थे। गाइड उनके पास जाकर पथ का पता ले आया एक पहाड़ लांघने पर सामने के पठार पर तीन-चार काले तंबू दिखाई पड़े। वे तंबू तिब्बतियों के घर हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के मार्ग में जहां जल और भेड़-बकरियों के चरने लायक यथेष्ट घास देखते हैं, वहीं तिब्बती लोग खेमा डालकर कुछ दिन रहते हैं। फिर आगे बढ़ जाते हैं। पश्चिम तिब्बत के अनेक व्यक्तियों को इसी प्रकार साल के अधिकांश समय व्यापार के सिलसिले में और पालतू पशुओं के पालने के लिये देश के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक अपने परिवार के लोगों को और चल सम्पत्ति लेकर घूमते रहना पड़ता है।

साधारण तिब्बत भ्रमणकारियों और विदेशी पर्यटकों ने उस तरह के

घुमक्कड़ तिब्बतियों को यायावर कहा है। असल में वे यायावर नहीं हैं। घर-दुआर, स्थायी वासस्थान और स्थावर सम्पत्ति उनके भी हैं। किन्तु घोर दरिद्रता और प्राकृतिक विपर्यय की तीव्र ताड़ना से प्रपीड़ित होकर आत्मरक्षा तथा जीविका अर्जन के लिएं लाचार होकर उन्हें निरन्तर घूमते रहना पड़ता है। तिब्बत में दरिद्रता कितनी भीषण है, वह जो लोग तिब्बतियों से घनिष्ठ भाव से परिचित होने का मौका पा सके हैं, वे ही जानते हैं।

काले तंबुओं के पास-पास हम लोग चल रहे थे। इतने में बाघ के समान चार तिब्बती बड़े-बड़े कुत्ते तम्बू से निकल कर हमारे ऊपर हमला करने के लिए दौड़ पड़े। डर कर घोड़े, खच्चर और उनके रखवाले इधर-उधर भागने लगे। उनका चेहरा देखकर मालूम हुआ कि उनके हाथ से बच निकलना असम्भव है। कीचखंपा ने झट बन्दूक उठाकर जोर से चिल्लाते हुए तम्बू वालों से कुत्ते संभालने के लिए कहा, परन्तु कौन किसकी चिल्लाहट सुनता है? कुत्तों को मार डाला जायगा, ऐसी अन्तिम सावधानी की बात सुनाते ही चार-पांच तिब्बतियों ने निकल आकर सीटी देते हुए अपने कुत्तों को संभाला। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हुई। गोली से कुत्तों को मारा जायगा, इस बात से क्रुद्ध होकर १०-१२ तिब्बती स्त्री-पुरुष अस्त्र-शस्त्र लिये हमारे ऊपर आक्रमण करने के लिए आ पहुंचे। उनके हाथ में भाले और गड़ासे की तरह अस्त्र-शस्त्र थे। झगड़ा इतना बढ़ गया कि खून खराबी होता नजर आने लगी। अरुण बाबू ने अपनी राइफल भर ली। कीचखंपा और दरबू बन्दूक उठा कर खड़े हो गये। अन्त में हमारे आग्नेयास्त्र और भारी दल को देखकर तिब्बती गाली बकते हुए अपने-अपने तम्बू में घुस गये। झगड़े के समय तिब्बतियों का हिंसक चेहरा कैसा भीषण होता है, समझ में आ गया था।

यद्यपि उन तम्बुओं के पास प्रचुर जल और खेमा डालने योग्य यथेष्ट स्थान भी था तथापि उस झगड़े के बाद वहां रात को रहना उचित न समझ कर हम लोग 'युप्चा' की ओर बढ़ने लगे। और भी ३-४ मील जाना पड़ेगा। 'युपचा' में जल के मिलने के सम्बन्ध में गाइड ने सन्देह प्रकट किया। सामने ही एक खड़ी चढ़ाई थी। उसके आगे दो पर्वतों के बीच में से संकरे मार्ग का अतिक्रमण कर विस्तीर्ण पठार मिला। बहुत ही मनोहर प्राकृतिक शोभा थी। पर्वत के शिखर अति दूर हट गये से लगते हैं। पर्वत-प्राचीर में अब हमारी क्लान्त दृष्टि बाधा नहीं पाती थी। हमारे नेत्र विशाल अवकाश में फैल कर मुक्ति का आनन्द पाने लगे। हम लोग अग्रसर होते चल रहे थे। जाते-जाते कहीं रुक जाते और आँखें भर कर देख लेते थे। लम्बी सांस छोड़ कर फिर चलते थे, देख-देख अतृप्ति बढ़ती जाती क्योंकि ऐसा लगता था मानो जिसे देख रहा हूं, जीवन में फिर उसे देख नहीं पाऊंगा, इस कारण मन में उसका चित्र खींच लेने की लालसा रहती थी।

'डामा' नामक कंटीली झाड़ी से सारा पठार आच्छन्न है। पथ की रेखा तक नहीं है। केवल सामने बढ़ते जाते हैं। झाड़ी के कांटों से देह छिल कर खून निकल आता है। एक अनिर्वाण आनन्द के नशे में हमलोग मस्त थे। सुख और दुःख मानो आपस में एक दूसरे को छूकर अगल-बगल चल रहे हों। उस अज्ञात पथ पर लगभग दो घंटे तक चलते रहने पर गाइड डरते हुए बोला 'रास्ता भूल गया है।' इधर सन्ध्या का अंधेरा भी घिर आया था, अब क्या उपाय हो? कंटीली झाड़ियों के जंगल में प्रतीक्षा करने के लिये कहकर गाइड २-३ आदमियों को साथ लिये पथ और जल की खोज में इधर-उधर

दौड़ने लगा। एक ओर क्लांति, तृष्णा, भय, उद्वेग, उत्कंठा और इधर हिम-कण-युक्त हवा सारे शरीर को कंपाते हुए बह रही थी। सामने भीषण विपत्ति ! मानो हम निश्चित मृत्यु के आमने-सामने खड़े हैं। इतने आदमी और साथ के पशु जलाभाव से मर जायंगे। खड़े-खड़े तो रात वितायी नहीं जा सकेगी। सभी के मुंह सूखने लगे। विपत्ति में धैर्य और उद्यम ही चाहिए। निश्चेष्ट न रहकर मैं एक घोड़ेवाले को साथ लेकर विपरीत दिशा की ओर आश्रय की खोज में निकल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर ही एक सूखे पहाड़ी झरने का खात देख कर साथी मनुष्य की सहायता से पत्थर हटाकर सूखी बालू खोदने लगा। लगभग दो फुट खोदने के बाद ही बालू चूकर थोड़ा जल आने लगा।

जितना ही खोदता हूं, उतना ही जल बढ़ने लगा, देखकर भरोसा हुआ। सबको पुकार-पुकार कर इकट्ठा किया गया। इंजीनियर बाबू की देख-रेख में वहां एक भारी गड्ढा खोद लिया गया। प्रचुर स्वच्छ जल निकल आया। उस जल के पास ही कंटीली झाड़ियों को काटकर उस रात्रि के लिए खेमा डाला गया। रात्रि में प्राणान्तकर शीत ! श्री भगवान की दया से किसी प्रकार तम्बू के नीचे आश्रय तो पा गये। कृतज्ञता से हृदय में आनन्द का उच्छ्वास होने लगा।

उस सूखे गड्ढे से जल निकालने की बात पर तिब्बतियों और भोटियों के कैम्पों में भारी हलचल मच गई। लामा ने अपनी सिद्धि की शक्ति से जल निकाल कर सबको बचा लिया है—यही उनका दृढ़ विश्वास है। तिब्बती लोग लामाओं को बहुत ही भय मिश्रित श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उनकी

धारणा है कि जो जितने बड़े लामा होंगे, उनकी अलौकिक शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी। वृष्टि बन्द करना, पानी बरसाना, रोग से आराम कराना, भूत भगाना, मारण मंत्र जपकर किसी को मार डालना, पागल कर देना और भी न जाने क्या-क्या तिब्बती लामा कर सकते हैं। इन सब पाखण्डीपन को दिखाकर ही तिब्बत ऐसे गरीब देश में भी भिक्षुक लामा लोग अन्नहीन दरिद्र देशवासी के खून शोषण द्वारा, स्वच्छन्द जीवन निर्वाह करते रहते हैं, तिब्बती लोग, यहां तक कि हिमालय के उत्तरांश के भोटिये लोग भी लामा वेशधारियों से बहुत डरते हैं। जब वे घंटा डमरू बजाकर हड्डी की माला गले में लटकाये गंभीर शब्द से मंत्रोच्चार करते हुए किसी मकान में भिक्षा के लिए घुस जाते हैं तो गृहस्थ भय से अपने मुख का ग्रास भी उन्हें दे देते हैं। मनुष्य की खोपड़ी, बिल्ली, बंदर आदि जंतुओं की हड्डी और जादू टोना करने के भस्म आदि से भरे झोले को कन्धे से लटकाये विकट चीत्कार करते हुए डमरू बजाकर जब वे प्रेतनृत्य करते हैं, उस समय उनकी भयंकर मूर्ति देखते ही हृदय में भय का संचार होता है। वशीकरण, वाजीकरण, उच्चाटन आदि के मंत्र और अनेक प्रकार की क्रियायें वे जानते भी हैं। बहुतों से सुना है—भिक्षा न देने के फलस्वरूप मंत्रादि द्वारा उन्होंने किसी व्यक्ति को पागल बना दिया है, गाय-बकरी-भेड़ों को मार डाला है। कम से कम वहाँ के लोगों का ऐसा हीं विश्वास है।

रात को तम्बू के भीतर भी ताप की मात्रा २७ अंश है। सुबह होने पर सूर्य की किरणों से चारों दिशाएं उज्ज्वल हो गयीं। चारों ओर के पर्वत मानो हंसने लग गये। दूर के 'गुरलामान्धाता' का हिमाच्छादित शिखर

सुवर्ण वर्ण से रंजित हो गया ! चारों ओर सुनसान है। सभी लोग तंबू से निकलकर मीठी धूप तापने लगे। दूर के एक पर्वत-शिखर पर एक जंगली घोड़ा दिखाई पड़ा। पहले दिन ही गाइड ने कहा था—तीर्थापुरी के रास्ते में जंगली घोड़ों का दल दिखाई देगा। दूरबीन की सहायता से उस घोड़े को देखा, खासा बड़ा, हट्टाकट्टा था। रंग लाल सफेद मिला हुआ। भीत दृष्टि से हमारी तंबू की ओर कुछ क्षण देखते रहकर वह घोड़ा भाग गया। हमारे तंबुओं के पास ही 'डामा' जंगल के भीतर बहुत से जंगली राजहंस अपने बच्चों को लेकर निडर भाव से चर रहे थे। राजहंस भी बड़े-बड़े थे।

आज का पड़ाव १६-१७ मील से भी दूर है। 'दुलचू' तक जाना होगा। रास्ते में कहीं जल नहीं मिलेगा। पथ बहुत ही दुर्गम है। १० बजे के भीतर हम लोग खा-पीकर निकल पड़े। भोजन नाम मात्र ही का था। वायु के दबाव की अल्पता तथा बहुत अधिक ठण्ढक के कारण चावल दाल अच्छी तरह नहीं सीझते। ८० अंश उत्ताप में ही सब कुछ उबलने लगते हैं। परन्तु सभी आधा सीझे रह जाते हैं। आवश्यकता के कारण उस खिचड़ी में से थोड़ा-थोड़ा खाना पड़ा। किन्तु तिब्बत की आबोहवा के प्रभाव से जो कुछ खाया जाता है सभी हजम हो जाता है। तिब्बत भ्रमण समाप्त होने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि तिब्बत में दाल भात खिचड़ी आदि देशी खाद्य पकाने की चेष्टा न करना ही अच्छा है। उन दोनों चीजों को छोड़ कर दूसरे खाद्यों पर निर्भर रहने से अनेक झंझटों से मुक्ति भी मिल जाती है।

गाइड ने कहा था आज कैलाश का दर्शन होगा। उस चिर दुर्लभ, युगों की आशा-आकांक्षा की वस्तु, जिसके लिए यह दुर्गमपथ-यात्रा और कष्ट-जर्जर मार्ग की प्राणान्तरकर तपस्या है, उस रूपातीत रूप का दर्शन ! न जाने कैसे एक अज्ञात अव्यक्त आनन्द के आकर्षण से अपने को भूलकर अभिभूत की तरह चल रहा हूँ....। साथी तिब्बतियों के मुख में 'ॐ मणि पद्मे हुं' मंत्र का जप चल रहा है।

एक पहाड़ पर चलते हुए मैं चौंक उठा। भेंड़ के सींग की तरह पेंचदार बड़े सींगवाले एक जानवर का सिर पड़ा है, वजन लगभग एक मन होगा। हममें से कोई भी वह जन्तु क्या है, इसका निर्णय न कर सका, कुछ क्षणों तक परीक्षा और गवेषणा के अनन्तर ताराप्रसन्न बाबू ने कहा 'आईबेक्स' का सिर हो सकता है। तिब्बत के जंगली जानवरों में याक, नाना प्रकार के घोड़े, तेंदुये, भेड़िये, आईबेक्स, कुत्ते, बकरे, खरहे और बड़े-बड़े चूहे प्रचुर हैं। ब्रह्मपुत्र नद के उत्पत्ति-स्थान के आसपास लगभग १७,००० फुट ऊँचाई पर याकों के दल चलते-फिरते दिखाई पड़ते हैं।

चढ़ाई के पथ से चढ़ रहे थे। पर्वत की कमर के पास आने पर एक अनिर्वचनीय मनोहर शोभा देख कर मन एकदम अभिभूत हो गया। चारों ओर वृत्त के रूप में उदार पर्वत-माला। दृष्टि-रेखा की अंतिम सीमा तक हिमालय और तिब्बत की पर्वत-श्रेणी अविच्छिन्न भाव से वृत्त के रूप में मिली हुई है—मानो एक ही पर्वत-श्रेणी है, एक ही जाति और एक ही सभ्यता-संस्कृति अनादि काल से संगत होकर खड़ी है। मध्यान्ह की

सूर्य-किरणों से प्रतिफलित होकर सब कुछ सुनहला प्रतीत हो रहा था। मानो, यह कहानी का अलोक-सामान्य स्वप्न-राज्य है। इस विपुल परिवेश के भीतर आत्मस्थ होकर खड़े होने पर अपना क्षुद्र जीवकेन्द्र-बिन्दु अनन्त विराट के साथ मिल जाता है।

७-८ मील चलकर एक पर्वत के ऊपर उठ आये हैं, ठीक सामने ही दिखलाई पड़ा—शुभ्र-तुषार-मंडित कैलाशशृङ्ग का विराट शिखर। इतने दिनों तक जो कल्पना और ध्यान की वस्तु रही, वह आज मूर्ति धारण कर सामने विराजमान है। भक्ति-विह्वल चित्त से कैलाशपति की जय-ध्वनि करते हुए, भूलुण्ठित होकर देवाधिदेव महादेव को वहीं से हम लोगों ने प्रणाम किया। हृदय की तंत्रियाँ एक अज्ञात आनन्द के स्वर में बज उठीं। रौद्रोज्ज्वल, सुनील आकश को छूते हुए, विभूति-भूषितांग योगिवर मानो उन्नत-शीर्ष होकर विराजमान हैं। मुग्ध नेत्रों से उस अनुपम रूप-माधुरी की ओर मैं देखने लगा। त्रिलोचन के कृपानेत्रों के आशिष-चुम्बन से सर्वांग मुहुर्मुहुः रोमांचित होने लगे। परिपूर्ण आनन्द! उस अवस्था से उठने की इच्छा नहीं हो रही थी। अपने ही मन से मैंने गाया 'आजि कि हरष-समीर बहे प्राणे, भागवत मंगल किरणे··· (अर्थात्—भगवान की मंगल किरणों में आज प्राणों के भीतर कैसा आनन्द-समीरण बह रहा है!)। एक सहयात्री ने भक्तिविह्वल चित्त से शिवमहिम्न-स्तोत्र का पाठ करके अन्त में कहा—

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।

यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः। प्रार्थना और पाठ समाप्त

होने पर हम लोग प्रणत हृदय से वहीं बैठे रहे। जिस स्थान से प्रथम कैलाश दर्शन होता है उसके पास ही बहुत से पत्थरों के स्तूप सज्जित थे। साथी तिब्बती और भोटिये कैलाशपति को श्रद्धा निवेदित करते हुए अपनी रीति के अनुसार ऊँचे स्वर से विविध मन्त्रों का पाठ करने लगे। महान शांति का वातावरण था।

प्रथम दर्शन के स्थान से सरल रेखा पथ से कैलाश शिखर का दूरत्व १५-२० मील से अधिक नहीं प्रतीत होता। कैलाश शिखर एक विराट देवमंदिर के स्फटिक गुम्बद की तरह दिखाई पड़ रहा था। इतना स्वच्छ और शुभ्र कि उसकी उपमा नहीं मिलती और बहुत ही शांत, स्निग्ध, गम्भीर तथा नयनाभिराम। कैसा अनिर्वचनीय रूप-गौरव, वह चिरहिमानी-मण्डित शुभ्र किरीट सूर्यकिरणों से उद्भासित होकर एक अपूर्व माधुर्य की रचना कर रहा था। आज भी याद आता है कि वह समय जीवन का एक महान पुण्य मुहूर्त था। अभी भी शिवस्मृति का पुण्य स्पर्श मन में एक अव्यक्त आनन्द का स्पन्दन उत्पन्न करता है और ऐसा लगता है मानो वह विराट पुरुष अपने चरणों के मंगलस्पर्श से हमारे क्षुद्रत्व को चिर महान करने के लिए युगों से 'स्वे महिम्नि' विराजमान हैं।...

उस दिव्य शिखर की प्रशांत शोभा को छोड़ कर एकदम अनिच्छा रहते हुए भी हमें चलना पड़ा। पथ बिलकुल उतराई का था। थोड़ी देर बाद एक पहाड़ की ओट में चले जाने के कारण फिर कैलाश पर्वत नहीं दिखाई दिया। समस्त मन हाहाकार करने लगा। हे प्रभु, हे दयामय, हृदय की इस शून्यता को पूर्ण करो, परिपूर्ण दर्शन दो। जिस दर्शन का

विराम नहीं है, जिस मिलन में विरह नहीं है, जिस प्रेम में आकांक्षा नहीं है, उससे हृदय को लबालब भर दो।

पर्वत के पादमूल में उतर आये। सामने बहु-दूर-व्यापी अनुर्वर माल भूमि थी। पत्थर बालू और कंटकपूर्ण स्थान के ऊपर से मील पर मील हम चलते जा रहे थे। जलकष्ट से सभी लोग प्रपीड़ित थे। 'दुलचू' न पहुंचने तक प्यास बुझाने की आशा नहीं थी।

दाहिनी ओर विस्तीर्ण प्रान्तर में जंगली घोड़ों के दल दिखाई पड़े। वे दूर से भयचकित होकर हमारी गतिविधि ध्यान से देख कर एकसाथ धूल उड़ाते हुए बिजली के वेग से भाग गये—मानो मरुस्थल में घुड़सवार सेना किसी राज्य पर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़ी हो।

क्लान्त देह-मन लेकर मुमूर्षु अवस्था में 'दुलचू' आकर शतद्रु की एक शाखा नदी के किनारे पर पड़ाव डाला गया। थोड़ी दूर पर ही 'दुलचू गुंफा' है। उस समय हम और कुछ नहीं चाहते, केवल जल और विश्राम। सामने विराट पठार, उसी की अंतिम सीमा पर बरफाच्छादित कैलाश श्रेणी। संध्या होने में कुछ विलम्ब था। दुलचू में आने पर फिर कैलाश का दर्शन हुआ। तंबू का मुख कैलाश की ओर रखा गया है। भीतर बैठकर ही उत्तम दर्शन होता है। क्रमशः मौन सन्ध्या उतर आई, बायीं ओर एक पर्वतमाला प्रहरी के समान खड़ी थी। दुलचू में डाकुओं और जंगली कुत्तों का बहुत भय है। रात में बन्दूकें दागी गईं।

आषाढ़ २० बुधवार। नींद खुलने के साथ ही साथ तंबू का दरवाजा खोलकर बुभुक्षु नयनों से देखा—कैलाश पर्वत घन मेघ से आवृत है। पूर्ण

दर्शन नहीं हुआ, वेला के बढ़ते ही मेघ हट गया। मेघ के भीतर से प्रभात-सूर्य की किरण पड़ने से कैलाश क्षण भर के लिए परम शोभामय प्रतीत हुआ। सुबह का समय बहुत ही आरामदायक था। इतना कष्ट, इतना परिश्रम, इतनी तपस्या सभी आज सार्थक हुए। निकलने की जल्दी नहीं थी, आज का पड़ाव छोटा था—केवल १० मील मात्र। सामने कैलाश का मनोहर दर्शन, उन्हें इतने समीप पाकर एकदम अपना लेने की इच्छा होने लगी। हमलोग ऐसे सुन्दर प्रातःकाल का विविध प्रकार से उपभोग करने लगे। मन आनन्द से दोलायमान हो रहा था। तंबू के भीतर शिव के स्तोत्रों का पाठ हो रहा था, सभी के मन ध्यानमग्न मौन, मानो ठीक तीर्थ के भीतर हम लोग रह रहे हैं। हृदय तीर्थमय था। सामने 'दुलचु गुंफा' थी। गुंफा-वासी दिखाई पड़ते थे। लगता था, क्षितिज अखंड में मिल गया है। ससीम असीम, क्षुद्र महान, सुन्दर चिरसुन्दर हो गया है।

'दुलचू' छोड़कर हम लोग आगे चले। सब कुछ पीछे छोड़ कर अपने चिर आकांक्षित परमदेवता के चरणों में बहुत शीघ्र पहुंचने के लिए हम लोग कदम बढ़ाते हुए अग्रसर होते चले। साढ़े दस बजे रवाना हुए। घंटा भर चलने के बाद दाहिनी ओर तीर्थापुरी नदी के तीर पर 'दुलचू गुंफा' दर्शन करने के लिए हम लोग चले, छोटी-छोटी गुंफायें, द्वार बन्द, दर्शन आदि नहीं हुए।

दुलचू के थोड़ी दूर बाद कई बड़े-बड़े झरने मिले। तिब्बत के लोगों का ख्याल है कि वे झरने ही शतद्रु (सतलज) का उत्पत्ति-स्थान है। हो भी सकता है। दुलचू के पास से जो तीर्थापुरी नदी बहती जा रही है, वह शतद्रु में जाकर मिली है।

लौट आकर नदी के बायें तट पर से हम लोग अग्रसर होने लगे। नदी अप्रशस्त—जल भी बहुत कम है। किन्तु मछलियाँ बहुत अधिक हैं—छोटी बड़ी अनेक प्रकार की। निर्मल जलप्रवाह में अगणित मछलियों का खेल बहुत ही अच्छा मालूम हो रहा था। थोड़ी दूर पर जलमय कुछ प्रशस्त स्थान में बहुत से सारस और हंस निर्भय चर रहे थे। इतने बड़े सारस हमने कभी नहीं देखे थे। हमारा प्रकाण्ड दल शोरगुल करते हुए पास ही से जा रहा था, परन्तु वे निडर थे। समस्त तिब्बत में पक्षी-बध निषिद्ध है। तिब्बती दूसरे जंतुओं का मांस तो खाते हैं—जंगली घोड़े, चमरी गाय तक, किन्तु पक्षी का मांस खाना महापाप समझा जाता है। वहां के लोगों की धारणा है कि शिवजी ने एक बार पक्षी का रूप धारण किया था।

कँटीली झाड़ियों के भीतर से कुछ मील चले आये। बड़े-बड़े खरहे दौड़कर इधर उधर भाग रहे थे। एक स्थान पर कई चंगुओं (जंगली कुत्तों) ने बोझ ढोनेवाले एक घोड़े को घेर लिया, किन्तु गाइड के बन्दूक दागते ही चंगू का दाल भाग गया। चंगू १५-२० एकसाथ होकर चलते हैं और शिकार के ऊपर विभिन्न दिशाओं से एकाएक आक्रमण कर देते हैं। उनके पंजों से जंगली घोड़े तक नहीं बच सकते। देखने में चंगू एक छोटे भेड़िये की तरह होता है।

धूप बड़ी तेज थी। वायु के दबाव की कमी के कारण श्वास-कष्ट होने से बहुत ही क्लान्ति मालूम हो रही थी। लगभग १६ हजार फुट ऊपर आये हैं। तीव्र स्रोतवाली छोटी तीर्थापुरी नदी को कठिनाई से पार कर उसके दाहिने किनारे से हम लोग चलने लगे। अगणित हंस

छोटे-छोटे बच्चों को लेकर स्रोत के जल में बहते जा रहे थे। फिर उलटी ओर तैरते आ रहे थे। उनका निःशंक खेल देखने में बहुत ही अच्छा लग रहा था। कोई उनकी हिंसा नहीं करता इस कारण उन पक्षियों का इस प्रकार निर्भय विचरण संभव हुआ है।

दो पर्वत-मालाओं के भीतर से नदी के किनारे-किनारे आने पर कुछ दूर ही 'तीर्थापुरी' और 'ड्रोक्पोसार' नदियों का संगमस्थल मिला। पास के त्रिकोणाकार चौड़े स्थान में हमारे तंबू लगाये गये। उस समय सायंकाल होने में विलंब था। प्रचुर घास और जल पाकर घोड़ों को बड़ा आनन्द हुआ। ड्रोक्पोसार नदी पार कर तीर्थापुरी जाने का रास्ता है। दूरी ६ मील है।

अति शोभामय स्थान था। तीनों ओर पर्वत का घेरा संगम के मिलनोच्छ्वास शब्द पर्वतगात्र में प्रतिध्वनित होकर अनाहत रूप में मिलते जा रहे थे। ऊपर जंगली कबूतर झुंडों में उड़ते चले जा रहे थे।

इस समय हम लोग मानव-समाज से पूर्णतया विच्छिन्न हैं ❀ गत कई दिनों तक कहीं भी मनुष्यावास का चिन्ह तक दिखाई नहीं पड़ा—सिवाय

❀ 'एवरी मैन्स एनसाइक्लोपीड़िया' तथा 'मार्डन ज्वॉग्रफी' इत्यादि ग्रंथो से पता चलता है कि :—

(१) चमडो प्रदेश को छोड़ कर संपूर्ण तिब्बत का क्षेत्रफल ३४६४२० वर्गमील तथा आबादी १२७३६६६ (१९५४) है जिसमें चमडो प्रदेश में

एक गुंफा के। बड़ा ही अद्भुत देश है, परन्तु जहाँ भी तम्बू लगते हैं, थोड़े ही समय के भीतर लामा-वेशधारी भिखारियों का दल आकर तंबू घेर लेता है। लंबी जीभ निकालकर दोनों हाथों के अँगूठे दिखाकर बकइयाँ भरते हुए तंबू के पास आते हैं। यथार्थ में वे बुभुक्षु हैं। कंकाल के समान उनकी देह और आँखों के गढ़े में धंसे हुए चक्षुओं को देखकर हृदय में करुणा का उद्रेक होता है। तिब्बत के भिखारियों के संबंध में बहुत कुछ सुना गया था। इस कारण इन दरिद्र-नारायणों के लिए हम लोग मन भर सत्तू, गुड़ तथा प्रचुर सिगरेट साथ लाये थे। तिब्बती लोग सिगरेट को विलास की वस्तु समझते हैं। किन्तु पीने को मिलता नहीं। कुछ सत्तू,

---

बसे चीनी, मोंगोलियन तथा तिब्बतियों का अन्तर्भाव होता है। इनमें से अधिकतर लोग ल्हासा तथा चीनी सीमा के बीचवाले प्रदेशों में बसे है।

(२) राजनैतिक दृष्टि से तिब्बत एक स्वतंत्र लोकसत्तात्मक, अधिकतर चीन के प्रभाव में स्थित—राज्य है जो कि भूतपूर्व लामाओं तथा बौद्ध भिक्षुओं के अधिकारों को हटाकर सन् १९५३ में स्थापित किया गया। इसी साल चीनी साम्यवादियों ने तिब्बत पर आक्रमण किया तथा वहां साम्यवादी सरकार की स्थापना की। वहाँ की २० प्रतिशत आबादी लामाओं की है तथा बाकी तिब्बती उन्हीं (लामाओं) के जीवन-यात्रा में सहायता पहुँचाने का कार्य करते थे। यूरप के लोग बहुत ही अल्प संख्या में यहां प्रवेश कर पाये हैं। यहां की आबादी इत्यादि के विषय में अभी ठीक ठीक पता नहीं है, जो अनुमानतः १२५०००० मानी जाती है। (पद-टिप्पणी हिन्दी संस्करण—ग्रन्थकार)।

गुड़ और एक सिगरेट पाने से ही वे बहुत खुश हो जाते हैं। उनके अन्तर-देवता ऐसी दीन पूजा से प्रसन्न हो जाते हैं। अनेक प्रकार से वे कृतज्ञता और आनन्द प्रकट करते हैं। स्वामी दुर्गात्मानन्द जी दिया-सलाई जलाकर जब सिगरेट सुलगाकर उनके मुंह में देने लगे तो वे अवाक् विस्मय से ताकते रह जाते हैं। कहीं कुछ नहीं – जरा रगड़ते ही आग निकल आई। बहुत थोड़े ही में ये लोग प्रसन्न होते हैं। किन्तु बिना दिये भृकुटी चढ़ाकर गाली देते हुए भगा देने पर उनके आत्म-सम्मान में बहुत आघात पहुंचता है। तब वे एकदम उन्मत्त हो जाते हैं। गाइड ने कहा—"दो साल पहले एक यात्री दल ने भिखारियों को कुछ न देकर बड़ी-बड़ी गालियां देते हुए भगा दिया था। उपेक्षित भिखारियों ने भूख की ताड़ना से खाने की चीजों को जबर्दस्ती छीन लेने के लिए दल-बद्ध हो कर तंबुओं को घेर लिया! दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। खून-खराबी हो गई। तिब्बतियों की ढीली पोशाक के भीतर तलवार छिपी रहती है। नंगी तलवार हाथ में लिये उन लोगों ने यात्रियों पर हमला कर दिया। एक यात्री का सिर बचाते हुए मेरे ही हाथ पर तलवार का वार पड़ा।" कीचखंपा के हाथ में उस समय भी घाव का दाग था।

आषाढ़ २१, बृहस्पतिवार (Thursday) भोर में ही हम लोग तीर्थापुरी के लिए चल पड़े। 'दरबू' बोझ ढोनेवाले घोड़ों और तंबुओं का पहरा देने के लिए अकेला रह गया। प्रथम ही 'ड्रोकपोसार' नदी पड़ी। पोरसा भर जल था और स्रोत तीव्र था। नदी पार करना आवश्यक था। घोड़ों को पहले जल में उतारने में बहुत कठिनाई हुई। बाद में पीठ पर सवार

लिये वे तैर कर अनायास उस पार चले गये। गाइड और तिब्बती घोड़े-वाले सभी घोड़ों की पीठ पर चले गये, परन्तु मैं मुश्किल में पड़ गया। नदी में इतना अधिक जल और तीव्र स्रोत कि चलकर पार करना असंभव था। लाचार होकर मैं घोड़े की सवारी से नदी पार हुआ। एक पर एक इस प्रकार तीन पर्वतों का अतिक्रमण कर कुछ समतल स्थान में आये। सामने कँटीली झाड़ियों का विशाल पठार, चारों ओर ही दुर्लङ्घ्य पर्वतमाला हमें घेर कर खड़ी थी। आकाश निर्मल था। साथ के तिब्बती लोग 'ॐ मणि-पद्मे हुं' मंत्र गंभीर स्वर से जप करते हुए चल रहे थे। दलबद्ध जंगली कुत्ते इधर-उधर दौड़ते जा रहे थे, किन्तु बहुत से आदमियों को देखकर आक्रमण करने का साहस उन्हें नहीं हो रहा था।

तिब्बती लोग तीर्थापुरी को 'टेतापुरी' कहते हैं। पुराण में मिलता है कि अति प्राचीन काल में एक असुर अभीष्ट वर लाभ की आशा से कैलाश धाम में तीव्र तपस्या करने के लिए बैठ गया था। दीर्घ काल की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर आशुतोष ने उस असुर के पास आविर्भूत होकर उसे इच्छित वर माँगने के लिए कहा। आनन्द से उत्फुल्ल होकर असुर ने महादेव के चरणों में लुंठित होकर कहा—"मैं एक ही वर चाहता हूँ कि जिसके सिर पर मैं हाथ रखूँ, वह उसी समय भस्म हो जाय।" भोलानाथ ने 'तथास्तु' कहकर असुर को उसका मुंह माँगा वर दिया। उस दुष्ट असुर ने वर का फलाफल जाँचने के लिए महादेव के सिर पर हाथ रखने के उद्देश्य से हाथ बढ़ा दिया। भूतभावन आसन्न विपत्ति जानकर भागने लगे। असुर भी उनके पीछे-पीछे दौड़ा। त्रिभुवन घूमकर भी महादेव जी को कहीं शरण

नहीं मिली। क्योंकि जहाँ कहीं भी वह पहुंचते असुर ठीक उनके पीछे खड़ा हुआ रहता ! त्रिलोचन की ऐसी विपत्ति देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने छद्म वेश धारण करके असुर के सामने आकर उससे दौड़ने का कारण पूछा। असुर के निकट सारी घटना जान कर ब्रह्मा ने उसे धमकाते हुए कहा—'छि-छिः तुम ऐसे मूर्ख हो, इस मामूली बात के लिए ऐसे घबड़ाये हुए हो, सिर पर हाथ रखकर परीक्षा करनी होगी। बस यही न, तो अपने ही सिर पर हाथ रखने से वर के फलाफल की परीक्षा हो जायगी।' ब्रम्हा के मुख से ऐसा सहज समाधान सुन कर तुरन्त उसने अपने ही सिर पर अपना हाथ रखा, और साथ ही साथ वह भस्म हो गया। वही असुर भस्मासुर के नाम से प्रसिद्ध है। तीर्थापुरी स्थान में ही वह असुर भस्मीभूत हो गया था। शिव की अपार महिमा के स्मारक रूप में वह स्थान तीर्थ में परिणत हो गया है।

लगभग दो मील दूर से ही खड़िया मिट्टी की तरह बिलकुल सफेद वृक्ष-लता-हीन अल्प ऊँचे कुछ पर्वत दिखाई पड़े। गाइड ने बताया कि वही तीर्थापुरी है। आगे चलने पर वे पहाड़ और भी साफ दिखाई पड़ने लगे। एक पहाड़ के नीचे विविध रंगों से चित्रित एक गुंफा है। तिब्बत की सभी गुंफाओं का रंग और शिल्पकला प्रायः एक ही प्रकार की है। इस कारण गुंफा पहचानने में कठिनता नहीं होती है।

गुंफा के तीन मकान शतद्रु के दक्षिण तीर पर—थोड़ा ऊपर की ओर हैं। थोड़ी दूर पर ही तीर्थापुरी नदी शतद्रु के साथ मिल गई है। गुंफा उस संगम-स्थल के पास ही है। शतद्रु नदी का तिब्वती नाम है 'लाङ्

चान् खम्बा' या 'लाङ चान्-चू ।' गुंफा के बायीं तरफ से नीचे की ओर गरम जल के फौव्वारे में जाने का पथ है। शतद्रु के तट तक बहुत दूर उतर आना पड़ा। यहाँ शतद्रु २५-३० गज ही चौड़ी है। परन्तु स्रोत बहुत ही तीव्र है। और भी थोड़ा आगे बढ़ने पर शुभ्र प्रान्तर की तरह विस्तृत स्थान में पास-पास बहुत से गरम जल के फौव्वारे मिले। स्थान-स्थान पर खौलते हुए जल का प्रवाह दिखाई पड़ा। आधी मील तक सारे स्थान की मिट्टी (पत्थर) डबल रोटी की तरह पोली और नरम थी। चलते समय दुम-दुम आवाज होती है, मानो नीचे का अंश एकदम पोला है। गंधक की बहुत ही तीव्र गंध है। उस आधी मील की परिधि के भीतर फौव्वारे भिन्न-भिन्न स्थानों में कभी छ महीने और कभी साल भर के लिए प्रकट होते हैं, फिर बंद हो जाते हैं, पुनः नये स्थान में फूट निकलते हैं। स्थान बीच-बीच में टीले की तरह ऊँचे हैं। एक बहुत बड़ा फौव्वारा शतद्रु की जल-रेखा के ५-७ फुट ऊपर दिखाई पड़ा। खौलता हुआ जल तीव्र रूप से ६-७ हाथ ऊंचाई तक वाष्प के रूप में उठ जाता है—और कैसा भीषण गर्जन! पास जाने में डर लगता है। समूचा स्थान शीत के ६ महीने बरफ से ढंका रहता है। शतद्रु का स्रोत भी जम जाता है। समूचा स्थान ही १०-१२ फुट बरफ के नीचे लुप्त हो जाता है। परन्तु बहुत ही आश्चर्य की बात है कि उस समय भी ये गरम जल के फौव्वारे कैसे अपने को बचाये रखते हैं। विस्मय से हम सब घूम घूम कर देखने लगे। एक गरम जल के फौव्वारे के पास दो कुण्ड हैं। गरम जल प्रथम कुंड में आ गिरता है और वहां से दूसरे कुंड में चला जाता है। कुण्ड के गरम जल में आराम से हम लोगों ने स्नान कर लिया। तिब्बती साथी अपनी मैली पोशाक सहित गरम जल में

उतर पड़े—देखते-देखते कुंड का जल मैला हो गया, ऐसी ही मैली उनकी पोशाक थी। ताराप्रसन्न बाबू ने द्विभाषिये के सहयोग से हंसते हुए एक तिब्बती से पूछा—"तुमने कितने दिन पहले नहाया था।" उसने उत्तर दिया—"सो बता नहीं सकता।" फिर प्रश्न हुआ—"जन्म से लेकर कभी स्नान किया है?" उत्तर आया—"कई बार स्नान किया है।" फिर प्रश्न हुआ—"अन्तिम स्नान कितने दिन पहले किया था, दो-एक साल में कभी नहाया था?" इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। तिब्बती नीचे की ओर दृष्टि रखकर चुपचाप खड़ा ही रह गया। कुछ क्षणों के बाद अग्निमय दृष्टि से उसने ताराप्रसन्न बाबू की ओर ताका—कैसी हिंसक और क्रूर दृष्टि! मैं समझ गया, उस दिल्लगी की बात से वह मन में बहुत आहत हुआ है, उसकी आत्म-मर्यादा को चोट पहुंची है। साथी के यह बात समझाकर कहते ही, उन्होंने झट जेब से सिगरेट केस खोलकर उस तिब्बती के हाथ में एक सिगरेट थमा दिया, मानो जादू के बल से तिब्बती के आंखों का रंग बदल गया—उसके चेहरे पर प्रसन्नता की हंसी खिल उठी, मुझे भी शांति मिली।

१६,००० फुट ऊपर तिब्बत में शतद्रु नदी के तीर पर गरम जल में स्नान बहुत ही आनन्द-दायक और स्मरणीय रहेगा। पता लगा कि यहाँ से १० मील दूर 'खाउङ्ग लांग' नामक स्थान में और भी कई गरम जल के फौव्वारे हैं।

भस्मासुर पर्वत देखने के लिए चले। किन्तु ऊपर चढ़ना विपत्तिजनक है। गाइड ने मना किया, नरम पत्थर में पैर रखते ही झर-झर टूट पड़ते हैं।

पहाड़ के पादमूल से भस्मासुर का भस्म अर्थात कुछ चूने की तरह पत्थर के चूर्ण ले आये। सुना वही तीर्थापुरी का प्रसाद है! शतद्रु की पथरीली रेती पर बैठ कर विश्राम और जलपान कर लिया गया।

तिब्बत में इस समय गीष्म ऋतु है या वसंत? इसके बाद ही वर्षा आयेगी। अधिकतर ही ओले बरसते हैं। कदाचित पानी भी बरसता है, उसके बाद कार्तिक से लेकर चैत्र मास तक ६ माह शीतकाल या बरफकाल रहता है। शेष ६ महीने में अन्यान्य ऋतुयें, केवल कुछ समय ताक-झांक कर चली जाती हैं! कोई भी ऋतु पूरी तरह प्रकट नहीं होती। शीतकाल ने मानो अन्य सभी ऋतुओं को दबा रखा है। गरमी के दिनों में भी ठंढक २४ अंश है।

गुंफा देखने चले। जीर्ण-लामा-वेशधारी ८-१० कौतूहली डाबाओं ने हमें घेर लिया। गाइड ने एक डाबा के कान में २-४ बातें करते ही 'डाबा' हमें मंदिर के भीतर ले गये। प्रथम ही अंधकार-पूर्ण उपासना-गार मिला। पुजारी ने गर्भ-मंदिर के भीतर मक्खन का एक दीया जलाकर हमें भीतर जाने का इशारा किया। गर्भ-मंदिर बहुत ही छोटा है एक-एक करके हम लोग भीतर घुसे। उच्चासन पर भगवान बुद्ध देव की कमनीय काष्ठ-मूर्ति स्थापित है। दोनों ओर दो लामाओं के विग्रह हैं। सभी मूर्तियां लकड़ी की बनी और सोने के जल से रंगाई हुई हैं। नीचे वेदी के ऊपरी स्तरों में सज्जित अनेक धातु की मूर्तियाँ—पार्वती, चतुंभुज विष्णु, शिव-ताण्डव-मूर्ति, आचार्य शंकर, अष्टभुजा देवी तथा कुछ अपरिचित देव-देवियों की मूर्तियां हैं। पूजा आदि का कोई आडम्बर नहीं है। तिब्बत

में फूल शायद पैदा ही नहीं होते। अब तक हमलोगों ने कहीं एक भी फूल नहीं देखा। हम लोगों ने सुगंधि धूपबत्ती जला दी। गर्भ-मन्दिर की दोनों बगलों में भंयकर आकृति वाले, कुछ दैत्यों की मूर्तियां खड़ी हैं। सभी टंका देकर प्रणाम करते हुए निकल आये। पुजारी और एक डाबा उसी समय प्रणामी टंकाओं को आनंद से गिनने लग गये। नाट्य मंदिर ही उपासना और भोजनागार रूप से व्यवहृत होता है।

जाना गया उस गुंफा के निवासी कुल १३ डाबा (प्रवर्तक ब्रह्मचारी) हैं। लामा एक भी नहीं है। डाबा लोग व्यापार के द्वारा जीविका कमाते हैं। हर एक गुंफा की कुछ निःशुल्क जमीन है। उसके अतिरिक्त गरीब आदिवासियों से भी नजराने के रूप में कुछ अनाज वसूल करते हैं। जब हम लोग उष्ण प्रस्रवण देखने जा रहे थे, तब एक डाबा कई जब्बुओं पर सामान लादकर ३० मील दूर 'गानिमा' मंडी जा रहा था। उसके साथ एक बन्दूकवाला पहरेदार भी था। पश्चिम तिब्बत में लामा-वेशधारी डाबा लोग नौकरी, व्यापार, भिक्षा आदि अनेक प्रकार के कार्यों से जीविका कमाया करते हैं। लाभ का कुछ अंश गुम्फा में देना होता है। कुछ लोग व्यापार से थोड़ा बहुत धन कमाकर घर लौट जाते हैं। गुंफा के पास ही चमड़े के थैलों में बिक्री के सामान रखे हुए हैं। एक डाबा उन्हें सजाकर रख रहा था।

तीर्थापुरी गुंफा लद्दाख की हेमिश गुंफा के अधीन है। बीच-बीच में उस गुंफा से कोई लामा आकर यहां के डाबाओं को धर्मोपदेश तथा काम-काज का आदेश देकर चले जाते हैं। तीर्थापुरी की प्राकृतिक सुंदरता बहुत ही

मनोहर है। निकट कोई ऊंचा पहाड़ नहीं है, सुबह से शाम तक निर्मल सूर्य किरणों से वह स्थान सदा उद्भासित रहता है। डाबाओं से बिदा लेकर हम लोग ३ बजे के समय तंबू में लौट आये।

तीसरे पहर तिब्बती घोड़ावाला 'रिंगबू' चुपचाप सिर झुकाये तंबू के सामने आ खड़ा हो गया। चेहरे पर हंसी की झलक थी। हम जानते थे कि वह क्यों आया है। रोज इसी समय उसे सिगरेट और कुछ खाने के लिए दिया जाता है। अपना पावना लेकर वह खुशी से चला गया। तिब्बती लोग अब हमारे प्रति कुछ भी शत्रुभाव नहीं रखते थे बल्कि हमसे प्यार करते थे। परन्तु भाषा की कठिनाई थी। वे हिंदी नहीं जानते और न हम तिब्बती ही जानते थे, किन्तु हृदय की भाषा सभी समझ लेते हैं। शुरू में वे हमसे डरते थे—हमलोग भी उन पर विश्वास नहीं करते थे। अब हम दोनों आपस में हृदयों की भाषा समझने लगे हैं। उनका व्यवहार अब अच्छा लगता है, बच्चों की तरह सरल। हमारे प्रति उनमें स्वजन बोध हुआ है। हमारे सुख-दुःख के साथ उन्होंने अपने को एक कर लिया है।

आषाढ़ २२, शुक्रवार—हम लोग ९ बजे के बाद ही कुछ खा पीकर चलने लगे। १४ मील का रास्ता तय कर 'शेलाचाकुम' पहुंचना होगा। तीर्थापुरी नदी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक रास्ता चला गया है। क्रमशः उसे छोड़ कर दाहिनी ओर दिगंत-विस्तृत पठार के ऊपर से हम लोग चलने लगे। इसका अंतिम भाग कहां है, पता नहीं चलता। मानो असीम समुद्र में हम लोग गोते खा रहे हों। लहरदार छोटी-बड़ी चढ़ाई का मार्ग, सारा स्थान ही तृणहीन धूसर अनुर्वर और प्रस्तरमय है। जंगली घोड़ों के दल बीच-बीच

में दिखाई पड़ते हैं। एक सहयात्री ने मुंह बना कर कहा—"जानते हैं, ये घोड़े क्या खाते हैं? पत्थर और बालू।" यथार्थ में ही उतने बड़े पठार में गोल पत्थर, कंकड़, बालू के सिवाय और कुछ भी नहीं है, रंग-बिरंगे छोटे-छोटे गोल-गोल सुन्दर पत्थर। डाक्टर दे और स्वामी दुर्गात्मानंद जी उन पत्थरों का लोभ न संभाल सके। घोड़े से उतर कर वे उन सुन्दर पत्थरों को बटोर-बटोर कर घोड़े का बोझ बढ़ाने लगे।

१६००० फुट ऊपर नदी की रेती की तरह कंकड़-बालू और अगणित गोल-गोल पत्थर कहाँ से आये, यह सोचने की बात है। भूतत्त्वविदों के मत में हिमालय पर्वत समूचे तिब्बत के साथ किसी समय समुद्र-गर्भ में था। विशाल भूकंप या ज्वालामुखी के विस्फोट के फलस्वरूप समुद्रगर्भ के स्फीत होने से पर्वतश्रेणी और पठार की सृष्टि हुई है। ❀

धीरे-धीरे चल रहे थे। 'शेलाचाकुम' सामने दिखाई पड़ा। वह स्थान दूर से एक बड़ी गोचर-भूमि की तरह दिखाई पड़ रहा था। उस समय भी कुछ धूप थी। ऊपर से देखा मैदान के बीच में तीन तंबू और चारों ओर कई सौ घोड़े,

---

❀ 'रीजनल ज्याग्राफी' ग्रंथ से पता चलता है कि—

तिब्बत एक पर्वतीय मैदान (पठार) का विस्तृत क्षेत्र है, जिसकी औसत ऊँचाई समुद्री सतह से १२००० फुट है। यह पठार पर्वतीय ऊँची दीवालों से घिराहुआ है। पूरे प्रदेश का क्षेत्रफल सात से आठ लाख वर्गमील तथा आबादी ४० से ५० लाख है। यहाँ के सभी निवासी दक्षिण पूर्व प्रदेश में बसे हैं, जो अब चीनी अधिकार में है।

(पद-टिप्पणी, हिन्दी संस्करण—ग्रन्थकार)

खच्चर भेंड़ बकरियाँ चर रही हैं। देखते ही भय से दिल धड़कने लगा। सुना था कि डाकुओं के बड़े-बड़े दल बहुत से घोड़े लेकर इस प्रांत में घूमते रहते हैं। वे लोग अस्त्र-शस्त्रों से लैस रहते हैं। उनके हाथ से बच निकलना असंभव है। गाइड इधर-उधर दौड़ धूप करते हुए दूर पर एक तिब्बती महिला के पास गया और लौट आकर उसने बताया — वे लोग तिब्बत के बड़े सौदागर हैं। डरने की कोई बात नहीं हैं। मैदान के एक ओर खेमा लगाने का आयोजन हो रहा था, इतने में उन तंबुओं की ओर से दो आदमियों ने दौड़ते हुए आकर हमारे आदमियों को घोड़े छोड़ने से मना किया। उनकी सीमा के भीतर घुसने पर घोड़ों को वे रोक लेंगे, क्योंकि वे 'गारफान' अर्थात् तिब्बत के लाट साहब के आदमी हैं। मैदान के सारे जानवर उन्हीं के हैं – आदेश के स्वर से वे दोनों मना कर चले गये। 'गारफान' का नाम सुन कर गाइड भयभीत हुआ।

दुरबीन की सहायता से उन तंबुओं को हम लोग देखने लगे। बहुत से आदमी जल्दी से घूम फिर रहे हैं। बहुतों के कमर में तलवार लटक रही है। चाय पीते हुए हमने यह निश्चय किया की यदि संभव हो तो गारफान से भेंट करनी चाहिए ; गाइड ने हमारी राय जान कर भय से सिकुड़ते हुए कहा— "गारफान के निकट कैसे जाया जायगा ? उनके आदमी तलवारों के द्वारा हमें काट ही डालेंगे।" बहुत समझा-बुझा कर क्या-क्या कहना होगा, सब सिखा पढ़ा कर गाइड को दूत बनाकर 'गारफान' के तंबू में भेज दिया गया। इधर हम लोग आपस में सोचने लगे, कैसे अभिवादन किया जायेगा, गारफान कैसे आदमी हैं, किस प्रसंग में बातचीत की जायगी, इत्यादि। कीचखम्पा कैसी खबर लाता है उसके लिए सभी उत्सुक थे।

हमारे साथी बाबू लोग साफ पोशाक पहन कर जाने के लिए तैयार हो गये। कुछ देर के बाद गाइड ने गारफान के तंबू से निकल जल्दी-जल्दी आकर हंसते हुए खबर दी— गारफान बहुत धीरभाव से हमारा सारा परिचय लेकर भेंट करने में राजी हुए हैं। आधे घंटे के बाद जाना होगा। पता लगा कि गारफान अपनी मातृभाषा छोड़कर अन्य कोई भाषा नहीं जानते। गाइड ही दुभाषिये का काम करेगा। एक बर्तन में मेवा आदि मामूली उपहार लेकर हम लोग गाइड के साथ लाट साहब के दर्शन के लिए रवाना हुए। दोनों तंबुओं का फासला चौथाई मील का होगा। पास जाने पर दिखाई पड़ा, बहुत से आदमी हमारे आने की प्रतीक्षा में आग्रह के साथ अपने तंबुओं के चारों ओर खड़े हैं। उनकी अंग-भंगी से अच्छी तरह समझ में आ रहा था कि वे हमारे ही सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं।

पास-पास तीन तंबू थे। बीच के बड़े और सजाये हुए तंबू की ओर हम लोग बढ़े। तंबू के दरवाजे के सामने आते ही हल्के नीले कीमती मखमल की पोशाक पहने एक सुंदर पुरुष हंसते हुए आगे आकर सबसे हाथ मिलाते हुए हमें भीतर ले चले। जिन्होंने हाथ मिलाया है, वही स्वयम् गारफान हैं, इस विषय में कुछ भी संदेह न रहा। चेहरा और पोशाक की सुन्दरता तथा मधुर निरभिमान व्यवहार, सभी उनकी पदमर्यादा का परिचय दे रहे थे।

तंबू के ऊपर की ओर दो बड़े-बड़े रोशनदान थे। भीतर दो ओर मखमल से मढ़े हुए लम्बे कोच थे। विपरीत दिशा में बड़े-बड़े तकियों से सजा हुआ उच्च आसन था। उसी के सामने एक मेज थी, जिस पर मेवा आदि खाने की वस्तुएँ, कुछ पुस्तकें और लिखने का कुछ सामान था। दोनों ओर की कोचों में हमें

बैठने के लिए इशारा करके 'गारफान' स्वयम् अपने उच्चासन पर जा बैठे और हंसते हुए बहुत आग्रह के साथ हमें देखने लगे। जो मामूली उपहार हम लोग लाये थे, उसे उनके सामने रख दिया गया। उनसे भेंट होने का सुयोग देने के कारण मैंने उन्हें आन्तरिक धन्यवाद जताया। उन्होंने उत्तर में कहा—'आप लोगों से मिलकर मैं भी बहुत आनंदित हूं।" कुछ क्षणों के बाद 'गारफान' ने हमारी ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए तिब्बत में आने का उद्देश्य जानना चाहा। मैंने कहा—"तीर्थ भ्रमण करने के लिए ही हम लोग तिब्बत आये हैं। इससे पहले खोचरनाथ और तीर्थापुरी देख आये हैं। क्रमशः कैलाश दर्शन और परिक्रमा समाप्त कर मानस-सरोवर में स्नानादि करके तकलाकोट होकर भारत लौट जायंगे।" ऐसा प्रतीत हुआ उत्तर सुनकर वह खुश हुए, सहयात्रियों का परिचय देकर उनकी पद-मर्यादा मैंने उन्हें बता दी। सभी सहयात्री उच्च शिक्षित और भारत सरकार के उच्च पदस्थ कर्मचारी हैं, जानकर 'गारफान' कुछ आश्चर्य-चकित और साथ ही साथ बहुत आनंदित भी हुए। स्वामी दुर्गात्मान्द की बहुत लम्बी दाढ़ी मूंछ और पोशाक की विशिष्टता से 'गारफान' विशेष आकृष्ट हुए। हंसते हुए कारण पूछने पर मैंने बताया—"ये शीत से कुछ अधिक कातर हो जाते हैं। इस कारण खासकर मुख को तिब्बत की बर्फीली हवा और भयंकर ठण्डक के हाथ से बचाने के लिए इस तरह इन्होने दाढ़ी मूछ बढ़ा ली है।" सुनकर गारफान हंसने लगे।

बहुत ही शिष्टता के साथ 'गारफान' ने हमें चाय का निमंत्रण दिया। उन्हें हार्दिक धन्यवाद देकर मैंने कहा—"अभी-अभी हम लोग चाय पी कर आये हैं।" सुनकर उन्होंने स्मितमुख होकर हमसे कहा—"हमारे देश की

रीति है कि कोई चाय पीने का निमंत्रण दे, तो उसको इन्कार नहीं करना चाहिए। चाय पीने का इन्कार शत्रुता का परिचायक है।" सुनकर मैंने साग्रह सम्मति दी। उनके इशारे से चाँदी और संगमरमर के प्याले में हम लोगों के सामने गरम चाय परोसी गई। गारफान के सामने पहले से ही सोने के ढक्कनदार पात्र में चाय और चाँदी का प्याला रखा हुआ था। उन्होंने अपने हाथ से हमें प्रचुर मेवा परोस दिया।

जीवन में यही प्रथम बार तिब्बती चाय पीना है। तिब्बत में चाय बनाने की रीति एकदम अलग है। चीन देश की चाय-पत्ती बहुत ही बड़ी-बड़ी—बहुत देर तक गरम जल में सिझाकर उसमें चमरी गाय का प्रचुर मक्खन और थोड़ा सा नमक डालकर अच्छी तरह मिला लिया जाता है। वह चाय बरतन सहित हर समय थोड़ी आंच पर रखी रहती है। गरम चाय में थोड़ा सत्तू मिलाकर गरीब तिब्बती बहुत अधिक पीते हैं। चाय उनके लिए खाद्य और पेय दोनों ही कार्य करती है। चाय पीते हुए गारफान ने कहा—"हमलोग चाय कुछ अधिक पीते हैं। चाय का बरतन हर समय आँच पर रखा हुआ रहता है, बंधु-बान्धव या परिचित कोई आ जाय तो चाय पीने के लिए कहा जाता है। कोई-कोई रोज ५०-६० प्याले भी चाय के पीते हैं।" यह सब सुनकर हम दंग रह गये। परन्तु प्याले बहुत छोटे-छोटे हैं।

गारफान ने क्रमशः राजनीतिक आलोचना शुरू कर दी। हमलोगों ने पहले से निश्चय किया था कि बातचीत बहुत ही समझ-बूझ कर करनी होगी—विशेषतया राजनीतिक चर्चा गारफान के साथ एकदम नहीं करेंगे। वह स्वयं ही यूरोप की राजनीतिक परिस्थिति और भारत की आभ्यन्तारिक अवस्था की

बात पूछने लगे तो हम लोग पशोपेश (द्विविधा) में पड़ गये। हर एक प्रश्न का जहां तक संभव हुआ बचाकर ही उत्तर दिया। अन्त में कहा—"महीना भर से अधिक हुआ कि हम लोगों ने समाचार-पत्र का मुंह नहीं देखा। दुनियां में इस समय क्या हो रहा है; हमलोगों को कुछ भी नहीं मालूम है।"

दूसरा प्रसंग उठाने के लिए मेज पर एक इंगलिश प्राइमर देखकर गारफान यूरोप की कोई भाषा जानते हैं या नहीं जानने के लिए मैंने पूछा। उसके उत्तर में उन्होंने कहा—"अपनी मातृभाषा के सिवाय मैं अन्य कोई भाषा नहीं जानता। मेज पर जो अंग्रेजी किताब है, वह बड़े लड़के की है। उसे थोड़ी अंग्रेजी सिखाने की चेष्टा कर रहा हूं। अब 'गार्टक' जाऊँगा, वहां वह अँग्रेजी पढ़ेगा।" बात के प्रसंग में मैंने तिब्बत की शासन-शैली के सम्बन्ध में जानना चाहा। गारफान ने कहा—'तिब्बत देश पूर्व और पश्चिम दो हिस्सों में बटा है, हर एक हिस्से के लिए एक-एक गारफान और एक नायब गारफान नियुक्त हैं। पश्चिम तिब्बत में ३९ डिवीजन हैं। सारे पश्चिम तिब्बत का शासन भार तीन विचारपति और ३९ जंगपान (कमिश्नर) के ऊपर अर्पित है। गुरुतर विषय में गारफान की आज्ञा के अनुसार शासन का काम चलाया जाता है। गारफान की आज्ञा ही अंतिम मानी जाती है। प्राणदण्ड की आज्ञा देने का अधिकार भी गारफान को है। मालगुजारी वसूल करने और डाक वितरण करने के लिए जंगपानों के अधीन 'छाचूज' या तहसीलदार और 'टासाम' या डाक हरकारे नियुक्त हैं। कुछ सालों से डाक विभाग में विभिन्न मूल्यों के टिकट का भी प्रचलन हुआ है। शासन कार्य की सहायता के लिए प्रत्येक ग्राम में 'गोवा' या प्रधान और कुछ ग्रामों के लिए 'मागपान' या पटवारी हैं। गोवा

और मागपान स्थानीय लोगों के वंशानुक्रमिक पद हैं। सभी राज कर्मचारी राजधानी'लासा'से तीन सालों के लिए नियुक्त किये जाते हैं। किन्तु आवश्यकता होने पर राज कर्मचारी उससे अधिक समय भी कार्य में बहाल रखे जाते हैं। लासा से लद्दाख तक हजार मील से भी अधिक व्यापार का मार्ग है। उस रास्ते से बिकने के सामान और डाक के चिट्ठीपत्रादि लगभग पौने पाँच लाख वर्गमील स्थान में आते-जाते रहते हैं। तिब्बत की जनसंख्या ३० लाख से कुछ अधिक है। परन्तु बहुत दिनों से ठीक ढंग से जन-संख्या की गणना नहीं हुई है।

मालगुजारी का परिमाण और शासन सम्बन्धी अनेक विषय जानने की इच्छा थी परन्तु उससे राजनीतिक आलोचना सूचित हो सकती है, यह सोचकर ऐसे प्रश्न मैंने नहीं उठाये। बात-बात में उन्होंने कहा—राज्य के काम से मुझे एक बार कलकत्ते और बम्बई जाना पड़ा था। कलकत्ता बड़ा शहर है, बहुत अधिक आदमी, घोड़े गाड़ी, मोटर, मकान के ऊपर मकान इतने अधिक हैं कि कहीं क्षण भर चुपचाप खड़ा रहना संभव नहीं है। मैं तो एकदम हाँफ उठा था, हर समय डर, कब दब कर मर जाऊँ, कुछ ठीक नहीं। उससे बम्बई मुझे अच्छा लगा। परन्तु हमारे देश की तरह शान्तिपूर्ण सुंदर स्थान संसार में और कहीं नही है।"

गारफान के साथ हमारा वार्तालाप क्रमशः घनिष्ठ हो रहा था और वह भी बहुत आग्रह के साथ सुन रहे थे। परन्तु दुभाषिया हमारी बातें ठीक-ठीक गारफान को नहीं समझा सका। साधारण तिब्बती गारफान को राजा की तरह भय सहित श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। बहुतों के भाग्य में गारफान का दर्शन नहीं होता।

हमें दिखाने के लिए गारफान ने अपने दो पुत्रों को बुला भेजा। वे दोनों तंबू के दरवाजे के पास आकर लज्जा से दोनों हाथों के द्वारा आँख-मुँह ढक कर कुछ देर खड़े रहे। फिर दोनों साथ ही दौड़कर भाग गये। दोनों ही लड़के देखने में सुन्दर हैं। शरीर का रंग बहुत गोरा तथा चेहरा भी प्रतिभा-व्यंजक है। बड़े की उमर लगभग १३-१४ साल और छोटे की १०-११ साल है। बहुत ही बलिष्ठ गठन है। पश्चिम तिब्बत में हमने अभी तक जितने स्त्री-पुरुष देखे हैं, अधिकांश का रंग मैला है और मुंह ताम्रवर्ण सा। मानो सारा चेहरा जल गया है! तिब्बत में हवा इतनी ठंढी और तेज है कि देह का खुला अंश एकदम हिम से काला हो जाता है। चेहरे की सुंदरता कायम रखने के लिए तिब्बती स्त्रियाँ समूचे चेहरे पर लाल चंदन की तरह किसी चीज का लेप लगा रखती हैं। तिब्बत में वास करने पर भी गारफान और उनके दो लड़कों का रंग ऐसा सुंदर और कमनीय कैसे कायम है, यही मैं सोच रहा था।

बातचीत में बहुत समय बीत गया। गारफान ने स्वयम् कहा—"यहाँ चोर-डाकुओं का उपद्रव ज्यादा है। आप के तीर्थ-भ्रमण में कोई उपद्रव न हो, इसके लिए मैं एक विज्ञप्तिपत्र दूँगा, उससे सारे देशवासियों को जता दिया जायगा कि वे आवश्यकता पड़ने पर आप लोगों की मदद करें। गुंफा में लामा लोग आप लोगों के ऊपर रुपये पैसे के लिए अत्याचार न करें। हम सबके नाम उन्होंने लिख लिये और कल सुबह इस स्थान को छोड़ जाने के पहले अपना फरमान भेज देंगे, ऐसा उन्होंने कहा। उनकी दया और उदारता के लिए आन्तरिक धन्यवाद देकर हम लोग तंबू के बाहर आये। साथ-साथ उन्होंने भी तंबू के बाहर तक आकर

सबसे हाथ मिलाया और हमारा तिब्बत भ्रमण और तीर्थ यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो, इसके लिए हार्दिक शुभेच्छा व्यक्त करते हुए उन्होंने हँस कर बिदा दी। तिब्बत में आकर इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से गारफान के साथ भेंट होने का अवसर पाकर और उनके शिष्ट व्यवहार से हम सभी मुग्ध हुए। ❀

❀ किसी-किसी प्राचीन ग्रन्थ में ऐसा भी देखने को आता है कि पुराने समय में तिब्बत भी बृहत्तर भारत के अन्तर्गत था, जैसे —गान्धार, कम्बोज, यवद्वीप, सुमात्रा, ब्रम्ह देश तथा लंका आदि स्थान। (गान्धार-आधुनिक उत्तर पश्चिम सीमावर्ती प्रदेश, किसी के मत से सिन्धु और काबुल नदियों के दोनों ओर के देश हैं।) तिब्बत का प्राचीन नाम किम्पुरुष-खण्ड था। हिमालय का पौराणिक नाम था—किम्पुरुष पर्वत। तिब्बत हिमालय का ही एक अंश है।

वर्तमान समय में भारत के अनेक भूखण्ड स्वतंत्र राष्ट्रों में परिणत तथा भारत के बृहत् अंग से विच्छिन्न हो गये हैं—जैसे कि – तेज आँधी के थपेड़ों से पेड़ की डाल पत्तियाँ टूट कर अलग हो जाती हैं। प्रायः डेढ़ हजार वर्षों से भारत विकलांग होता जा रहा है और उसका सीमान्त प्रदेश संकुचित होने लगा है। कम्बोज, गान्धार, पामीर, सियाम, इन्दोचीन, सुमात्रा, यवद्वीप, तिब्बत, नेपाल, ब्रम्हदेश, श्रीलंका आदि देश एक एक-कर अलग हो गये!

वे सभी देश पूर्णतया भारत शासन के अन्तर्भुक्त देश थे, ऐसा नहीं। अनेक देश करद या मित्र-राज्य थे। प्राचीन समय के अखण्ड-भारत के राज-चक्रवर्तियों की राजनैतिक दूरदर्शिता तथा नीति प्रशंसनीय थी। भारत-भूखण्ड की सार्वभौमता तथा स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए उन्होंने सीमा प्रदेशों को अपने अधीन रखा था।

(पादटिप्पणी, हिन्दी संस्करण ग्रन्थकार)

लगभग १६५०० फुट ऊँचाई पर यही प्रथम रात्रि वास था। चारों ओर के पर्वत शिखरों पर बरफ का आवरण था। भीषण ठंढक के कारण किसी को नींद ही न आई।

आषाढ़ २३, शनिवार—निःशब्द अरुणोदय! शुभ प्रभात! बाल-सूर्य-किरणों से कैलाश-शिखर पर लालिमा छा गई। मानो इस संसार के अंधकार के दूसरे पार एक मंगल दीप-शिखा शून्य अनन्त गगन-मण्डल में महाशांति रूप से दीप्ति पा रही है। धीरे-धीरे उज्ज्वल किरणों से चारों ओर के पर्वत मानो हंसने लग गये। कैलाश ही हमारे विशेष आकर्षण की वस्तु है। सुनील अंबरपट पर रजत-शुभ्र शिखर शोभायमान है। रंग-बिरंगे छोटे-छोटे मेघ कैलाश की मानो परिक्रमा कर रहे हैं।

सुबह दिखाई पड़ा कि गारफान के तंबू से एक आदमी बहुत सा सामान हाथ में लिये हमारी ओर आ रहा है। कीचखंपा को साथ लेकर उस आदमी ने 'गारफान' के भेजे सामान और फरमान हमारे हाथ में दिये। गारफान ने एक बर्तन में चमरी गाय का दूध, बकरी के दूध का प्रचुर मक्खन, सूखा पनीर, मेवा आदि हमारे लिए भेजे हैं। गारफान को हार्दिक धन्यवाद जताकर उस आदमी को बिदा कर दिया गया।

अब गारफान की चिट्ठी देखने की बारी आई। तिब्बती भाषा में लिखी हुई है। पत्र हमारे लिए ग्रीक या हिब्रू भाषा की तरह दुर्बोध था। फरमान के नीचे एक राजकीय मोहर थी। वह तिब्बत सरकार की तरफ से प्रमाण है, यह अच्छी तरह से समझा गया। हाथ के बने मोटे कागज पर चमकीली लाल स्याही से गारफान के अपनी हाथ की लिखी चिट्ठी है। कुछ देर तक

हिला-डुलाकर भविष्य में काम आ सकता है, ऐसा जानकर उस कागज को सावधानी से रख लिया गया। भारत लौट कर तिब्बती भाषाभिज्ञ कलकत्ते के एक व्यक्ति की सहायता से उस फरमान का अनुवाद कराया गया था, जो इस प्रकार है—"इस फरमान के अधिकारी स्वामी अपूर्वानन्द और उनके साथी तीर्थ-दर्शन के उद्देश्य से तिब्बत में आये हैं। इसके द्वारा सभी तिब्बतियों को बताया जाता है कि सभी उन्हें आवश्यकतानुसार मदद दें। किसी गुम्फा में धन के लिए उन पर किसी तरह की ज्यादती न हो।"

भोर में ही बहुत से घोड़ों और खच्चरों पर लादकर गारफान के सामान भेजे जा रहे थे। उनके तंबुओं के सामने आठ सजे-सजाए बलिष्ठ घोड़े खड़े थे। लगभग ८ बजे समूचे चेहरे पर कपड़ा ओढ़ कर गारफान तम्बू से बाहर निकल आये। साथ-साथ दोनों लड़के भी। लड़कों के भी सिर से गले तक कपड़े से ढंका था। बाहर आते ही वे घोड़े पर सवार होकर पहरेदारों के बीच से घोड़ा दौड़ा कर तेजी से निकल गये। दुरबीन लगाकर हमने देखा—गारफान और उनके दोनों लड़के नीले रंग के पतले रेशमी कपड़ों से मुख-मंडल आवृत करके तम्बू के बाहर आये थे, क्यों वे मुंह ढंककर रवाना हुए और कैसे उनके चेहरे का रंग ऐसा उज्ज्वल रहा है, उसे समझने में देर न लगी। तिब्बत की बर्फीली तेज हवा के कारण इन कई दिनों के भीतर ही हम सबके चेहरे और शरीर के खुले अंश हिम से झुलसकर काले हो गये थे। ताराप्रसन्न बाबू समूचे मुखमंडल पर वेसलीन का मोटा प्रलेप लगाकर चलते थे। उन्होंने कहा—"क्यों, मैंने ठीक ही न किया था। अबतक तो आपलोग मेरी दिल्लगी उड़ाया करते थे।"

गारफान के चले जाने के साथ-साथ उनके तम्बू उखाड़े गये। खोज करने से पता लगा कि वे तम्बू गारफान के अपने नहीं थे! सरकारी उच्च पदस्थ लोग सफर में निकल कर जहां-जहां रहते हैं उन ग्रामों के प्रधान लोग ही उनके रहने और भोजन आदि की व्यवस्था करने को बाध्य हैं। ऐसा सुनने में आया कि तिब्बत में गारफान से लेकर निम्नपद के राजकर्मचारी तक कोई भी सरकार से वेतन नहीं पाते। हर एक राज कर्मचारी अपनी पद-मर्य्यादा के अनुसार प्रजा से नजराना या सलामी वसूल कर लेते हैं और व्यापार से भी कुछ धन प्राप्त करते हैं।

राज कर्मचारियों की चीजें खरीदने के लिए प्रजा को बाध्य किया जाता है। तिब्बत सरकार की कोई निर्दिष्ट सेना-वाहिनी या पुलिस नहीं है। आज-कल कुछ सेना और पुलिस-वाहिनी गठित करने की चेष्टा हो रही है। देश की शांति और रक्षा के लिए प्रत्येक परिवार से एक-एक बलिष्ठ व्यक्ति को रक्षक दल में योगदान करना पड़ता है। तिब्बती लोग बंदूक चलाने में बहुत निपुण हैं। उनका लक्ष्य बहुत तेज है। ❀

आज दस मील चलना है। कैलाश पर्वत-श्रेणी के अति निकट 'कारलेप' नामक स्थान में जाना होगा। निकलने की कोई जल्दी नहीं है। कल से

❀ इस ग्रंथ में तिब्बत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, उसमें अधिकांश सुनी हुई बातें हैं वह भी कई साल पहले की खबर है। इतने दिनों में संसार के दूसरे स्थानों की तरह तिब्बत में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। इस समय वहाँ चीन का अधिकार है। (हिन्दी संस्करण की पादटीका—ग्रन्थकार)

कैलाश परिक्रमा शुरू होगी। १० बजे तेज धूप में ही हम लोग रवाना हुए। कुछ आगे बढ़ने पर एक चौड़ी उपत्यका के भीतर पहुँचे। गोल-गोल छोटे-बड़े लाखों पत्थर और बालूमय स्थान ही देखने को मिलते थे। हम लोग हरियाली के नाम पर तो कंगाल हो ही गये थे। कहीं भी हरियाली का निशान नहीं मिलता था। केवल पत्थर, बालू, मटमैले पहाड़, मरुस्थल की तरह सूखा और अंत-रहित पठार है। सब कुछ ही बाधा उत्पन्न करते हैं, दुःख देते हैं, पीड़ा पहुंचाते हैं। परन्तु अब हम लोग पहले की तरह कातर नहीं होते। समझ गये कि इन्हें सहना ही होगा। क्रमशः यातना और दुःख-कष्ट देह के साथ मेल खा गये हैं। जीवन में सभी दुःख इसी प्रकार सहने की शक्ति को बढ़ावा देते हैं, अथवा बोध-शक्ति को नष्ट कर देते हैं। जो स्थिति दो दिन पहले सहन शक्ति के बाहर थी, आज उसमें हम जरा भी विचलित नहीं होते और न उसकी शिकायत ही करते हैं। मनुष्य को कड़ा बना डालने और दुर्जय को जय करने का गुह्य मंत्र है—सहन करना फिर भी सहन करने की भी एक सीमारेखा अवश्य है।

५-६ मील बाद हमलोग 'थोक-चू' नदी के किनारे आ पहुंचे। खूब चौड़े और गोल पत्थरों से पूर्ण नदी-वक्ष में जल थोड़ा ही है। पथ की विचित्रता विशेष नहीं है।

क्रमशः सभी कुछ एक ही ढंग के देखते देखते जी ऊब गया है। तीन बजे तक 'कार्लेप' आ गये। उस वक्त ताप ८६ अंश था। लगभग १७००० फुट ऊपर चिरहिमानी के पास इतनी गरमी। जिस उपत्यका में खेमा डाला गया, उसके तीन ओर प्रस्तरमय समान ऊँची पर्वतमाला आधे वृत्त के रूप में घिरी हुई है। कैसा सुन्दर और कितना नया, मानो किसी स्वर्गीय कलाकार ने अपना

शिल्पकौशल दिखाने के लिए समान रूप में उन पहाड़ों को सजा रखा है। थोड़ी दूर पर महापवित्र कैलाश-शिखर 'ध्यान-मग्न शांति' के रूप से विराजमान है।

उज्ज्वल सूर्य किरण! नवनील नभस्तल में सफेद पर की तरह दो एक मेघ के टुकड़े वायु प्रवाह से बहते हुए चले जा रहे हैं। बिछौने लगा कर हम लोग बाहर आये। तब तक दूर उत्तर-पश्चिम दिशा से एक धुमैला घना बादल फैलता हुआ तेजी से हमारी ओर आने लगा। देखकर कीचखम्पा ने चिन्तित होकर कहा—वह जो मेघ आप लोग देख रहे हैं, वह बरफ से भरा है। जल्द ही जोर के ओले गिरेंगे या बरफ भी गिरेगी। लक्षण अच्छे नहीं हैं।" तुरन्त उसने घोड़ों को पास लाने की आज्ञा दे दी। हम लोगों ने गाइड की उस बात को बहुत सहज भाव से लिया था। तिब्बत में बरफ का गिरना देखने की आशा से कुछ लोग खुश हुए। परन्तु थोड़े ही समय में उन्मत्त दैत्य के समान चारों दिशाओं को मथित करता हुआ भारी तूफान आया। आकाश बादलों से छा गया, हिमकणों से भरी तेज आँधी देखते - देखते कड़ात् शब्द से बिजली चमकने लगी। प्रबल ओला-वृष्टि आरंभ हो गई। केवल ओले, एक बूँद जल भी नहीं, चारों ओर एक महान आलोड़न उत्पन्न हो गया। हम लोग तो तंबू के भीतर घुस गये। घोड़े वाले कम्बल हाथ में लिये घोड़ों को ढँकने के लिए दौड़ पड़े। गाईड २-३ आदमियों को लेकर लकड़ी के फावड़े से तंबू के ऊपर हिमशिला की ढेर को हटाने लगा। तो भी तंबू बोझ से टूट जाना चाहता था। आँधी और ओलों का बरसना आधे घंटे तक चला, एक छोटा-मोटा प्रलय था। ओलों का गिरना रुक जाने पर दिखाई पड़ा कि बाहर लगभग १॥ फुट ओले जम गये

हैं। चारों ओर उज्ज्वल श्वेत रंग का मेला-सा लग गया। आँखों में चकाचौंध सी होने लगी। कैसी विराट निस्तब्धता और विपुल रूपगौरव था। दृष्टि के अन्तिम छोर तक सारा प्रदेश एक चाँदी के पत्तर से मढ़ा हुआ लगता था।

तंबू के भीतर ताप की मात्रा ३२ अंश है, अर्थात् एक घंटे के अन्दर ५४ अंश घट गई है। इस प्रकार ओलों का बरसना तिब्बत में ही संभव है। क्रमश हिम-जर्जर रात्रि आ गयी। तंबू के भीतर ताप २४ अंश। जल मिलने का कोई उपाय नहीं, सब बरफ बन गया है रात्रि बीतना नहीं चाहती थी। अन्त में तंबू के भीतर स्टोव जलाकर उसी को सब लोग चारों ओर घेर कर बैठ गये। दांत किट-किटाने लगे। कुशल थी कि हम लोग तंबू के भीतर बैठे थे। यदि पथ चलते हुए आश्रयहीन अवस्था में इस प्रकार ओलावृष्टि होती तो सभी की मृत्यु अवश्यंभावी थी। गाइड के साथ राय करके तय किया गया कि दूसरे दिन से भोर में ही रवाना होकर अपराह्ल से पहले ही गन्तव्य स्थान में पहुंचना होगा, क्योंकि आँधी-पानी, शिला-वृष्टि ह्विमपात प्रायः तीसरे पहर ही होते हैं।

—:०:—

कैलाश

"....सहस्त्र दिनेर माझे आजिकार एइ दिनखानि
होयेछे स्वतन्त्र चिरन्तन ।
तुच्छतार बैड़ा हते मुक्ति तारे के दियेछे आनि '
प्रत्यहेर छिंड़ेछे बन्धन ।
प्राण-देवतार हाते जयटीका परेछे शे भाले,
सूर्य-तारकार शाथे स्थान शे पेयेछे शमकाले,
सृष्टिर प्रथम वाणी जे-प्रत्याशा आकाशे जागाले
ताइ एलो कोरिया बहन ।।"

  

सहस्रों दिनों के भीतर आज का यह दिन चिरन्तन स्वतन्त्र हो गया है। तुच्छता के घेरे से उसे किसने मुक्ति ला दी है, प्रत्यह का बन्धन तोड़ दिया है ? प्राण देवता के हाथ से उसने अपने ललाट पर जय-तिलक लगा लिया है। वह एक ही समय सूर्य-तारकाओं के साथ स्थान पा गया है। सृष्टि की प्रथम वाणी ने जिस प्रत्याशा को आकाश में जगाया उसी को वहन करते हुए ले आया।

आषाढ़ २४, रविवार। सुबह ६॥ बजे दुर्जय शीत से काँपते हुए हम लोग बरफ के ऊपर से चलने लगे। कार्लेप नदी का जल जम गया है। चारों ओर बरफ ही बरफ है। थोड़ी दूर आने पर हमारा साथी एक तिब्बती घोड़े वाला

पेट के असह्य दर्द से बरफ पर गिरकर छटपटाने लगा। एक सहयात्री के घोड़े की पीठ पर उसे सुलाकर धीरे-धीरे सब लोग चलने लगे। परन्तु घोड़े की पीठ पर ही वह अचेत हो गया। बड़ी विपत्ति में पड़ गये। डा० दे आगे निकल गये थे। गाईड उन्हें लौटा लाने के लिये दौड़ पड़ा। रोगी को लेकर हम लोग बठे रह गये। डा० दे आकर नाड़ी देखते ही हताश हो गये। क्रमशः दो इन्जेकशन देने पर रोगी को होश आया। थोड़ी देर बाद उसे घोड़े की पीठ पर बिठा कर दो ओर से दो आदमी उसे पकड़ कर अग्रसर होने लगे।

लगभग तीन मील आने पर 'ला-चू' नदी पड़ी। दक्षिण तीर पर 'नियानडी' गुंफा दिखाई पड़ी। पर्वत के बहुत ऊपर तना खोदकर निरापद स्थान पर वह मठ बनाया गया है। रोगी को छोड़ कर गुंफा देखने के लिए जाने की इच्छा नहीं हुई। दूर से देखा, गुंफा के बाहर ३-४ लामा-वेशधारी साधु टहल रहे हैं। ला-चू का पुल पार कर बायें तीर से हम लोग अग्रसर होने लगे। नियानडी से ही कैलाश परिक्रमा ठीक-ठीक आरम्भ होती है। पास ही कैलाशश्रेणी इतनी ऊँची और खड़ी है कि ऊपर देखने से डर लगता है। कार्लेप नदी पार करने पर फिर कैलाश दिखाई नहीं पड़ता।

ला-चू के तीर पर स्थान-स्थान में बहुत भारी-भारी जमे हुए पत्थर की बड़ी-बड़ी सिल्लियां (Conglomerated rock) चट्टान सी पड़ी हैं। उन पत्थरों को देख कर ऐसा लगता है मानो किसी रासायनिक उपाय से छोटे-छोटे गोल पत्थर के टुकड़ों को जमा कर विशाल पत्थरों में परिणत किया गया है। कैलाश गिरि-श्रेणी के पास से देखते हुए हम लोग चल रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि तमाम गिरि-श्रेणी एक जमा हुआ पत्थर है। इससे पहले तीर्थापुरी और अन्यान्य स्थानों में जाते

समय रास्ते में गोल-गोल पत्थरों के अगणित टुकड़ों से भरे बालूमय स्थान के ऊपर से मीलों चलना पड़ा था। जाते हुए ऐसा लगता था मानो नदी का कछार है। हमलोग अब तक १७००० फुट से भी अधिक ऊपर उठ आये हैं। उतने ऊंचे पठार पर इतने अधिक गोल पत्थर और मोटे दाने की बालू तथा जमे हुए भारी-भारी पत्थर कैसे और कहा से आये ? यह गवेषणा का विषय है। पश्चिम तिब्बत के विभिन्न स्थानों में बहुत दिनों तक घूमते रहने से हमें यह निश्चित धारणा हो गई कि लाखों वर्ष पूर्व सारा तिब्बत ही समुद्र-गर्भ में था। किसी समय ज्वालामुखी के विराट विस्फोट के फलस्वरूप समुद्र-गर्भ स्फीत होकर पर्वतमाला सहित तिब्बत के पठार की सृष्टि हुई होगी। कैलाश गिरि-श्रेणी देख कर ऐसी धारणा और भी दृढ़ हो गई।

ला-चू के किनारे-किनारे कैलाश की परिक्रमा करते हुए हम लोग धीरे-धीरे चल रहे थे। रास्ते में बहुत से तिब्बती यात्रियों के साथ भेंट हो गई। कोई-कोई दण्ड-परिक्रमा करते हुए चल रहे थे, ऐसे दुर्गम मार्ग में खुली देह में ऊबड़ खाबड़ पथरीली पथ-रेखा के ऊपर से लेट कर दंड भरते हुए चलना कितना कष्ट-कर है, इसे कोई अनुभवी ही समझ सकता है। उनकी तितिक्षा देखकर आनन्द और विस्मय से शरीर रोमांचित होने लगा। उन्हें देखकर अपने कष्टों की बात भूल जानी पड़ती है। इन लोगों की भक्ति की गंभीरता और एकान्त हार्दिकता बहुत ही मर्मस्पर्शी है। पत्थर के टुकड़ों से भरे पथ पर दंडवत औंधे लेट कर वे पड़ जाते थे और फिर से खड़े होकर भक्ति भाव से हाथ जोड़ कर कैलाश पति को वे हृदय का श्रद्धा-अर्घ्य निवेदित कर रहे थे। साथ-साथ मुख में 'ॐ मणिपद्मे हूं' मंत्र की आवृत्ति चल रही थी।

गाइड के पूछने पर पता लगा कि वे लासा के पास के रहने वाले हैं। कैलाशपति के दर्शन और दंडपरिक्रमा के द्वारा उन्हें प्रसन्न करके पूर्व जन्मार्जित पापों का क्षय करने के लिए वे इतनी दूर आये हैं। इस प्रकार दंड-परिक्रमा करने में एक मास का समय लगेगा। खूब भोर में उठकर विना कुछ खाये पिये वे परिक्रमा आरंभ करते हैं और दोपहर तक इस भाव से दंड भरते हुए परिक्रमा के मार्ग में अग्रसर होते चलते हैं।

इसके अनन्तर पथ के पास ही किसी स्थान में भोजन और विश्राम करते हैं। साथ में अन्य लोग भी हैं। प्रायः सभी ग्राम की ओर से देवता की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए और गाँव वासियों और पालतू पशुओं को विपत्ति से मुक्त करने के लिए एक आदमी को 'व्रती' बना लेते हैं और इस कठोर व्रत को समाप्त करके स्नान, दान, पूजा करते हैं। उसके बाद घर लौट जाते हैं। भारत से आये हुए यात्रियों के ४-५ दलों से भेंट हुई। गर्ब्याङ्ग में जिन्हें हम छोड़ आये थे, उनमें तीन दल अब आ पहुंचे थे। यात्रियों का एक दल विपत्ति में पड़कर और बीमार होकर लौट जाने को बाध्य हुआ था।

दिन के दो बजे तक 'डीरीफू' में हम लोग आ पहुंचे। डीरीफू गुंफा के ठीक विपरीत दिशा में ला-चू नदी के तट पर हमारा तंबू लगा दिया गया। सभी अधमरे और जराजीर्ण हो चुके थे। किसी तरह कम्बल बिछाकर पड़ रहे, शरीर मानो चिर-विश्राम चाहता था। सहन शक्ति की अंतिम सीमा तक आ पहुँचे थे, परन्तु अभी भी बहुत कुछ बाकी था।

इस समय बहुत से लामा-वेशधारी भिक्षुक और कैलाश-धूप तथा विभूति वेचनेवाले तंबुओं के चारों ओर जमा हो गये। कैलाश धूप वहां की एक

घास है, जिसे जलाने से सुगंधि निकलती है। यहां के एक प्रकार सफेद खड़िया-जैसे नरम पत्थर को कैलाश-विभूति कहते हैं। भिक्षुओं को सत्तू, गुड़, सिगरेट देकर सन्तुष्ट कर दिया गया। थोड़ा बहुत खा-पीकर ४ बजे तक हम लोग लेट गये।

लगभग तीस मील के परिक्रमा-पथ में डीरीफू ही कैलाश-शिखर के सबसे अधिक निकट है। सीधी रेखा की दूरी शायद तीन मील से अधिक नहीं है। कैलाश शिखर के इतने समीप आने पर हृदय-मन-प्राण एक अपार्थिव आनन्द से भर गये। इतने दिनों की दुर्गम-पथ-यात्रा आज सार्थक हो गई। कैलाश की शोभा भी इस स्थान से अनुपम है। पवित्र शिखर एक विशाल मंदिर की गुम्बद की तरह सूर्यकांत मणि का मानो प्रतिबिम्ब पाकर सुवर्णमय प्रतीत हो रहा था।

कैलाश नाम बहुत संभव है, कैलाश शब्द से उत्पन्न हुआ है। हिमालय के पहाड़ी-निवासी केलाश ही कहते हैं। स्फटिक की तरह स्वच्छ और शुभ्र है, संभवतः इसी कारण कैलाश कहा जाता है। मुझे ऐसा लगता था कि कैलाश पर्वत के और भी समीप किस प्रकार जाया जा सकता है। भोजन के बाद सभी लोग तंबू के भीतर विश्राम-सुख का अनुभव कर रहे थे, इसी समय मैं धीरे-धीरे तंबू के बाहर निकल आया और कैलाश शिखर की ओर एकटक पुलकित हृदय से खड़े-खड़े देखता रह गया। एक अज्ञात आनन्द से शरीर रोमांचित होने लगा। हृदय में कैलाश के निकट जाने के लिए एक तीव्र आकर्षण का अनुभव हुआ। मैं अपने को सम्हाल न सका। गाइड को इशारा करके मैं प्यासे नयनों से अग्रसर होता चला। पहले कुछ खड़ी चढ़ाई पड़ी। लगभग आधी मील के बाद एक गिरि-शिखर पर चढ़ गया। अहा! हा! कैसा अनुपम दृश्य है! पाद-देश से शिखर तक समूचा कैलाश स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा। सामने कोई

बाधा नहीं है। मैं इतने समीप ! देख-देख कर पिपासा बढ़ती गई। इच्छा हो रही थी—छाती में खींच लूं, चरणतल में लोट जाऊं। उस गिरि-शिखर से उतर कर मैं क्रमशः आगे बढ़ता गया। बहुत ही प्रस्तरमय और विपत्ति-पूर्ण स्थान है। गिर कर फिर उठा और आगे चलता गया। उत्तेजना और आवेग से सारे शरीर से विन्दु-विन्दु पसीना चूने लगा। क्रमशः मैं एक हिम-नदी के किनारे उतर आया। चारों ओर बरफ के ढेर और बीच में बरफाच्छन्न नदीगर्भ ! नदी के ऊपरी तल का बरफ स्थान-स्थान पर फट गया है और उन दरारों में से फौव्वारे के रूप में जल शब्द करता हुआ उछला करता था। बरफ के ऊपर से नदी के किनारे-किनारे मैं आगे बढ़ने लगा। उस नदी को किसी तरह पार करना ही था। परन्तु पार होने के अनुकूल स्थान कहीं भी नहीं मिल रहा था। बरफ के नीचे से कल-कल नाद करता हुआ जल बहता जा रहा था। यह मुझे सुनाई पड़ने लगा। मुझे ऐसा लगा कि जल के ऊपर के बर्फ की तह बहुत मोटी नहीं है। किन्तु बरफ के ऊपर से पैदल पार होने से तो बरफ टूट कर नदी गर्भ में डूब जाने की आशंका है। अनुकूल स्थान खोजते हुए मैं आगे चलने लगा। एक स्थान पर लाठी ठोंककर और पत्थर फेंककर परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि यहां की बरफ की तह बहुत मोटी है। ऊपर से चलकर पार होना संभव है। जी हाथ में लेकर मैं उस बरफ पर से दौड़ कर नदी पार कर गया। साथ साथ गाइड भी था।

पथ का कोई चिह्न नहीं है। पथ की खोज का प्रयोजन भी नहीं है। कैलाश के पाद-मूल पर लक्ष्य रख कर सामने की ओर अग्रसर होने लगा। इस समय एक गिरि-खात के भीतर से किसी तरह बकइयां भरते हुए पत्थर

पकड़-पकड़ कर ऊपर चढ़ने लगा। इस स्थान की बरफ अभी गल गयी है। खुले पत्थरों के स्तूप हैं। भीषण विपत्ति-पूर्ण स्थान है। प्रतिक्षण गिरकर मृत्यु होने की आशंका थी। यदि एक पत्थर भी खिसक जाय तो उसी के साथ इहलीला समाप्त थी। श्री भगवान् के चरणों में आत्म-निवेदन करने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं था। कीचखंपा पैर फिसल जाने से लुढ़कते हुए १०-१२ फुट नीचे गिर पड़ा। दैव-कृपा से विशेष चोट न लगी। हांफते हुए उठ आया। सामने और आस-पास सर्वत्र बरफ है। ठीक-ठीक यही बरफ का राज्य है। बरफ पर बहुत ही सावधानी के साथ मैं ऊपर चढ़ने लगा तो भी फिसलकर गिर पड़ा। कमर तक सुन्न हो गई। मानो लकवा मार गया है। अब तो पैर नहीं चलते, अब उपाय भी क्या था? क्या लौट जाऊँ? नहीं, कहां लौट जाऊंगा? क्रमशः समस्त अंग सुन्न हो गये। कहीं तो घुटने तक बरफ में पैर धँस जाने लगे। बरफाच्छन्न एक बहुत ही संकीर्ण शैल-शिखर के ऊपर से बैठे-बैठे आगे चल रहा था। खड़े होकर चलना असंभव था। क्योंकि पथ अति संकीर्ण है। किसी तरह दाहिनी या बायीं ओर लुढ़क गया तो बरफ में चिरसमाधि थी। अब चारों ओर ही सफेद बरफ, इतनी उज्ज्वल कि आंखें झुलस जाने लगीं। अंधे की तरह टटोलते हुए उस विराट पुरुष के चरणस्पर्श के लिए चल रहा था। अन्तर में विपुल उत्साह और अनंत आशायें, किन्तु शक्ति क्रमशः निःशेष हो रही थी। तथापि, अपने को खींचते हुए मैं आगे बढ़ने लगा।

शैल-शिखर के अन्तिम भाग तक पहुँचने पर तो रोमांच हो उठा! अहा हां, यह क्या देख रहा हूँ! यह तो सौन्दर्य नहीं, बल्कि लोकोत्तर ज्योत्सना है! वह दृश्य कैलाश-पति की स्मृति के साथ मानस-पट पर चिरकाल के लिए

अंकित हो गया ! सामने लग-भग एक मील तक बरफाच्छादित प्राय: समतल स्थान है। दोनों ओर बरफ के पहाड़ से सुरक्षित विराट नाट्य मंदिर की तरह स्थान है। और अंतिम भाग में तुषारमय पट-भूमि पर रजत-शुभ्र कैलश-शिखर विराजमान है। सदाशिव के पाद-मूल से सर्वोच्च शिखर का समूचा अंग ही इस स्थान से दृष्टिगत होता है। कैलास-पति के विभूति-भूषित अंग में अस्त-गामी सूर्य की रक्तिम छटा के संमिश्रण से एक अनुपम रूप-माधुरी की सृष्टि हुई थी। मैं स्तब्ध हो गया। मुग्ध नेत्रों से पुलकित और तृषित की तरह ताकता ही रह गया। नीरव शान्त परिवेश, ध्यान-गंभीर भाव, आवेग, उत्तेजना, श्रद्धा और आनन्दोल्लास से हृत्पिण्ड की क्रिया मानो बन्द हो रही थी ! स्थाणु की तरह खड़े रहकर अतृप्त क्षुधा लेकर मैं बुभूक्षु की तरह देखता रह गया। इस देखने की मानो कभी समाप्ति ही नहीं होगी ! युग-युगान्तर अनंतकाल तक इसी तरह देखता ही रह जाऊं यही कामना हो रही थी और कोई भी प्रार्थना की वस्तु नहीं है, अन्य कोई प्राप्तव्य भी नहीं।

अभी भी अनुभव होता है कि वह स्थान सांसारिक कोलाहलों और सारे द्वन्द्वों से परे है।

और भी निकट पहुंचने के लिए दुर्दमनीय आकर्षण से बरफ के ऊपर से मैं अग्रसर होने लगा। शरीर में नूतन बल का संचार हुआ है और हृदय में विपुल आनन्द। बरफ के भीतर पैर घुटनों तक धंसते जा रहे थे, परन्तु कोई क्लेश नहीं था। ठंड नहीं मालूम हो रही थी, कोई श्वासकष्ट भी नहीं था। शरीर हल्का हो गया है, मानो शून्य में तैरता जा रहा हूं। एक बरफ के खात के भीतर कीचखंपा का कमर तक धंस गया। किसी तरह उठ नहीं सकता था, जितना ही वह हाथ पटक रहा था उतना ही

धंसता जाने लगा। अब उपाय क्या हो! बहुत सावधानी से पास जाकर मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे खींच निकाला। एकाएक चारों ओर के पर्वतों को कंपा कर एक विराट कर्कश शब्द हुआ और साथ ही साथ लगभग दो मिनट के बाद वज्रध्वनि के समान भीषण विस्फोट के शब्द से कान के पर्दे मानो फट गये! ऐसा लगा मानो विशाल पर्वत शिखर खिसक पड़ा है। हमारे पास ही ऊपर से कोई भारी चीज जोर से नीचे गिरी। हम दोनों ही भय से सिकुड़ कर स्थाणु की तरह खड़े रह गये। पर्वत के तनों में से तीव्र प्रति-ध्वनि होने लगी, मानो भूत-प्रेतों का विकट हास्य है!

गाइड ने धीरे-धीरे कहा—"स्वामीजी, अब आगे न बढ़ो, लौट चलो। कैलाश दर्शन तो अच्छी तरह हो ही गया है, अब आगे न जाओ। शिवजी के गण भूत प्रेत बरफ के भारी-भारी ढोंके फेंक रहे हैं। अब आगे जाने नहीं देंगे। मर्त्यलोक के किसी प्राणी को इससे आगे नहीं जाने दिया जाता। उनका निषेध न मानकर आगे जाने से दोनों की ही मृत्यु निश्चित है।"

बहुत ही शांत भाव से मैंने उससे कहा "तुम लौट जाओ। कैलाश का पाद-मूल स्पर्श किये विना मैं नहीं लौटूंगा, मेरा आमरण प्रण है! लौट जाने का उपाय नहीं है।" सुनकर कीचखम्पा चुप रह गया। मैंने फिर से कहा—"वह जो भीषण वज्र-निर्घोष की तरह शब्द सुना, वह हिमवाह के पतन का शब्द है। कैलास-शिखर से उसी प्रकार हिमवाह प्रायः खिसक पड़ता है। हमारा अहोभाग्य है कि हमारे ऊपर न गिरकर कुछ दूर गिरा है। शिव जी ने जब हमें एक बार बचा लिया है तब भविष्य में वही हमारी रक्षा करेंगे—यह मेरा दृढ़ विश्वास है। उन्हीं की शरण लो। बचाने के मालिक वही हैं और

यदि वह न बचावें तो इस महापवित्र स्थान में श्री भगवान् का नाम लेते हुए मरना तो परम भाग्य की बात है। तुम लौट जाओ, तुम्हारे परिवार के लोग हैं।" कीचखंपा चुप रहा। फिर लंबी सांस छोड़कर बोला —"मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। चलो! आगे बढ़ो, जो होना है वह होगा! मरना होगा तो एक ही साथ दोनों मरेंगे।"

दोनों पास-पास रहकर चुपचाप धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे। बात करने में भी डर लग रहा था, शायद शब्द के स्पन्दन से हिमखण्ड खिसक पड़े। अब जिस स्थान के भीतर से हम लोग अग्रसर हो रहे थे उसका विस्तार ५०० फुट से अधिक नहीं है। दोनों ओर ही चिरतुषारावृत अत्युच्च पर्वत कैलाश के प्रवेश द्वार को घेर कर खड़े हैं। आंख झुलसानेवाला बरफ, सभी जगह एक महान भीति-जनक निस्तब्धता। जितना ही कैलाश-शृंग के पास जाने लगे, उतना ही हमारी गतिवेग घटने लगा। कीचखंपा क्लान्ति के कारण आगे नहीं चल सका।

किन्तु मेरा अन्तर शिव-महिमा से पूर्ण था। जिस स्थान की ओर हम लोग अग्रसर हो रहे थे, उसका मर्म-स्थल और केन्द्र में ध्यानमग्न, शान्त गुणातीत, मनोबुद्धि के अगोचर वह देवाधिदेव ही विराजमान थे। उनकी दिव्य अवस्थिति के आनंद से हृदय, मन, प्राण ओतप्रोत हैं। एक अनिर्वचनीय आकर्षण से हमलोग अग्रसर होते जा रहे थे।

कैलाश-पाद-मूल से अभी भी हम लोग ४-५ सौ गज दूर थे, इसी समय एक गंभीर ॐकार-ध्वनि सुनाई पड़ी। हम आगे चलने लगे। क्रमशः वह ओंकर-ध्वनि और भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी। कैसी गंभीर नाद-ध्वनि! प्रलय

के महामौन के भीतर जो शाश्वत ध्वनि प्रच्छन्न रूप से थी, मानो वही उमड़ती हुई उच्छ्वलित हो उठ रही थी। क्रमशः और भी प्रबल तरंग के रूप में आवर्तमान उस ध्वनि से दसों दिशायें परिव्याप्त हो गयीं। उस नाद-ध्वनि के भीतर हमलोग डूब गये। भीतर बाहर उस अनाहत शब्द का स्पन्दन अनुभूत होने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह व्योम-पथ से मधुर ओंकर-नाद करते हुए चला आ रहा है। एक अव्यक्त आनन्द से मैं अपने को भूल गया—सुख-दुःख नहीं हैं—भूत-भविष्य भी नहीं, मानो मेरी समस्त सत्ता उस 'अ-उ-म' ध्वनि के भीतर डूब गयी।

उस स्थान की ऊंचाई लगभग बीस हजार फुट है किंतु श्वास-कष्ट बिलकुल ही नहीं मालूम हो रहा था। ऊंचाई और परिपार्श्विक अवस्था की तुलना में शीत भी कम मालूम पड़ती थी। मैं सहसा निकल पड़ा था। शरीर पर जो आवरण वस्त्र थे। उसी को लेकर चल पड़ा था। इधर आने की कोई आयोजना नहीं थी। फिर भी उससे शीत-वस्त्रों का अभाव नहीं मालूम हो रहा था। हृदय में अनिर्वचनीय आनंद-हिल्लोल प्रवाहित होने लगा था। अभी इतने दिनों के बाद भी वह आनन्द-स्मृति हृदय में दिव्य पुलक उत्पन्न कर देती है और तन-मन-प्राण को रोमांचित कर डालती है।

कैलाश-पाद-मूल और सौ फुट ही बाकी था। इसी स्थान पर बरफ के ऊपर देव-देव महादेव के चरणों में मैंने साष्टांग प्रणाम किया। मैं वहां लोटने पोटने लगा। इससे भी तृप्ति नहीं हुई तो मैं मुंह रगड़ने लगा। उस स्थान का बार-बार चुंबन कर मैं अंत में खड़ा हुआ। कानों में मधुर ॐकार-ध्वनि वायु प्रवाह से आ लग रही थी, जिससे हृदय में आनन्द उमड़ने लगा।

खड़ा होकर मैं कैलाश का पाद-मूल स्पर्श करने के लिए अग्रसर होने लगा। किन्तु ठीक पाद-मूल में पहुंचने पर मैं एकदम हताश हो गया। वह स्थान इस ढंग से बरफाच्छादित है कि पर्वत-पादमूल का स्पर्श करना असंभव प्रतीत हुआ। अपनी असफलता से हृदय रो पड़ा। इतने दुःख-कष्टों से प्राणों की ममता तुच्छ समझ कर इतनी दूर आने के बाद क्या अपना मनोरथ अपूर्ण लेकर ही लौट जाना होगा ? आवेग से अपने आप ही अनजान में आसुओं से गंडस्थल प्रवाहित हो गये। किन्तु निरुपाय था। एकाएक इस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि बरफ हटाकर पाद-मूल का स्पर्श करना संभव हो सकता है। लाठियों की मदद से बरफ तोड़कर हम दोनों थोड़ा स्थान साफ करने लगे। बरफ हटाते हुए करीब १॥ हाथ नीचे पत्थर का पता मिला। आनन्द से मानो ज्ञान ही लुप्त हो गया। कैलाशपति की जय-ध्वनि करने लगा। आनन्द की अधिकता से संयम का बंधन शिथिल हो पड़ा। मैं आंसुओं से उस स्थान को सींचने लगा। उस पवित्र प्रस्तर का स्पर्श कर मैं बहुत देर तक वहीं पड़ा रहा। उस विराट् के चरणों में मांगने को कुछ नहीं था। केवल उन्हीं को चित्त चाह रहा था। वह तो अन्तर बाहर परिपूर्ण होकर विराजमान हैं। महापवित्र कैलाश का चरण-चुम्बन कर सकने से मैं कृत-कृतार्थ हो गया। कीचखंपा ने बहुत प्रयत्न के द्वारा पहाड़ी लाठी की मदद से कैलाश के पादमूल के पत्थर के कुछ टुकड़े बटोर लिये।

सूर्य तबतक अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर चले थे। अन्तिम स्वर्ण-रेखा की आभा ने कैलाश-शिखर को शोभामय कर दिया। संध्या और रात्रि के संधि-क्षण में उस पुण्य मुहूर्त के समय महादेव के चरणों में हृदय का भक्ति-

अर्घ्य निवेदित करते हुए हम दोनों उसी ओर देखते हुए पीछे की ओर लौटने लगे। उस स्थान का ऐसा ही अलौकिक आकर्षण था कि उसे छोड़कर आने की बिलकुल इच्छा नहीं हो रही थी। बार-बार कैलाश की ओर मैं देखता और प्रणाम करता था। कुछ दूर आने के बाद हृदय भीतर के उच्छ्वास से रो पड़ा। जीवन में फिर कभी इस पवित्र स्थान में आना संभव न होगा। विराट् पुरुष अपनी महिमा का विस्तार कर अपने धाम में ही विराजमान रहे और रहेंगे। मैं ही केवल दूर हटता जाता था। साथ ले चल रहा था केवल स्मृति, चिरन्तन पुण्यमधुर स्मृति, विपुल आनन्द और पवित्र पत्थरों के कुछ टुकड़े।

मैं चुपचाप वेग से लौटने लगा। सर्वत्र ही एक ध्यानमग्न शांति थी। अंधकार क्रमशः घना होने लगा। अनन्त आकाश स्तब्ध कौतुहली अगणित नक्षत्र-मंडली से भर गया था, मानो प्रकृति अवाक् दृष्टि से हमारी गति-विधि को देख रही हो। उस हिम नदी के किनारे आने पर कीचखंपा ने कहा "आज हम लोग जहां गये थे, कोई हुंनिया (तिब्बत निवासियों को हुनिया कहते है) भी वहां जाने का साहस नहीं कर सकता। मैं तो अब तक प्रायः ५० बार यात्रियों को लेकर कैलाश आया हूं किन्तु इससे पहले कोई भी यात्री कैलास के पादमूल तक नहीं गया था और अन्य कोई गया हो ऐसा सुनाई भी नही पड़ा। आज आपके साथ मुझे भी दर्शन हो गया।"

जब हम लोग तंबू में लौट आये तो रात के ८॥ बज चुके थे। यात्री हमें न देखकर बहुत शंकित हो गये थे। कुछ लोग हमारी खोज में इधर-उधर दौड़ पड़े थे। परन्तु कहीं हमारा पता न पाकर सबके सब लौट आये

थे। अब हमें निर्विघ्न लौट आते देखकर सभी के जान में जान आ गयी और वे कैलाश पादमूल के पवित्र प्रस्तर मस्तक पर धारण कर अपने को कृतार्थ समझने लगे। उस स्थान का विवरण देते-देते रात आनन्द से बीत गई।

बहुत तड़के ही हम लोग 'डीरीफू' छोड़ कर चल पड़े। अन्य कोई भी यात्री उस समय तक बाहर नहीं निकले थे। रास्ते में बरफ अधिक नहीं था। बहुत सा बरफ गल गया। पत्थरीले मार्ग के ऊपर की पथ-रेखा पकड़ कर हम आगे बढ़ने लगे। आधी मील पर चढ़ाई शुरू हुई।

'ला-चू' नदी के पार 'डीरीफू गुंफा' है। देखने के लिए जा न सके। कल तीसरे पहर वहां जाने की बात थी। किन्तु मेरे गायब हो जाने के कारण साथियों में कोई गुंफा देखने नहीं गया। गुंफा देखने के बाद आज फिर आगे जाना संभव न था। इस कारण उसे स्थगित कर दिया गया था। ला-चू नदी काफी चौड़ी है, परन्तु जल अधिक नहीं है। चलकर पार किया जा सकता था। गुंफा दिखायी पड़ रही थी। बहुत बड़ी और सुन्दर है। सुना है, उस गुंफा के ऊपर से कैलाश का दृश्य बहुत ही सुहावना दिखता है।

क्रमशः भारतीय यात्रियों के दल तथा दंड-परिक्रमा करने वाले निकल पड़े। डीरीफू से दोलमा-ला लगभग तीन मील है। अंतिम अंश में खड़ी चढ़ाई है। कैलाश-यात्रा-पथ में या पश्चिम तिब्वत भ्रमण काल में 'दोलमा-ला' ही सर्वोच्च स्थान है। ऊंचाई १८६०० फुट है। तिब्वती भाषा में 'ला' शब्द का अर्थ है गिरि-द्वार। इसी 'दोलमा-ला' को पार करके जाना होता है।

'दोलमा-ला' चढ़ाई की आधी दूर चढ़ आये। इतने में एक भारतीय यात्री-दल का झब्बू एकाएक डरकर पीठ के बोझ सहित उन्मत्त की तरह

नीचे की ओर दौड़ पड़ा। उसे देखकर दूसरे झब्बू भी चंचल हो पड़े। उन्हें सम्हालना कठिन हो गया। थोड़ी दूर दौड़ जाने के बाद उस झब्बू की पीठ से सामान का बोझा गिर पड़ा और लुढ़कते हुए ४-५ सौ फुट नीचे दाहिनी ओर गिरिखात में गायव हो गया। भारोन्मुक्त पशु निर्विकार चित्त से अवाक् विस्मय के साथ अपनी पीठ का बोझ किस ढंग से गिरता जा रहा था उसे देखने लगा। उसका दार्शनिक-सुलभ निस्पृह भाव देखकर दुःख के भीतर भी मन में हंसी आ रही थी। झब्बू की पीठ का वह बोझ यदि कोई मनुष्य होता तो उसकी क्या दुर्गति होती, उसे सोचकर रोंगटे खड़े हो गये।

एक दिन पूर्व खबर मिली थी कि पंजावी यात्रियों की एक बुढ़िया अपने झब्बू की पीठ पर से इसी बोझ की तरह गिर जाने से हड्डी-पसली तुड़ा कर पंगु हो चुकी थी। घोड़े की अपेक्षा झब्बु अधिक बोझ ढोते हैं और भाड़ा भी कम होता है। किन्तु यह पशु प्रायः पागल होकर कभी-कभी अनर्थ भी कर बैठते हैं। कुछ लोग खर्च घटाने के लिए झब्बुओं को किराये पर लेकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। ऐसी विपत्ति की बात जानकर हम लोगों ने घोड़ों और खच्चरों को भाड़े पर लिया था। चमरी और पालतू गाय के मिश्रण से झब्बू एक पालतू पशु की उत्पत्ति मानी जाती है। देखने में वह भैंसों से भी बड़ा और हट्टा-कट्टा लगता है। तिब्बती लोग झब्बू का दूध पीते हैं और मारकर मांस भी खा जाते हैं। शीतकाल में बरफ के समय एक झब्बू मारा गया तो एक परिवार के एक-डेढ़ मास तक का भोजन संपन्न हो जाता है। शीत के कारण मांस नष्ट नहीं होता। कभी-कभी शीत-काल में एक स्थान से दूसरे स्थान में बकरी भेड़ों का दल ले जाने के समय एकाएक

हिमपात से आक्रान्त होकर सारे पशु ही बरफ के नीचे दब जाते हैं। ६ महीने बाद बरफ के गल जाने पर तिब्बती उन मृत पशुओं को ले जाकर उसका मांस खाने के काम में लाते हैं। बरफ के नीचे दबे रहने के कारण इतने दिनों के बाद भी वह मांस सड़ नहीं जाता।

अंतिम अंश की चढ़ाई बहुत ही कठिन मालूम हुई। घोड़े खच्चर भी उठ नहीं सकते थे। दस कदम चढ़कर खड़े हो जाते थे। अनेक यात्री भी पथ के किनारे श्वास-कष्ट के कारण बैठ गये थे। एक कदम भी आगे चलने की शक्ति नहीं थी। कोई कोई दमे के रोगी की तरह हांफ रहे थे। वैसा कष्ट देखने पर हृदय के भीतर मरोड़ने जैसा क्लेश होता था।

अब अरुणालोक से चारों ओर के पर्वत मानो प्रफुल्लित हो उठे थे। नील नभस्तल में बालार्क की हंसी का उज्ज्वल आविर्भाव! प्रकृति के शोभामय प्रकाश की ओर देखकर मैं तो सारा कष्ट भूल गया. चढ़ने लगा, केवल चढ़ते ही जाने लगा। किसी तरह दोलमा-ला में हम लोग सकुशल पहुंच गये। इस स्थान से गगन-स्पर्शी कैलाश-शिखर ठीक सामने दिखाई पड़ा—बीच में कोई रुकावट नहीं थी। कैसा स्वच्छ शांत मनोहर और ध्यान-गंभीर भाव था! देखते ही हृदय एकदम शान्त हो गया था। सारा कष्ट सार्थक हुआ। प्रथम दृष्टि से कैलाश शिखर स्फटिक या संगमरमर से निर्मित एक विराट मंदिर-चूड़ा के रूप में प्रतीत होता है। उस चूड़ा के सामने ही विशाल नाट्य मंदिर तथा दोनों ओर के दोनों बरफ के शिखर मानो मंदिर के 'गोपुरम्' हैं। शास्त्रों में कैलाश को शिवपुरी कहा गया है, किन्तु २०वीं सदी के सभ्य जगत के सामने वैसी बात चल नहीं सकती। वह अवास्तव कहानी मात्र है! किन्तु उस सभ्यता के बाहर खड़े होकर उस बात पर विश्वास करने में बिन्दुमात्र भी

संदेह नहीं किया जा सकता। हो सकता है कि वह एक कल्पना मात्र हो परन्तु वह कल्पना अर्थपूर्ण और मधुर है।

'दोलमा-ला' में बहुत देर तक बैठकर हम लोग उस अनुपम सौन्दर्य-सुधा का जी भर कर पान करने लगे! युग-युगान्तरों तक देखते रहने से भी मानो मन को तृप्ति नहीं मिलती। वह ध्यान-मौन प्रशान्ति चित्त पर गंभीर प्रभाव डाल देती है और मन में अगाध शांति छा जाती है।

अब तक 'दोलमा-ला' के ऊपर अनेक तिब्बतियों और भोटियों ने समवेत होकर ऊँचे स्वर से अबोध्य-मन्त्रादि का पाठ करना आरम्भ कर दिया है। उनको विश्वास है कि वे मंत्र भूत-प्रेतों के उत्पीड़न से बचा लेंगे। 'दोलमा-ला' में, दोलमा नामक एक भारी पत्थर है। तिब्बती उस पत्थर को देवमूर्ति समझकर महान पवित्र जानकर मक्खन और घी से उसे पोत देते हैं और अनेक प्रकार के पूजोपकरण निवेदित करते हैं। उस पत्थर पर दिवंगत स्वजनों के दांत केश हड्डी भी सजाकर रखते हैं। उस पत्थर के आस-पास बहुत से भेड़ों और बकरियों के सींग पड़े थे। ऐसा प्रतीत हुआ वे पशु इत्यादि भी देवता के लिए बलि चढ़ाये गये हैं और बगल में ही डालियों सहित वृक्ष की सूखी शाखा गाड़ी हुई है और उसमें रंग बिरंगी ध्वजायें उड़ रही हैं।

हम लोग बहुत ऊँचे पर चढ़े हैं। कैलाश-शिखर के सिवाय और सभी पर्वत हमारे नीचे हैं। रौद्रोज्ज्वल आकाश मानो सिर से लग रहा था। चारों ओर का वातावरण उन्मुक्त है। दृष्टि की सारी बाधायें विलुप्त हो गई हैं। जीवन में भी संभवतः ऐसा ही होता है। जीवन की गति को जब सभी घेरों,

सीमाओं, संकीर्णताओं और द्वन्द्वों से ऊपर परिचालित किया जा सके तो वह महत् जीवन में रूपान्तरित हो जाती है।

'दोलमा-ला' के ४०० फुट के नीचे गौरीकुंड है। पुराण में वर्णित है कि शिव-संगिनी पार्वती उस गौरीकुंड में प्रतिदिन स्नान करती हैं। बहुत ही खड़ी उतराई और प्रस्तरमय पथ है। सभी लोग पैदल चल रहे थे। तिब्बती गौरी कुंड को 'थूजीम्ब' कहते हैं। निश्चय किया था कि मैं कुण्ड में स्नान करूँगा किंतु कुण्ड के किनारे आकर जो दृश्य दिखायी पड़ा उससे हृदय भय से काँप उठा। स्नान क्या करूँ, जल है कहाँ ? समूचा कुण्ड ही बरफाच्छन्न है। बरफ कैसे तोड़ा जायगा ? और क्या नीचे जल मिलेगा ? सुना था कि शीतकाल में समूचा 'मानस सरोवर' और 'राक्षस ताल' भी जम कर बरफ हो जाते हैं किन्तु उस बरफ के नीचे जल रहता है। १८२०० फुट ऊपर बरफावृत स्थान में बरफ तोड़कर जल मिलने पर भी उसमें डूबा कैसे जायगा ? गाइड से राय कर हम कुछ लोग मिलकर उस कुण्ड की बरफ के ऊपर बड़े-बड़े पत्थर के ढोके लुढ़का कर गिराने लगे। पत्थरों की मार से कुछ स्थान पर बरफ टूटा। जल से भेंट हुई, किन्तु उस जल के नीचे भी तो नीलाभ जमा हुआ बरफ है। ऊपर बरफ और नीचे भी बरफ तथा बीच में ३-४ फुट जल है। पहले गंगा की उत्पत्ति स्थान गोमुखी में देखा था—इस तरह नीला बरफ जल के नीचे जमा हुआ है। १-१॥ फुट बरफ की तह तोड़-तोड़ कर उतर कर डुबकी लगाने लायक एक गड्ढा बना लिया गया। किन्तु जल में थोड़ा हाथ डुबोते ही वह अवश हो गया। 'लोग बरफ की तरह ठंढा' कहकर दृष्टान्त देते हैं। परन्तु यह जल उस बरफ की अपेक्षा भी बहुत अंश अधिक ठंढा है। दृढ़ संकल्प था कि स्नान करना ही होगा। मैं तैयार होने लगा। धूपवत्ती जलाकर कुण्ड की पूजा करके दुर्गा नामोच्चारण करते हुए ३ डुबकी

किसी तरह लगाकर उठ आया। सारा शरीर सुन्न, हृत्पिड की क्रिया मानो एकदम रुक गयी। कष्ट बोध कहाँ तक हुआ था, उसे समझने की शक्ति भी मन में नहीं थी। अत्यंत दुःख की अनुभूति प्रकाशित नहीं की जा सकती। कुछ देर बाद देह-मन का अवश भाव दूर हो गया और एक अभावनीय आनन्दरस से मन-प्राण आप्लुत हो गये!

अनेक यात्रियों के मुख से सुना है कि गौरी कुण्ड में स्नान करना असंभव है। यथार्थ में यह असंभव बात है। उस स्थान में दैव योग से ही किसी दिन सूर्य का मुख दिखायी पड़ता है। जल भी इतना अधिक शीतल रहता है कि शरीर का रक्त ही जम जाता है। इतनी ठंढी आबोहवा में बरफ के कुण्ड में स्नान की दुराशा भी कोई नहीं करता। कीचखंपा ने कहा था—"मैं भी ५० बार यात्री लेकर इधर आया हूँ, किन्तु गौरीकुण्ड में ऐसी उज्ज्वल धूप यही प्रथम बार देखी। बहुत ही आश्चर्य की बात है।"

तुषारपात, बर्फीली आँधी, ओलों की वृष्टि, मेघ-मलीन आकाश, हिम-कण युक्त तीव्र ठंढी हवा—यही गौरी कुण्ड की स्वाभाविक अवस्थाएँ हैं। इस प्रकार के प्राकृतिक दुर्योगों के कारण बहुत कम मनुष्य ही इस कुण्ड में डुबकी लगाकर स्नान का मौका पाते हैं।

तिब्बती घोड़ेवाला 'रुंपू' कुण्ड में मैं स्नान करूँगा, सुनकर बहुत ही भयभीत होकर बोला था—"स्वामी जी, ऐसा काम न करना, खबरदार, मेरी बात सुनो, उस कुण्ड में यक्ष लोग रहते हैं। उतरते ही पकड़कर अपने राजा कुबेर के पास ले जाकर हाजिर कर देंगे। फिर लौटने नहीं देंगे। आदमी कभी उसमें नहीं नहा सकता। वह जो बरफ देखते हो, उसके नीचे यक्षों के

रहने का स्थान है।" गाइड के उस तिब्बती की बात को मुझे जताते ही मेरे सहयात्रियों ने कृत्रिम गंभीरता के साथ उस घोड़ेवाले की बात को दुहरायी।

गौरी कुण्ड का व्यासार्ध १—१॥ सौ गज से अधिक नहीं मालूम हुआ। प्रायः गोलाकृति—तीन ओर पर्वतों से घिरा हुआ है। स्नान के अनन्तर तेज धूप के भीतर मैं कुण्ड के तीर पर खड़ा था। इतने में एकाएक एक विकट शब्द से चारों ओर के पर्वत गूंजने लगे। चौंक कर इधर-उधर देखा कि गौरी-कुण्ड के पश्चिमोत्तर कोने पर कैलाश पर्वत श्रेणी से जल प्रपात की तरह शुभ्र तरल झागदार बरफ भीषण शब्द करता हुआ गिर रहा है—हिमानी-संप्रपात (Avalanching)। ४-५ मिनट के भीतर ही प्रचुर प्रपात के फलस्वरूप वह स्थान बरफ के ढेर से भर गया। वह हिमानी संप्रपात उज्ज्वल सूर्य-किरणों से उद्‌भासित होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कुबेर अपने धन-भंडार से विपुल गलित स्वर्ण गौरी कुण्ड में उत्सर्ग कर रहे हों।

उस सौन्दर्य-साम्राज्य में बहुत देर तक रहने का अवकाश नहीं मिला। अभी बहुत दूर जाना होगा। हिमालय-कन्या गौरी के चरणों में प्रणाम करके हम लोग चल पड़े। घोड़ा आदि आगे 'लामछीकी-चू' के किनारे पहुंच गये थे। प्राणांतकर उतराई थी। प्रस्तर-बहुल, अत्यंत संकुचित पथ। अरुण बाबू एकदम अवसन्न हो पड़े। दो आदमी उन्हें किसी तरह ढोकर लिये चल रहे थे। क्रमशः हमलोग 'लामछीकी चू' के किनारे एकत्र हुए। पास ही ऊँचे पर्वत, उसी के निम्न देश में छोटी सी उपत्यका के अंतिम प्रांत में यह छोटी नदी थी। उसके अनन्तर ही उच्च गिरि-श्रेणी है। तिब्बतियों में प्रवाद है कि गौरी कुण्ड का जल पर्वत के नीचे के मार्ग से प्रवाहित होकर लामछीकी-चू नदी बन गया है। हो भी सकता है। कुण्ड के आधी मील दूर लगभग ८०० फुट नीचे वह नदी सबसे पहले दिखाई पड़ती है।

उपत्यका में कुछ देर तक लेट कर विश्राम लेने के अनन्तर फिर से चल पड़े। नदी के किनारे-किनारे कुछ समतल सूर्यकरोज्ज्वल पथ था। बहुत से तिब्बती यात्रियों और लामा-वेशधारियों से भेंट हुई। वे लोग कैलाश की ओर जा रहे थे। एक तिब्बती परिवार गृहस्थी के सारे सामान कई झब्बुओं की पीठ पर लादकर चल रहा था। एक झब्बू की पीठ पर अपने ३ बच्चों को भी बाँध दिया था। वे बहुत ही निश्चिंत चित्त से हिलते-डोलते हुए जा रहे थे। अब हमलोग नदी का तीर छोड़कर प्रस्तर-समाकीर्ण ऊँचे-नीचे पथ तथा कंटीली झाड़ियों के भीतर से चल रहे थे। इस कष्टकर पथ का आरंभ था किन्तु अंत नहीं। सभी के शरीर थकावट के कारण चूर-चूर हो गये थे। किसी तरह शरीर को खींचते हुए चल रहे थे। तीसरे पहर ३ बजे के समय 'जुन्थुल्फुक्' गुंफा के पास 'यम्दु-चू' नदी के किनारे खेमा डाला गया। भोजनपर्व समाप्त होने में प्रायः शाम हो गई। लेट जाने के अलावा और कुछ करने की शक्ति किसी में न थी। तीर्थ यात्रा का यह दुरधिगम्य दीर्घ पथ हमारी कठोर तपस्या थी। पथ के मर्मान्तिक पीड़न से देह और मन एकदम अवसन्न हो पड़े। गंभीर वेदना-युक्त हृदय से आपस में एक दूसरे के प्रति दृष्टि-विनिमय कर रहे थे। एक दूसरे का चेहरा देखकर सिहर उठता है। सभी का शरीर स्याही पुता हुआ तथा गढ़े में धँसी हुई आंखों की उदास दृष्टि में समवेदना जताने की शक्ति भी नहीं थी। क्योंकि उससे उपहास की तरह हृदय में और भी मर्मान्तक व्यथा उत्पन्न होगी। चुपचाप लंबी साँस छोड़ता हूँ। एक-एक दिन एक-एक युग-सा मालूम होने लगा। किसी तरह एक मास तक निरन्तर चलते हुए लगभग १६००० फुट ऊपर चढ़ आये थे और २५० मील पहाड़ी पथ का अतिक्रमण किया। समतल स्थान में इतनी दूरी कुछ भी नहीं

है। यहाँ तक कि केदारनाथ, वदरी-नारायण यात्रा पथ का कष्ट भी इस कष्ट की तुलना में बिलकुल बच्चों का खेल है। इस यंत्रणा-जर्जर पथ के प्राणांत कर तपस्या के भीतर भी एक अनिर्वचनीय आनन्द मानो संजीवनी सुधा की तरह नित्य नूतन जीवनदान करके हमें निरंतर अग्रसर करा रहा है। अंत तक उसी आनन्द की स्मृति इस दुस्तर पथ का एक मात्र पाथेय बन गई थी।

कुछ भी छोड़ने की इच्छा नहीं होती। संध्या के अनन्तर सारे पंगु शरीर उठ खड़े हुए और गुंफा के दर्शन के लिए चले। आरंभ में ही थोड़ी खड़ी चढ़ाई थी। अँधेरा घिर आया था। गुंफा के पास आते ही एक बहुत बड़ा कुत्ता भौंकते हुए हम लोगों पर आक्रमण करने लगा। गुंफा के बाहर प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर एक बड़ी धर्मशाला थी। तिब्बती यात्री और घने धूएँ से वह स्थान भर गया था। कीचखंपा एक डाबा को साथ लिये हम लोगों को गुंफा के भीतर ले आया। प्रथम ही प्रार्थना मंदिर या भोजनागार मिला। दिखाई पड़ा कि ४-५ डाबा संध्याकालीन भोजन में संलग्न हैं। सामने ही एक छोटा सा गर्भ मंदिर है। एक मात्र मक्खन का क्षीण दीपक टिमटिमा रहा था। पूजा के लिए कुछ टंकायें प्रणामी देते ही पुजारी डाबा ने झट और दीपक जला दिये। बेदी के ऊपर बीच में सोने के जल से रंगाई हुई काठ की बुद्ध मूर्ति और दोनों ओर दो बौद्धाचार्यों के विग्रह हैं। नीचे की सीढ़ी पर रखी हुई धातु की बनी हिन्दू देव देवियों की मूर्तियों में तारा, अष्टभुजा, महादेव, और आचार्य शंकर ये विग्रह पहचाने जा सकते थे। दीवाल के ताखों में बहुत से भूत-प्रेतों की मूर्तियाँ थीं। वेदी पर छोटे-बड़े नाना प्रकार के बहुत से शंख सजाये हुए रखे थे। पुजारी डाबा ने कहा—"ये शंख शिवजी के हैं, वे सुबह शाम दो बार शंख फूँका करते थे, एक बार सुबह और एक बार शाम को।"

"अब कौन बजाता है ?" ऐसा पूछने पर उसने उत्तर दिया "अब हमी लोग बजाते हैं, वह भी खास-खास दिन पर, पूजा उत्सव या किसी मृत ग्राम-निवासी के पारलौकिक क्रिया आदि में।" गर्भ मंदिर के समक्ष ही ६-७ हाथ लंबा एक गोल काला पत्थर रखा हुआ था। पूछने पर डाबा ने बहुत उत्साह के साथ कहा—'यह शिवजी के हाथ की लाठी है। इसी लाठी को टेक कर शिवजी कैलाश से उतरते थे।'

हमारे एक सहयात्री ने पूछा—"अब यह लाठी कौन इस्तेमाल करता है ? शिवजी अब कैसे उतरते हैं ?"

डाबा ने विस्मय से आँखें फाड़ कर कहा—"यह लाठी गहरी रात्रि में शिवजी उठा ले जाते हैं और कैलाश पर्वत के चारों ओर घूम फिरकर लौटते समय यहाँ छोड़ जाते हैं।"

नाट्य मंदिर के एक कोने पर सिंह की आकृतिवाला एक बहुत बड़ा काला पत्थर पड़ा था। डाबा ने कहा, "यह पत्थर बहुत प्राचीन समय में मानस-सरोवर से उठा है, यह शिवजी का आसन है। शिवजी जब घूमने निकलते हैं तो यह पत्थर भी उनके पीछे-पीछे चलता है। थक जाने पर वे इसी प्रस्तर खंड के ऊपर विश्राम लेते हैं।" प्रमाण स्वरूप उसने जो बातें बताईं, उनका उल्लेख न करना ही अच्छा है।

गुंफा वासियों की संख्या सात है—सभी डाबा हैं। लामा एक भी नहीं। कैलाश परिक्रमा के पथ में 'टारचान' 'नियान्डी', 'डिरीफुक्' और 'जून्थूल फुक्' ये चार गुंफायें हैं। हमारे ऊपर प्रसन्न हो कर पुजारी ने देवता के प्रसाद रूप से कुछ रंगीन सूत और वस्त्र दिये।

'जूनथूलफुक' में जहाँ हम लोगों ने खेमा डाला था ठीक उसी जगह अनेक वर्ष पहिले कैलाश यात्रा के समय मैसूर के महाराज के तंबू पड़े थे। कीचखंपा ने कहा—'महाराजा के दल के साथ हम लोग १८ गाइड आये थे। वह एक बृहत् व्यापार था। कितने ही घोड़े, लादूघोड़े, तंबू, नौकर-चाकर, ब्राह्मण, डाक्टर, वैद्य, सिपाही, संतरी, धोबी, नाऊ, मेहतर आदि सैकड़ों आदमी और कर्मचारी एक साथ चल रहे थे। महराजा गंगा जल के सिवाय अन्य जल नहीं पीते थे। बर्तनों में बहुत से लोग उस जल को ढो कर साथ-साथ चलते थे। रोज सुवह नहा धोकर सोने के बेल-पत्रों से वह शिव पूजा करते थे। ब्राह्मण लोग वेद पाठ करते थे। हवन, यज्ञ, दान आदि समाप्त कर वह रवाना होते थे।'

एक सहयात्री पूछ बैठा—''क्या महाराज समूचा पथ पैदल ही चले थे?''

गाइड—और नहीं तो क्या? वह रोज ही ४-५-६ मील के हिसाब से चलते थे। उनके साथ घोड़े, डंडी आदि रहते ही थे, किन्तु वे बराबर पैदल ही चलते थे। मैं तो धारचूला में जाकर उनके दल के साथ मिला था और कैलाश दर्शन और परिक्रमा खतम कर फिर से धारचूला तक गया था। उन्हें बराबर पैदल चलते ही देखा। महाराजा बिना खाये पिये अवस्था में निकलते थे। कहीं-कहीं देखा, थक गये तो पत्थर पर लेट गये। साथ के लोग उन्हें घेर कर खड़े हो जाते। डाक्टर नाड़ी देखने लगते। कोई-कोई हाथ पैर दबाते थे। यात्रा-पथ में वह माला जपते हुए चलते थे। हाथ में हर समय जाप की माला रहती थी। महाराज के निकलने के पूर्व २-३ दल आदमी आगे निकल जाया करते थे। एक दल रास्ता साफ करते हुए आगे बढ़ जाया करता था और

दूसरा दल स्थान-स्थान पर तम्बू गाड़ कर आराम कुरसी चारपाई आदि लगा रखता था। रास्ता चलते हुए यदि महाराज थक जाते तो विश्राम ले लेते थे और तीसरा दल भोजनादि का प्रबन्ध करने के लिए आगे चला जाता था।

गाइड उत्साह के मारे न जाने महाराज की तीर्थ यात्रा के प्रसंग में क्या-क्या कहता जा रहा था। गाइड ने अंत में गदगद स्वर से कहा—"अहा! ऐसा आदमी नहीं देखा था। उनमें कितनी दया थी। गरीब दुःखियों को आशातीत धन मिला। वे आशीर्वाद देते हुए चले गये। दान देने के लिए बहुत से संदूकों में रुपये भर कर लाये थे। अभी भी लोग धन्य-धन्य करते हैं। हम लोगों को भी बहुत इनाम तथा नई पोशाकें मिली थीं। ऐसा राजा कभी नहीं होगा।"

मैं सोच रहा था कि कौन सा ऐसा आकर्षण था कि ऐसे आजन्म विपुल ऐश्वर्य में प्रतिपालित एक वृद्ध नरपति को ऐसे दुरधिगम्य यात्रापथ पर खींच लाया था। संभवतः केवल पुण्यभूमि भारत में ही ऐसा संभव है। यह तो हवाई जहाज में सवार होकर पृथ्वी भ्रमण नहीं है। यह तो हर कदम में मृत्यु का आलिंगन करते हुए चलना है। हमारे इस विचित्र देश में ही जन्मान्ध यात्री दुर्लङ्ध्य कैलाश पथ का पथिक होता है। कौपीनधारी कंबल-संबल अकिंचन संन्यासी के 'ओम् नमः पार्वतीपतये हर-हर' शब्द से सुदुर्गम 'लिपुगिरि-वर्त्म' मुखरित हो उठे। ऐश्वर्यशाली नरपति तुषारावृत कैलाश के पादमूल में मामूली पटावास के भीतर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के ध्यान में निमग्न हों। ऐसा लगता है कि ऋषि-वाक्य सफल होगा—'भारत पुनः जगत्-सभा में श्रेष्ठ आसन पायेगा।'...

कल लगभग १२-१३ मील जाकर बंगडू पहुंचना होगा। कहाँ किस दिन जाना होगा वह पहले से ही स्थिर किया जाता है। क्रम भंग नहीं हो सकता।

साधारणतया घोड़ों के घास जल की सुविधा के ख्याल से पड़ाव निश्चित किया जाता है। गत कई दिनों में बेचारों का जैसा चेहरा हो गया है उसे देखकर कष्ट होता है। खुले पत्थरों पर से चल-चल कर खुर फट गये हैं। लाचार हो कर लंगड़ाते हुए चल रहे हैं। आधा पेट भी भोजन न मिलने के कारण उनकी हड्डी-पसली निकल आई है। भूख के मारे कुछ हरी चीज देखते ही मुंह बा देते हैं, चाहे वह कँटीली झाड़ी ही क्यों न हो। यदि तीर्थ का कुछ फल प्राप्त हो तो वह उन्हीं को है। इनके कष्टकर साधन की सीमा नहीं है !

गत दिन के कष्ट की बात हम लोग भूल गये। हमारे सामने वर्तमान ही वास्तव है। अतीत और भविष्य के सम्बन्ध में आने जाने लायक मन की अवस्था नहीं थी। नये प्रभात के साथ-साथ हृदय में नये ढंग से वह— अनिर्वाण आकांक्षा—अज्ञात का आकर्षण जाग उठता है। हम लोग आगे चलने लगे। इसीमें ही परम सार्थकता और अपरिसीम तृप्ति थी।

भोर होने के पूर्व ही ज्योतिमय का आभास मिल रहा था। चारों ओर ध्यान-मौन शांति थी। प्रभात जग उठा। कैलाश शिखर मानो हँस पड़ा। पास ही दल-चू की कल-कल ध्वनि हो रही थी। शून्य नदी-तीर में हमारे पशु उस समय भी ऊँघते हुए पागुर करते जा रहे थे।

———

मानससरोवर-यात्रा

'जून्-थूल्-फूक्' छोड़ कर 'दलचू-चू'—के किनारे-किनारे खुले मैदान के ऊपर से लगभग दो मिल का पथ क्रमशः बहुत सँकरे मार्ग से खड़ी चढ़ाई समाप्त कर पर्वत के शिखर पर हम पहुंच गये। सामने अनेक योजन विस्तृत पठार है। उसी को विस्मय से देख रहा था। लगता था मानो असीम समुद्र है। हृदय में भूमा का भाव जगा देता है। इस अन्तहीन पठार के उत्तर सूर्य-किरण-विधौत कैलाश-श्रेणी, दक्षिण में दूर पर 'गुरला मांधाता' की तुषारा-च्छन्न पटभूमि और पश्चिम में 'सेला चाकुंगू' पर्वतमाला,—मानो स्वप्नराज्य है! परिपूर्ण सौन्दर्य वैभव व नयनाभिराम रूप था। शैल शिखर से उतर कर अब हम लोग आगे चलने लगे। क्रमशः 'टारचान गुम्फा' के पास आये। गुंफा जाने की बहुत इच्छा थी। किन्तु देर हो जायगी इस कारण अधिकांश लोगों की अनिच्छा देख कर जाना नहीं हुआ। यहीं कैलाश परिक्रमा समाप्त हुई। गुंफा मानो दाहिनी ओर से तिरछे नेत्रों के द्वारा साभिमान हमें देख रही थी। दूर पर दिखाई पड़े—बहुत से काले रंग के तम्बू। हमें उधर ही चलना होगा।

कोमल नीला आकाश—सूर्य किरणों से उद्भासित तथा उज्ज्वल था। महान् उत्साह से हम लोग पठार के ऊपर से चलने लगे। रात्रि और प्रातः-

काल का प्रचंड शीत मधुर वसन्त में रूपान्तरित हुआ। शरीर में नूतन बल का संचार हुआ। मन आनन्द से हिलोरें खाने लगा। तिव्वत की आबोहवा में ऐसी एक आश्चर्यजनक शक्ति है कि थोड़ा विश्राम लेने पर ही हृदय में अनुप्रेरणा का ज्वार आ जाता है।

काले तम्बूओं के पास आने पर दिखाई पड़ा कि उनमें दानवों की तरह भयंकर चेहरेवाले तिव्वती स्त्री-पुरुष हैं। बच्चे भी बहुत से हैं। थोड़ी दूर पर सैकड़ों बकरे, भेड़, घोड़े, झब्बू चर रहे हैं। तिव्वती स्त्री-पुरुषों के बलिष्ठ सुगठित शरीर देखकर प्रसन्नता हुई। फिर भीतर ही भीतर भय भी हो रहा था। वे भी हमें उत्सुक दृष्टि से देख रहे थे। अरुण बाबू की राइफल पर एक तिव्वती को भारी लोभ हुआ। कीचखम्पा से कहा "ऐसी राइफल कहाँ मिलती है? इसे वह बेचेगा?" गाइड ने कुछ दिल्लगी से कहा—"बेचने को तो राजी हैं किन्तु इसका दाम कितना जानते हो? दस हज़ार टंका। इस राइफल से एक साथ दस आदमी को मारा जा सकता है।" तिव्वती ने अचम्भे में आकर लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा—"पचास बकरे दे सकता हूं। यह बन्दूक मुझे दो।"

जाना गया कि वे चीन-सीमान्त के निवासी हैं। ऊन और दूसरी चीजें बेचने के लिए वे गानीमा मण्डी जा रहे हैं। हर साल ही वे इस प्रान्त में उतर आते हैं। स्त्रियों के शरीर में ढीली पोशाक—गले से पैर तक। गले में कई रंग के काँच की माला, पैर में घुटने तक ऊन का जूता, हाथ में चाँदी के मोटे-मोटे गहने। चेहरे पर लाल चन्दन की तरह किसी चीज का मोटा प्रलेप। उनके केश संवारने का ढंग भी देखने लायक है। केश लम्बे—सैकड़ों महीन वेणियों के रूप में पीठ के ऊपर से कमर के नीचे तक लटक रहे हैं। पुरुषों के केश भी मोटी वेणी से बद्ध और लम्बित है, कान में सोने का गहना,

किसी-किसी के गहने में मोती जड़ा है। इनके चेहरे में कोमलता और नम्रता का लेशमात्र नहीं है। नाक चिपटी, आँखें गढ़े में अध-खुली। टुकुर-टुकुर स्त्रियाँ देखती हैं। पुरुषों में भी दाढ़ी, मूँछ की वला नहीं है। शीत प्रधान देश। सभी चमड़े की पोशाक इस्तेमाल करते हैं। चमड़े के रोयें भीतर की ओर रहते हैं। उससे गरमी अधिक मिलती है। लबादा की तरह ढीली पोशाक घुटने के नीचे तक—बहुत लम्बी बाँह ऊँगलियों को ढक कर भी उसका सिरा कुछ लटकता रहता है। ये लोग मंगोलियन जाति के हैं। किन्तु ये जापानी ब्राह्मी या नेपाली गोरखे की तरह नाटे नहीं हैं। खूब लम्बे-चौड़े हैं। फोटो लेने की बड़ी इच्छा थी। गाइड ने मना किया। साधारण तिब्बतियों में यह धारणा है—जिसकी फोटो ली जाती है उसकी तुरन्त मौत हो जाती है।

तिब्बतियों ने बकरी के दूध का मक्खन तथा चामर बेचना चाहा किन्तु उनके साथ अधिक घनिष्ठता निरापद नहीं है सोचकर हम लोग जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गये।

क्रमशः अधिक गरमी मालूम होने लगी। चारों ओर सन्नाटा था। दक्षिण की ओर बहुत दूर पर क्षितिज के अन्तिम छोर में 'गुरला मान्धाता' पर्वत का चिरतुषारमय पिंगल किरीट हृदय में भय और विस्मय का संचार कर रहा था। कहीं भी जन-निवास का चिह्न मात्र भी नहीं दिखायी पड़ा। वृक्ष-लता गुल्म-तृण रहित रूखे पठार के भीतर से जाते हुए ऐसा लगता है मानो अपार समुद्र को पार कर रहे हैं और इस असीम समुद्र के इसी एक अनजान अपरिचित स्थान में आज के लिए लंगर डालना होगा। रास्ते की रेखा तक कहीं नहीं थी। एक दिशा लक्ष्य में रख कर अग्रसर होते चल रहे थे। शायद पक्षी भी ठीक इसी तरह असीम आकाश में उड़ते जाते समय अपना गन्तव्य लक्ष्य स्थिर कर लेते हैं।

टारचान बहुत पीछे छूट गया। कैलाश-पर्वतमाला भी क्रमशः दूर हटती जा रही है। प्यास से कंठ तक सूख गया। पैर चलना नहीं चाहते थे तो भी चलना ही पड़ रहा था।

लगभग १ बजे एक नामहीन छोटी पहाड़ी नदी के किनारे गाइड के निर्देश से सब लोग रुक गये। उस स्थान का नाम 'बंगड़ू' था। जान में जान आयी। तंबू खड़े किये गये। घोड़े लुड़क कर जल पीकर घास की खोज में घूमने लगे। हमलोग भी तम्बू के भीतर पड़ गये। बात करने की शक्ति नहीं थी। मुख के झाग तक को पोंछ डालने की इच्छा नहीं होती थी परन्तु जलवायु के गुण से आधे घंटे के भीतर ही मृतप्राय शरीरों में यथेष्ट बल संचार हो गया। कोई नदी में नहाने चला गया। रसोई, बातचीत आदि से वह स्थान मुखरित हो उठा। छोटी नदी 'दलचू-चू' का निर्मल जल लेकर अविश्रान्त गति से राक्षस ताल की ओर दौड़ती चली जा रही है। तीव्र गर्मी—छायाहीन निर्मम स्थान। तम्बू के भीतर ही ८५ डिगरी। परन्तु ऊँचाई १५ हजार फुट से अधिक नहीं। आज थोड़ा भुना हुआ पापड़ पाकर सब लोग खुश हुए। डाक्टर दे ने कहा—"ऐसा लगा मानो कुछ खाया है।"

सब लेट-बैठ कर समय बिता रहे थे। तम्बू का मुख कैलाश की ओर खुला था। भीतर बैठ कर ही ऊँचे नीचे पठार का दृश्य बहुत दूर तक दिखाई पड़ता था। तीन-चार मील दूर बरखा ग्राम था। मकान यहाँ से बिन्दु की तरह दिखाई दिये। वही एकमात्र ग्राम है। तिब्बत के डाक भेजने वाले डाक मुन्शी 'टार्जाम' उसी ग्राम में रहते हैं। एकायक स्वामी दुर्गात्मानन्द चिल्ला उठे—"वह देखिए बहुत से लोग इधर आ रहे हैं। डाकू तो नहीं हैं ?"

दिन-दहाड़े डाकू ? दुरवीन हाथ में लिये देखा गया कि आठ दस आदमी हमारे तम्बू की ओर तेजी से आ रहे हैं। अदृष्ट का कैसा अपूर्व उपहास था।

हम लोग सामाजिक जीव हैं तो भी कुछ लोगों को आते देख कर प्रसन्न न होकर हमलोग शंकित हो रहे हैं। ऐसे जन-मानवहीन पठार के भीतर अज्ञात अनाहूत आदमियों को तम्बू की ओर आते देख कर आतंक होता है। सभी लोग चंचल हो पड़े। कीचखम्पा और दरबू झट कारतूस का बेल्ट लटका कर बन्दूक पीठ पर लिये निकल आये। दुरबीन हाथ में लेकर थोड़ा आगे बढ़ कर कुछ देर तक देखते रहने के बाद गाइड ने कहा—"मालूम होता है हूनियाँ (तिब्बती) लोग चीज़ वस्तु बेचने के लिए आ रहे हैं। भय का कोई कारण नहीं है। उनके हाथों में थोड़ा बहुत सामान दिखाई पड़ रहा है।" बन्दूक पीठ में लिये वे दोनों टहलने लगे।

यह दिन का समय और हमारा इतना बड़ा दल ? तो भी डाकूओं का डर हँसी की ही बात है परन्तु तिब्बत में ऐसा प्रायः होता है। डाकूओं को दिन रात के विचार का प्रयोजन नहीं रहता। मरुस्थल की भी सीमा है और वहाँ मनुष्य मिल जाते हैं परन्तु तिब्बत का पठार मानो अन्तहीन है और मनुष्य-शून्य ! मौका पाते ही थोड़ा बहुत लूटपाट सभी करते हैं। अरक्षित, असहाय यात्रियों की आत्मरक्षा का कोई उपाय नहीं है। इस प्रान्त में न पुलिस थाना चौकी है और न सुविचार। चिल्ला कर मर भी जाओगे तो भी प्रत्युत्तर नहीं मिलेगा। तिब्बतियों का देश है। इस कारण उन्हीं का जोर-जुल्म ! विचारप्रार्थी होकर तकलाकोट पहुँचने में ५ दिन लगते हैं। इसके सिवाय उन्हें क्या पड़ी है कि ऐसे-ऐसे फालतू काम में सिर खपाये। इससे उन्हें लाभ ही क्या है ? तिब्बत में परदेशियों के धन-प्राण एकदम निरापद नहीं है।

ताराप्रसन्न बाबू ने उत्तेजित होकर कहा—"कीचखम्पा ने तो कह दिया कि डरने की बात नहीं है परन्तु भरोसा भी तो नहीं मालूम होता। दैत्य के

समान मनुष्य किस ढंग से जल्दी-जल्दी हमारी ओर आ रहे हैं, देखा आपने, हाथ में और पीठ पर क्या-क्या हैं ?" अरुण बाबू तो रिवाल्वर हाथ में लिये बैठे रहे। उन आदमियों के दो सौ गज के भीतर आते ही गाइड ने आगे जाकर चिल्ला कर कुछ पूछा। उन लोगों ने भी जवाब दिया। थोड़ी देर बाद हमारा गाइड आठ तिब्बतियों को साथ में लेकर तम्बू के सामने आया। उनमें ५ पुरुष और ३ स्त्रियाँ थीं। सभी के हाथ में चमर थे। भेड़ बकरियों के चमड़े और साथ में एक जीवित बकरा भी। इनका चेहरा देखते ही डर लगता था और शक्ल से तो यमदूत ही लगते थे। कैसा विकट चेहरा था और उनकी पोशाक भूत की तरह थी। जो सबसे आगे था उसने हमारी ओर देख कर कुछ हँसने की चेष्टा की। हँसी तो नहीं मानो भ्रुकुटी भर थी। सभी लोग तम्बू के सामने बैठ गये। झटपट सिगरेट निकाल कर सबके हाथ में दी गयी। स्त्रियों ने भी कुछ संकोच के साथ ले ली। धूम्रपान कर सभी प्रसन्न हुए। क्रमश: वे तम्बू के भीतर आने लगे। देख कर अरुणबाबू एकदम आग-बबूले हो उठे। इशारे से उन्हें रोका गया। मैंने कहा—'इन लोगों का मतलब क्या है ? जरा देख ही लिया जाय। मजा देखने का ऐसा मौका फिर नहीं आ सकता है। आपकी रिवाल्वर तो भरी ही है। चिन्ता क्या है ?" अरुण बाबू ने कहा—"यह आपकी बहुत ज्यादती है। जबर्दस्ती सब कुछ छीन ले जायेंगे तब ?" तम्बू के भीतर का असबाब देख कर उनकी आँखें झुलस गयीं। ऐसे सूटकेस, बिछौना, कम्बल, पोशाक आदि उन्होंने कभी देखे ही नहीं थे। सब कुछ ध्यान से हिला-डुला कर देखने और सबको दिखाने तथा आपस में अपनी भाषा में न जाने कैसी बातचीत करने लगे। एक आदमी तो तारा प्रसन्न बाबू का सूटकेस खोल कर देखने लगा। हजामत की सुगन्धि साबुन और स्नो की सुगन्ध से वह एकदम मोहित हो गया। ऐलुमीनियम की एक छोटी

कटोरी, सुगन्धित साबुन और टार्च लाईट उसे बहुत पसन्द आये। उस आदमी के पास छः चमर थे। अपने सब कुछ देकर उन चीजों को उसने लेना चाहा परन्तु हम लोगों ने नहीं दिया। लाचार होकर इच्छा न रहते हुए भी बेचारे ने उन चीजों को रख दिया। उसके मुख का कातर भाव देख कर मन में कष्ट होता था।

हम लोगों ने केवल एक छोटा चमर लिया। किन्तु कीचखंपा आदि ने अपने बचे हुए चावल, सत्तू, आटा आदि के बदले बहुत से सूखे चमड़े और उस बकरे को खरीद लिया। सबको थोड़ा-थोड़ा गुड़ देने से वे खुश होकर चले गये। हम लोग भी निश्चित हुए।

उन तिब्बतियों में यहाँ से चार मील दूर दमजू ग्राम का एक प्रधान भी था। उससे एक भयजनक समाचार पाकर सब लोग शंकित हो उठे—"जाँमरों ने ठोकर मण्डी में लूट-पाट की है। अनेक लोग ज़ख्मी हुए हैं। डाकुओं का दल भारी है। उनके अत्याचारों से मण्डी खाली हो गयी। वे इधर ही आ रहे हैं।" हम लोग 'जून-थूल-फूक' छोड़ कर ही जाँमरों की डकैती की अफवाह सुन रहे थे। अब ठीक खबर पाकर सब के मुँह सूख गये।

जाँमर भी तिब्बती ही हैं। चीन सीमान्त के निवासी हैं। आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित दलबद्ध डाकू हैं। वे व्यापारी के भेस में आते हैं। पालतू पशु, पत्नी, पुत्रादि भी साथ रहते हैं। आने जाने के मार्ग में जहाँ मौका मिलता है वहीं लूटपाट करते हैं। बाधा पाने पर मारकाट कर सत्यानाश कर डालते हैं। बल प्रयोग करके उनके हाथ से बच पाना असम्भव है। जाँमर लोग आ रहे हैं, ऐसी खबर मिलते ही तिब्बती भी ग्राम छोड़ कर भाग जाते हैं। तीन

साल पहले जाँमरों ने टारचान मण्डी को लूटा था। बाधा पड़ने पर भूटान राज्य प्रतिनिधि के रक्षक सैनिकों से उन लोगों का खंड युद्ध हुआ था। दोनों पक्षों के अनेक व्यक्ति हताहत हुए थे।

अगले दिन हमें मानससरोवर जाना था। जाँमरों के द्वारा लूटी गयी ठोकर मण्डी मानससरोवर से केवल आठ-नौ मील दूर है। बँगड़ू में बैठे रहना भी विपत्ति से खाली नहीं है। क्योंकि जाँमरों की गतिविधि का निश्चय नहीं है। उसके अतिरिक्त हर एक तिब्बती भी छोटा-मोटा जाँमर ही है। मौका पाने पर वे भी लूटपाट करने में नहीं चूकते। इस समय मैं शान्त चित्त से लिख रहा हूँ, यह सही है। किन्तु जाँमरों की खबर से साक्षात् मृत्यु की छाया देखकर सभी का मन विषादाच्छन्न हो गया था। असीम पठार के बीच में सभी जाँमर–विभीषिका देख रहे थे। एक सहयात्री ने ताना देकर कहा—"खूब धर्म कीजिये। अब मुँह क्यों सूख रहा है ?" किसी से प्रतिवाद करते नहीं बना और जिसने वैसा कठोर मन्तव्य प्रगट किया था उसका चेहरा भी काला पड़ गया !

सायंकाल होने में अभी देर थी। देखते-देखते घन-घटा गरज उठी। थोड़ी ही देर में काले बादल आकाश में फैल गये। बिजली चमकने लगी। जोर की आँधी से तम्बू को बचाना कठिन हो गया। तम्बू को पकड़ कर भयभीत दृष्टि से हम लोग चारों ओर देखने लगे। भीषण ओला-वृष्टि आरम्भ हुई। जल का एक भी बूँद नहीं था केवल ओले गिरने लगे। आधे घण्टे तक प्रकृति का यह प्रलय-नृत्य चला। और, ठंढक इतनी अधिक हो गई थी कि हड्डी तक काँपने लगी। दाँतों में दाँत लग गये। क्रमशः सब शान्त हुआ। चारों ओर शुक्लता का राज्य ! धीरे-धीरे धरती की छाती पर 'अवनत-मुखी सन्ध्या' उतर आई। दोपहर को तम्बू के

भीतर ताप ८५ डिगरी और रात को २४ डिगरी ! चारों ओर बरफ की तरह ओलों का ढेर लगा हुआ था। पासवाली नदी भी ओलों से भर गयी थी—जल जमकर बरफ हो गया था। उस बरफ राज्य में बरफ के भीतर शीत-जर्जरित शरीर से किसी प्रकार रात बितायी गयी। ताराप्रसन्न बाबू जाड़े के मारे काँप रहे थे। उन्होंने खेद के साथ कहा—"जाँमरों के हाथ से मरना भी इससे अच्छा था। यह तो तिल-तिल कर मरना है। कैलाशपति सिर पर रहें। कान पकड़ कर कहता हूँ फिर जीवन में कभी इधर मुँह नहीं करूँगा। किसी तरह प्राण लेकर लौट सकूँ तो कुशल है"।

इधर साथी तिब्बतियों के तम्बू में हो-हल्ला मचा हुआ था। आनन्द कोलाहल से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। पता लगा कि वे लोग उस बकरे को मार कर उसका माँस आग में भून कर महान आनन्द से खा रहे हैं। कीचखंपा ने कहा—" तिब्बतियों ने बकरे के पैर बाँध कर उसे जमीन पर पटक दिया और दूसरी रस्सी से उसके नाक-मुँह बाँध कर गला घोंट कर मार डाला। एक बूँद खून भी बाहर निकलने नहीं दिया। समूचे बकरे को आग में जला कर चाकू से उसका माँस काट-काट कर खा रहे हैं। पेट की अँतड़ियां खाने में बहुत अच्छी लगती हैं, गरम रोटी या पराठे के साथ खाते हैं। सबसे स्वादिष्ट है बकरे की जीभ। दोनों कान भी अच्छे लगते हैं"।

सहयात्री—जले की बदबू नहीं आती ?

गाइड—नहीं, महाराज। खा कर देखो न ? तब कहना। थोड़ा ला दूँ ?

सहयात्री—राम ! राम ! तुम्हीं लोग जाकर भर पेट खाओ।

तिब्बती बौद्ध हैं— अहिंसक ! किन्तु उनकी प्राणी-वध की रीति अद्भुत है। रक्तपात करके मारना उनके धर्म के विरुद्ध है, इस कारण वे सभी जानवरों को गला घोंट कर मारते हैं। इस प्रकार की हत्या उनके धर्म में चलती है। इसके अतिरिक्त उनका विश्वास है, खून न निकलने से उनकी राय में माँस बलकारक और स्वादिष्ट होता है। तिब्बती कच्चा माँस खाते हैं— खास कर शीतकाल में। कुछ-कुछ कच्चा माँस, भेड़-बकरे और छोटे हरिण आदि आग में जलाकर खाने की रिवाज कश्मीर से लेकर नेपाल तक प्रायः सभी पर्वतीय क्षेत्रों में है। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि उच्च वर्ण के लोग भी माँस भून कर खाते हैं।

सुबह सूर्यरश्मि के प्रकाश से दिखाई पड़ा कि रात में प्रचुर बर्फ गिरी है। कैलाश-शिखर से लेकर चारों ओर के सभी पर्वत-शिखर बर्फ से आच्छन्न हैं।

यहाँ बैठे रहने पर भी जाँमरों के हाथ से बचने का उपाय नहीं है। इस कारण मानससरोवर की ओर अग्रसर होते हुए चलना ही उचित समझा गया। कैलाश-पर्वतमाला को पीछे रख कर विकट पठार के ऊपर से हमलोग क्रमशः "गुरला मान्धाता" की ओर चलने लगे। दाहिनी ओर बरखा ग्राम— केवल ५।६ सफेद मकान मात्र हैं। वह ग्राम विशाल मरुस्थल के भीतर छोटे मरूद्यान के समान है। ऊँचे-नीचे बालू के ढेर, पत्थर नहीं के समान हैं। पैर बालू में धँस जाते हैं। पैरों को खींचकर निकालना कठिन है। दो-एक कदम आगे आये तो मालूम हुआ, मानो कई योजन तैकर आये हैं। छोटी-छोटी कँटीली झाड़ियों से पैर छील जाने के कारण खून निकल आया। घुड़सवारों को ऐसा कष्ट नहीं भोगना पड़ता। तेज आँधी चल रही थी। बालू और

कंकड़ उड़ कर आँख, मुख पर सूई की तरह चुभ रहे थे। आँखें खोली नहीं जाती थीं। मानससरोवर यहाँ से ११ मील है। परन्तु यहाँ का मील हमारे देश की मील से कहीं अधिक है। तिब्बत का मील समय का परिमापक है, दूरत्व का नहीं। हमने अन्दाज से समझ लिया कि घण्टे में डेढ़ मील रास्ता तै किया जा सकता है।

घुड़सवार कुछ आगे चल रहे थे। उनके साथ-साथ चलना मेरे लिए कठिन होने लगा। गाइड के साथ विविध वार्त्तालाप करता हुआ मैं चल रहा था। उससे शारीरिक कष्ट थोड़ा भूल सकता था और तिब्बत, तिब्बतियों के सम्बन्ध में अनेक बातें सुनने को मिल रही थीं।

जिस प्रकार तिब्बत देश विचित्र है, वहाँ के रहनेवाले भी उसी प्रकार विचित्र हैं। उनकी पोशाक, आहार, विहार, सामाजिक रीति नीति और भी अधिक अद्भुत है। तिब्बत का इतिहास पढ़ने से जाना जाता है कि 'स्रों स्रन्-गाम्पु' के राज्य-काल में, सप्तम शताब्दी में वहाँ बौद्ध-धर्म प्रविष्ट हुआ था। उसके पहले सभी तिब्बती हिन्दू धर्म के थे। कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकों के मत से तिब्बत में बौद्ध-धर्म के पूर्व वन-धर्म का प्राधान्य था। वह 'वन-धर्म' हिन्दू या वैदिक धर्म का ही नामान्तर मात्र था। प्राचीन आर्य ऋषि लोग वनों में निवास करते थे और उनके भजन, साधन और प्रचार का स्थान भी वन ही था। इस कारण पाश्चात्य ऐतिहासिकों ने वैदिक धर्म को 'वन-धर्म' नाम दिया है। यद्यपि वे अहिंसक बौद्ध हैं किन्तु माँस ही तिब्बतियों का प्रधान खाद्य है। सभी प्रकार के माँस ही यहाँ तक कि गाय, भैंस, घोड़े आदि तक का माँस वे विशेष रुचि के साथ खाते हैं। शीत-प्रधान स्थान होने के कारण

माँस और मदिरा के बिना उनका काम ही नहीं चलता। एक चमरी गाय मारी गई तो एक परिवार का उससे डेढ़-दो मास का भोजन चल जाता है।

तिब्बत में अभी भी सर्वत्र स्त्रियों के लिए एक से अधिक पति वरण की प्रथा प्रचलित है।❀ एक ही परिवार के दो तीन या उससे अधिक भाई हों तो उनकी धर्मपत्नी एक ही होगी। उससे भाई-भाई का विरोध नहीं होता। परिवारिक झगड़े भी कम होते हैं। हर एक भाई के लिए एक-एक पत्नी की व्यवस्था सुनकर तिब्बती लोग हँसते हैं। धर्मतः और सामाजिक प्रथा के अनुसार बड़ा भाई ही विवाह करता है और सन्तान भी उसी की मानी जाती है। कानून के अनुसार तिब्बत में ज्येष्ठ पुत्र ही चल-अचल सम्पत्ति का मालिक होता है। किन्तु अचल सम्पत्ति के बेचने या हस्तान्तरित करने का अधिकार किसी अन्य को नहीं है। बहु पुरुष की एक पत्नीवाली व्यवस्था के कारण तिब्बत में अविवाहित स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है और व्यभिचार तथा नाना प्रकार की कुत्सित रीतियाँ देश भर में फैली हुई हैं।

तिब्बत पृथ्वी भर में उच्चतम पठार है। इस विशाल पठार के सबसे निम्न स्थान पर दस हजार से लेकर १८५०० फुट तक ऊँचे स्थान में भी

❀ महाभारत के युग में पाँच पांडवों की एक धर्मपत्नी का उल्लेख दिखाई पड़ता है। तिब्बत में उस प्रकार की विवाह-प्रथा बहुत सम्भव है उस समय की भारतीय सामाजिक रीति से बन गयी थी। हिमालय के किसी-किसी स्थान में एक परिवार के सभी भाइयों के लिए एक विवाहित पत्नी ही रहती है। यह प्रथा अभी भी वर्त्तमान है। इस प्रथा का आरम्भ कहाँ से है, इसका निर्णय करना कठिन है।

लोगों का निवास दिखाई पड़ता है। अधिकांश क्षेत्र साल में छः महीने बरफ से ढके रहते हैं। पश्चिम तिब्बत अधिक ऊँचा है। तेरह हजार फुट से कम ऊँचाई का स्थान कहीं नहीं है। तिब्बतियों की पोशाक बहुत ही बेढंगी होती है। वहाँ गर्मी के दिनों में वे ऊन की मोटी पोशाक पहिनते हैं। परन्तु शीतकाल में सभी चमड़े की पोशाक इस्तेमाल करते हैं। कहीं-कहीं ऊन की पोशाक के ऊपर चमड़े की पोशाक भी पहिनी जाती है। बकरे या भेड़ के चमड़े के लम्बे लोम भीतर की ओर रखकर पूरे चमड़े को ही पैजामा या लम्बे कोट की तरह सी लेते हैं। ऊन भीतर की तरफ रहने से पोशाक बहुत गरम रहती है और चमड़ा बाहर की ओर रहने से वह बर्फ और वृष्टि को रोकता है। सिर में भी चमड़े का कनटोप पहिनते हैं। पैरों में घुटने तक ऊन का जूता जिस पर चमड़ा चढ़ाया हुआ रहता हैं। कोट की बांह ऊँगलियों को ढककर कुछ आगे लटकती रहती है। उस चमड़े को वे स्वयं ही इस प्रकार नरम कर लेते हैं कि उससे अच्छी पोशाक तैयार हो जाती है। देखने में भद्दी होने पर भी उससे बहुत आराम मिलता है। सम्पन्न व्यक्तियों की पोशाक में कुछ विशिष्टता भी रहती है।

तिब्बत में शव के संस्कार की रीति भी अत्यंत रोमांचकारी है। उनके धर्मानुशासन में शव-दाह करने की रीति है, किन्तु लकड़ी की कमी के कारण खासकर पश्चिम तिब्बत में बहुत अल्प संख्यक शवों का दाह-कर्म होता है। किन्तु विशिष्ट लामाओं और धनिकों के मृत शरीर का दाह-कर्म दो-एक मास बाद आडम्बर के साथ किया जाता है। और उस श्मशान के ऊपर छोटे-बड़े स्तूप बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त साधारण लोगों के शव के टुकड़े-टुकड़े कर सियार, कुत्ते, गिद्ध आदि के खाने के लिए छोड़ दिये जाते हैं।

उस मृत व्यक्ति के अति निकट सम्बन्धियों को ही उस प्रकार शव-व्यवच्छेद का कार्य करना पड़ता है। लामा पुरोहित उस खंडित मांस को मन्त्रभूत करके मकान के किस ओर कितनी दूर पर और किस शुभ मुहूर्त्त में उसे फेंक देना होगा उसका विधान देते हैं। शव को बर्फ के नीचे गाड़ देने या जल में फेंक देने की रीति भी है। वहाँ के लोगों की धारणा है कि मृतक की आत्मा दाह संस्कार न होने तक अपने शरीर का आश्रय करके ही रहती है। देह का वैसा परिणाम देखकर आत्मा दोनों हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद देते हुए अपने स्थान को चली जाती है। इस विवरण को सुनकर एक सहयात्री ने आतंक प्रकट करते हुए कहा—"अरे दादा, मुझे मरने के बाद तिब्बत न आना पड़े। समूचे शरीर को काट-काटकर सियार-कुत्तों को ये खिलायेंगे, मैं अपनी आँखों से देख नहीं सकूँगा। यहाँ देखता हूं, मरने के पहिले ही चल बसना अच्छा है।"

दिन के बढ़ने के साथ-साथ धूप भी तेज होने लगी। शरीर मानो जलने लगा। दाहिनी ओर डेढ़ मील दूर राक्षस ताल है। उस विशाल ह्रद (lake) का नील जल सूर्य-किरणों से चमक रहा था। इस रावण ह्रद को तिब्बती लोग 'लांगक् छो' कहते हैं और इस झील के जल को अपवित्र और पीने के अयोग्य समझते हैं। यह ह्रद बहुत बड़ा है, लगभग डेढ़ सौ वर्गमील तक फैला हुआ है। इस विशाल ह्रद के बीच में वृक्ष-लता-रहित प्रस्तरमय, कछुए की पीठ की तरह दो टापू हैं—हर एक की लम्बाई लगभग एक मील है। एक का नाम 'लाचा-टू' अर्थात् हंसद्वीप और दूसरे का नाम 'टोप सामरा' है। शीतकाल में जब मानससरोवर और राक्षस ताल आदि तिब्बत के बड़े-बड़े झील जम जाते हैं तब उन जलाशयों के विभिन्न जातियों के अगणित हंस कुछ दिनों के लिए

राक्षस ताल के उन दोनों टापूओं में आश्रय लेते हैं और वहाँ प्रचुर अंडे देते हैं। रावण-ह्रद का जल इतनी कठोर बर्फ में परिणत हो जाता है कि उसके ऊपर से मनुष्य, घोड़े आदि आसानी से आते जाते रहते हैं।

जनश्रुति है कि दशकन्धर रावण समूचे कैलाश पर्वत सहित महादेव जी को लंका ले जाने का संकल्प करके यहाँ कठोर तपस्या कर रहे थे। हजारों वर्षों की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने 'तथास्तु' कह कर रावण को मुँह-माँगा वर दे दिया। किन्तु एक छोटी शर्त रखी कि दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व यदि वह कैलाश के शिखर पर चढ़ सकें तभी रावण का मनोरथ पूर्ण होगा। इधर रावण पिछली रात से ही कैलाश पर चढ़ने लगे, किन्तु रास्ता भूल कर इधर-उधर घूमने के कारण सूर्योदय के पहिले किसी तरह कैलाश के शिखर पर पहुंच न सके। लंकेश्वर विफल तथा अत्यन्त क्रोधित होकर विपुल शक्ति प्रयोग से २० हाथों के द्वारा कैलाश पर्वत को पकड़ कर उसे उखाड़ने के लिए खींचातानी करने लगे। समूचा कैलाश काँप उठा। प्रचण्ड वेग से बड़े-बड़े पत्थर स्थानच्युत होकर भयंकर शब्द करते हुए गिरने लगे। शिव के गणों में भारी हलचल मच गयी। उसे देखकर पार्वतीजी ने भयभीत होकर देवाधिदेव से पूछा "बात क्या है?" नीलकंठ सभी जानते थे। उन्होंने थोड़ा हँस कर दाहिने पैर के अंगूठे से कैलाश को थोड़ा दबा दिया। उस दबाव से भीषण आर्त्तनाद करते हुए रावण मूर्छित हो गये। कैलाश पर्वत को उखाड़ने के लिए प्रबल शक्ति प्रयोग करने के कारण रावण के शरीर से बहुत अधिक पसीना निकला और उसी से इतना बड़ा ह्रद बन गया।

प्रयत्न व्यर्थ होते देख रावण पुनः तीव्र तपस्या में व्रती हुए। एक हजार वर्ष की उग्र तपस्या से परितुष्ट होकर आशुतोष ने रावण को पुनः दर्शन देकर

कहा—"मैं तुम्हारे शौर्य, वीर्य तथा आन्तरिकता से अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। जब तक कैलाश वर्त्तमान रहेगा तब तक तुम्हारा नाम भी अक्षय होकर रहेगा। आज से इस ह्रद का नाम रावण ह्रद होगा।"

राक्षस ताल के तट पर एक रात रहने की इच्छा थी, किन्तु जाँमरों के भय ने उस इच्छा को पूर्ण होने नहीं दिया। हमलोग सीधे मानस सरोवर की ओर चलने लगे। आज हमारा दल संघबद्ध होकर नहीं चल रहा है। सभी अस्तव्यस्त हैं। कँटीली झाड़ियों के भीतर से किसी तरह आगे चलना ही सबका उद्देश्य है। घोड़े और खच्चर क्रमशः बेकाम और बेकाबू हो गये। बहुत दिनों पहिले हमलोग गर्ब्याङ्ग छोड़कर चले आये हैं। तिब्बत में घास नहीं के बराबर है। भूख की ताड़ना से बेचारे कँटीली झाड़ियाँ ही खाने लग गये। वे किसी तरह जीना चाहते हैं। कठोर शासन से भी उन्हें संयत और शृंखलाबद्ध नहीं किया जा सका। आत्म-रक्षा की चेष्टा से वे बेचैन हो गये हैं। हम पुण्यकर्त्ताओं के दल ही तो इन मूक जन्तुओं के इतने दुःख के कारण हैं!

सामाजिक मनुष्यों के जीवन में भी शायद ऐसा होता है। जीवन की गति जब सहज और सरल रहती है तब मनुष्य सभी अनुशासन मानकर चलते हैं, किन्तु अभाव का भीषण निष्पेषण, बलवान का निर्यातन और स्वार्थियों के अत्याचार उसे असंयत और उच्छृंखल बना देते हैं। तब वह उचित-अनुचित सत-असत के बन्धनों को निर्मम हस्त से तोड़ डालने में नहीं हिचकता। आत्म-रक्षा की प्रबल प्रचेष्टा तीव्र नदीप्रवाह की तरह सब बाधा-विघ्नों को बहा ले जाती है। जीने की सर्वजयी इच्छा कोई बाधा नहीं मानती।

क्रमशः 'गंगाचू' जलधारा का क्षीण प्रवाह पार कर सब लोग चल रहे हैं। राक्षस-ताल मानससरोवर की अपेक्षा बहुत नीचे अवस्थित है। मानस का

अतिरिक्त जल स्रोत के रूप में प्रवाहित होकर राक्षस-ताल के अपवित्र जल के साथ आ मिला है। उस प्रवाह की जलधारा ही गंगाचू है। वह २०/२५ गज चौड़ी और कुछ कम गहरी है। मानस का जल घट जाने पर गंगाचू एकदम सूख जाती है। दोनों ह्रदों की दूरी दो मील मात्र है। गंगाचू के पास कुछ गरम जल के फौवारे भी हैं।

दिन के साढ़े दस बज गये। छोटी चढ़ाई के ऊपर उठ कर कुछ ऊँचे स्थान पर मैं दम ले रहा था। दिखाई पड़ा दूर से तीन घुड़सवार राक्षस-ताल की ओर से बड़ी तेजी के साथ घोड़े दौड़ाकर हमारी ओर आ रहे हैं। उनके अश्व-संचालन का ढंग देखकर मालूम हुआ कि वे पक्के सवार हैं। एक ने पूछा—"जाँमर तो नहीं? दिन दहाड़े जाँमर! इन पर ध्यान रखना आवश्यक है।" गाइड वहीं खड़ा हो गया। डाक्टर दे के आ पहुंचते ही उनकी दूरबीन लेकर देखा गया। क्रमशः सब लोग एकत्रित हुए। गाइड का मुँह सूख गया, उसने कहा ठीक समझ में नहीं आता। ये लोग कौन हैं। बिना जाने आगे चलना ठीक न होगा।

सभी लोग घबड़ा उठे। बन्दूकें भर ली गयीं। कीचखम्पा कार्तूस की पेटी लेकर झाड़ियों की आड़ में छिपकर धीरे-धीरे आगे बढ़ गया। सवार इधर ही आ रहे थे। घोड़े तेजी से आने लगे। थोड़ी देर के बाद कीचखम्पा ने दूर से चिल्ला कर उनसे कुछ पूछा। वे भी जवाब देकर गाइड के पास आ गये। उनसे गाइड को हँसते हुए बातचीत करते देखकर समझ में आया कि 'मित्र पक्ष' है। सवार नीचे से सीधे मानस की ओर चले गये। गाइड ने कहा "ये आदमी परिचित दुनिया हैं। दूसरे यात्री दल के साथ राक्षस ताल के किनारे पड़ाव डाला है। अब मानससरोवर का जल लेने जा रहे हैं"।

जी में जी आया। अब हमारे साहसी सह-यात्रियों ने अपनी-अपनी वीरता का बखान आरम्भ कर दिया। अरुण बाबू ने कहा—"तीनों को मैं अकेला ही खतम कर देता।" ताराप्रसन्न वावू की वीरता भी कम नहीं थी। उन्होंने कहा—"बेचारे मौत के मुँह से बच गये और थोड़ा इधर आते तो मैं मार देता।"

सब लोग हल्ला मचाते हुए आगे चल रहे थे। धूप तेज थी। पिछली रात की कड़ी ठंढक अब निर्मम गर्मी में बदल गयी। लू-सी गरम हवा बह रही थी। क्रमशः हमलोग मानस के किनारे आ खड़े हुए। क्या यह स्वप्न है? कैसी अनिर्वचनीय सौन्दर्य-गरिमा! सामने दूर पर दृष्टि के अन्तिम छोर तक निर्मल अगाध जलराशि ही दिखाई देती थी। तिब्बत के पठार के १५००० फुट ऊँचे स्थान पर हम खड़े हैं या समुद्र तट पर कहना कठिन होता था। विपुल विस्तृति! ऊपर सुनील आकाश की आवेष्टनी—छोटी-छोटी लहरों के साथ सूर्य-किरणों का अपूर्व मिलन! मध्याह्न सूर्य की उज्ज्वल रश्मि से समूचा सरोवर चमक रहा था। मानो आनन्द मिश्रित रोमांच हो रहा हो। बाधा न होने से पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दूर-दूर तक अबाध दृष्टि दौड़ती चलती है। सामने क्षितिज के उस पार गुरला के आकाश छूने वाले धूसर वर्ण के शिखर के साथ मिल जाने के कारण एक क्षीण रेखा सी प्रतीत हो रही थी। उस विपुल अवकाश के भीतर मैं आत्मस्थ होकर खड़ा रह गया! जीवन की सभी सीमायें असीम के भीतर लुप्त हो गयीं! यह आत्मविस्मृति कभी समाप्त न हो, यही हृदय की कामना थी!

कीचखम्पा के निर्देश से सरोवर की रेती पर पड़ाव डाला गया। सभी यात्रियों ने पवित्र जल का स्पर्श किया। सैकड़ों राजहंस सरोवर के तीर पर

बैठे थे। निस्तब्ध मध्याह्‌न में हमारे दल के एकाएक ग्रा पड़ने से तन्द्राच्छन्न मराल कलध्वनि करते हुए भय से उड़ कर सरोवर के जल में जा गिरने लगे। अनेक जाति के अगणित हंस अपने बच्चों को लेकर आनन्द से जल में तैर रहे थे। वे भी भय से दूर हट गये। कुछ विश्राम के बाद प्रायः सभी यात्री सरोवर के जल में नहा आये। बहुत ही तृप्ति मालूम हुई।

मानससरोवर की ऊँचाई प्रायः १५०९८ फुट (मतान्तर में १४९५० फुट) है। जल बर्फ के समान ठंढा है। परन्तु गौरी कुण्ड के स्नान की तुलना में यह स्नान बहुत आरामदायक कहा जा सकता है। हमने सोचा था, समूचा सरोवर ही गौरी कुण्ड की तरह बर्फ में ढका होगा। वैसा न होकर नील जल-राशि देखकर मैं आनन्द से निर्वाक् हो गया। स्नान के अनन्तर सरोवर के तीर पर बैठ कर पूजा तथा स्त्रोत्रादि पाठ समाप्त करने में ढाई बज गये। तबतक मध्याह्‌न का ग्रीष्म बसन्त में रूपान्तरित हो गया। आज सभी के हृदय में अनन्त आनन्द उमड़ने लगा। बहुत दिनों के इच्छित मानससरोवर का दर्शन कर आज चित्त-सरोवर में आनन्द हिलोरें लेने लगा। किसी को विश्राम की इच्छा नहीं है। भोजन आदि के बाद सभी यात्री सरोवर के किनारे-किनारे टहलने लगे। रंग-विरंगे छोटे-बड़े अनेक पत्थर के टुकड़े तीर की ढाल पर पड़े हुए थे। लोग कहते हैं कि मानस के तीर में पारस पत्थर मिलता है। स्वामी दुर्गात्मानन्द अक्लान्त भाव से उसी को खोजते फिरते रहे। समूचे तीर पर न जानें कितने लाख विविन्न रंग के पत्थर पड़े थे।

तिब्बती और भूटिया घोड़ावाले सरोवर के किनारे-किनारे घूम-फिर कर बहुत सी मछलियाँ बटोर लाये। छोटी बड़ी वहुत सी मछलियाँ थीं। जोर से

हवा चलने पर सरोवर में सागर के समान लहरें उठती हैं और लहरों के साथ मछलियाँ तीर पर उठ जाती हैं किन्तु उतर नहीं सकतीं, मर जाती हैं। सुना, ये मछलियाँ ही मानस सरोवर का प्रसाद है। उन्हें वे प्रसाद रूप से घर ले जायेंगे। उन मछलियों को सूखा कर चूर्ण बनायेंगे और थोड़ा-थोड़ा करके साल भर तक प्रसाद खायेंगे। इस प्रसाद के महत्त्व का अन्त नहीं है, सब प्रकार की विपत्तियों को दूर करता है। यहाँ तक कि बाघ के मुँह से भी इसके द्वारा मनुष्य बच जाता है। उस मछली-प्रसाद का चूर्ण वे पशुओं को भी खिला देते हैं जिससे रोग या मरने का भय न रहे।

धूप आराम-दायक थी। मन शान्त था। आज देह-मन में नयी शक्ति और अपरिसीम प्राण-स्पन्दन लौट आया। आज कोई क्लान्ति नहीं है, मानो अतीत विस्मृति के कुहरे में लुप्त हो गया है। गत कुछ सप्ताहों के दुःख-कष्टों की स्मृति मानो किसी अज्ञात देवता के आशीर्वाद से एकदम मिट गई है। कैलाश इतना दुर्गम ! इतना दुर्गम होने के कारण ही तो उस विराट का चरण-तल इतना महिमामय है ! अपने मन में तल्लीन होकर मैं बैठा हुआ था। सामने अन्तिम सूर्य की किरणों के पड़ने से मानस की नील जलराशि पर सुनहली आभा प्रतीत होने लगी। पास में तथा दूर पर चारों ओर अगणित शुक्ल-वर्ण मराल जल में तैर रहे थे—मानो सहस्रों श्वेत कमल मानस के जल में खिले हुए हैं। आंधी आयी, ऊँची-ऊँची लहरें हिलोरे लेने लगीं। वे लहराते हुए तीर पर आकर जोर से पछाड़ खाने लगीं। इतने ऊँचे पर ऐसी असीम जलराशि बिना देखे कल्पना में भी नहीं आती। सृष्टि की विचित्रता की कैसी अपूर्व महिमा थी, चारों ओर पर्वत-मालायें विराजमान हैं। क्षितिज के अंतिम सीमा पर आकाश और सरोवर का जल मिल गये से थे। इसका अन्त कहाँ है कुछ भी समझ में

नहीं आया। क्षरण-क्षरण पर चित्रपट सा परिवर्त्तन ! नई-नई अनोखी शोभा ! काश, कोई शिल्पी इसकी करण मात्र भी रचना कर सकता हो। पतनोन्मुख सूर्य की स्वर्णच्छटा समूचे सरोवर में फैल गयी है। लाल आकाश के नीचे सोने का सरोवर ! निर्जन मानस के तीर पर मैं परिपूर्ण हृदय से देख-देखकर मुग्ध होने लगा। और भी अधिक देखने की इच्छा होती थी। जीवन में फिर कभी ऐसा दृश्य देख नहीं सकूँगा। रे मन, अपने मानसपट पर स्वप्न-लोक का चित्र खींच ले, ऐसी ही इच्छा होती थी। इस मानससरोवर में सम्भवतः प्रतिदिन ही ऐसे अपूर्व सौन्दर्य का विकास होता है।

प्रकाश की गरिमा क्रमशः लुप्त होने लगी। अस्तगामी सूर्य दिक्-सीमान्त में शिवानी के ललाट पर मंगल सिंदूर विन्दु के समान दिखाई पड़ने लगा। विदाई की वंशी पूरी रागिनी सी आकाश, वायु और मेरे समूचे हृदय में झंकृत होने लगी। क्रमशः सायंकाल की अन्तिम स्वर्ण-रेखा अन्धकार में लुप्त हो गयी। उन्मुक्त आकाश में कृष्ण दशमी का अन्धकार गाढ़ा होने लगा। अगणित नक्षत्र असीम अनन्त आकाश में टिमटिमाने लगे, मानो लाखों देव-बालक अवाक् विस्मय से मानस का अनुपम सौन्दर्य देख रहे हैं।

मानससरोवर की परिधि प्रायः ६० मील है। किसी-किसी स्थान की गहराई लगभग ३०० फुट तक है। २०० वर्ग मील आयतन के इस विशाल सरोवर के चारों ओर तिब्बती लामाओं की आठ गुम्फायें हैं। तिब्बती लामा या डाबा लोग बारह महीने उन मठों में रहते हैं। पश्चिम में गोछल गुम्फा, उत्तर-पश्चिम में चिउ गुम्फा, उत्तर में चारकिप, लां पोना व पुनारि गुम्फा, पूरब की तरफ सोरालां और दक्षिण में इयां गो और थूगुलु या थोकर गुम्फा है।

दिसम्बर मास के अन्तिम भाग में मानस के जल का जमना आरम्भ हो जाता है और सात-आठ दिनों के भीतर समूचे सरोवर का ऊपरी भाग आठ-दस फुट मोटा होकर जम जाता है। उस बर्फ के नीचे निर्मल अगाध जल रहता है। ऊपर की बर्फ ऐसी स्वच्छ रहती है कि किसी-किसी स्थान पर बर्फ के भीतर से नीचे के जल में चलने वाली मछलियाँ साफ दिखलायी पड़ती हैं। राक्षस ताल का जल भी प्रायः उसी समय जमकर कठिन बर्फ में परिणत हो जाता है। उस समय उस पर से जीवजन्तु आते जाते रहते हैं। किन्तु मानस का बर्फ कहीं-कहीं फट कर नीचे का जल फौवारे के रूप में वेग से ऊपर उठ आता है। संकोचन और प्रसारण के फलस्वरूप मानस की बर्फ में अक्सर ऐसे विस्फोट हुआ करते हैं जिससे समस्त तीर-भूमि, पहाड़ की तरह बर्फ से ढक जाती है। उस विस्फोट के समय पन्द्रह-बीस हाथ चौड़ा बर्फ खंड भी वेग से बहुत दूर तक निक्षिप्त होता है। इस कारण बर्फ के जम जाने पर शीत काल में कोई भी मनुष्य मानस के पास आने का साहस नहीं करता। मानस और राक्षस ताल की ऊँचाई का भेद बहुत मामूली है और दोनों सरोवर पास-पास अवस्थित हैं। परन्तु राक्षस ताल की बर्फ में कभी ऐसा विस्फोट नहीं होता। भू-विद्या-विशारदों के मत से तथा तिब्बत में जनश्रुति है कि मानससरोवर के नीचे अनेक उष्ण प्रस्रवण है। इस कारण मानस में उस प्रकार के विस्फोट हुआ करते हैं। तिब्बतियों का विश्वास है कि सरोवर के जल में एक रमणीय मन्दिर है। उसमें एक भयंकर देवता रहते हैं। वह देवता ही बर्फ के भारी-भारी टुकड़ों को ऊपर फेंक देते हैं।

अनेक यात्री भी कैलाश परिक्रमा की तरह इस पवित्र सरोवर की भी परिक्रमा भरते हैं। प्रायः उसमें पाँच दिन का समय लगता है। हमारी भी इच्छा

थी कि परिक्रमा देंगे। किन्तु कई कारणों से खास कर जानवर इतने कमजोर हो गये थे कि उनकी ओर देख कर हमें उस संकल्प का परित्याग कर देना पड़ा।

प्राचीन समय के अनेक प्रसिद्ध कवियों ने मानससरोवर के वर्णन में वहाँ खिले हुए कमलों का उल्लेख किया है। महाकवि कालिदास ने तो मानस-सरोवर को स्वर्ण कमलों की खान बताया है। उनके मेघदूत काव्य में कैलाश के वर्णन में (उत्तर मेघ तृतीय श्लोक) दिखाई पड़ता है—"उस अलकापुरी (कैलाश) में सभी वृक्ष, षड्ऋतुओं में तत्कालीन विकसित पुष्प खिले रहते हैं और उन्मत्त भ्रमर निरन्तर उन पुष्पों पर बैठ कर मधुर गुंजन ध्वनि करते रहते हैं। सरोवर सदा खिले हुए कमलों के द्वारा शोभित होते हैं। हंस युगल हर समय उन कमलों का परिवेष्टन करके परम शोभा सम्पादन करते हैं। वहाँ के पालतू मोर निरन्तर आनन्द से स्वर-विस्तार करते हैं। उनके रंग सदा ही नयनों के प्रीतिकर हैं।" अन्यत्र 'मन्दार तरु' का उल्लेख भी है।

महानिर्वाण तन्त्र के आरम्भ में लिखा है—"पर्वतराज हिमालय का कैलाश-शिखर बहुत ही रमणीय, नानाविध रत्नों से शोभित, अनेक वृक्ष-लताओं से पूर्ण, विविध पक्षियों के कलरवों से युक्त, छहों ऋतुओं के कुसुमों से आमोदित, सुमनोहर, शीतल, सुगंध मंद वायु के प्रवाह से युक्त है। ऐसे सुन्दर कैलाश पर्वत पर शिव और पार्वती विराजमान हैं।"

इन वर्णनों से लोगों की यह धारणा हो गई है कि कैलाश और मानस-सरोवर वृक्ष-लता-फल-फूल-कमल-पशु-पक्षि-परिशोभित स्थान है। कैलाश की

जितनी ऊँचाई है उसे देखकर भू-तत्त्व-विशारदों के मत में वहाँ वृक्ष-लताओं, विशेषतया सुगन्धित पुष्पों का उत्पन्न होना एकदम असम्भव है। हम लोगों ने भी यह देखा। उन वर्णनों में सम्भवतः कवि-कल्पना या वर्णनों के अलंकार का समावेश हुआ है। क्योंकि बिना कमल के सरोवर की शोभा अपूर्ण रह जाती है।

मानससरोवर में कमल खोजते हुए हमारी आँखें थक गईं। किन्तु कहीं भी कमल दल तो दूर की बात है कुमुद फूल भी नहीं दिखाई पड़ा। मानस में असंख्य मराल हैं, किन्तु कमल नहीं हैं। गत शत वर्षों के अनेक पर्यटकों के वर्णनों में भी मानससरोवर में कमल का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। जो हुनिये या स्थानीय तिब्बती लामा बारहों महीने मानससरोवर के तट पर निवास करते हैं उन लोगों से हमने खोज की है परन्तु उस सरोवर में कभी किसी ने कमल नहीं देखा। नाना जाति के सिवार हैं और उनमें सफेद छोटे-छोटे फूल खिलते हैं।

मानससरोवर में छोटे-बड़े विभिन्न रंगों के बीस-पचीस विभिन्न जातियों के अगणित हंसों को सब लोगों ने देखा था। राजहंस बहुत ही बड़े हैं। छोटे-छोटे बच्चों को साथ लिये घने सिवारों के भीतर खाने की वस्तुओं की खोज करते हुए वे आनन्द से तैरते रहते हैं। इस सरोवर में अनेक प्रकार की मछलियाँ भी हैं। 'गामा' जाति की एक मछली यहाँ प्रचुर हैं—देखने में वह प्रायः छोटे रेहू की तरह होती है।

मानससरोवर का उल्लेख स्कन्दपुराण के अन्तर्गत मानस-खंड में दिखाई पड़ता है। दत्तात्रेय ऋषि ने मानस के वर्णनों में लिखा है—"मैंने मानस-

सरोवर का दर्शन किया है । वहाँ शिवजी राजहंसों के रूप से विराजमान हैं ❀ ।

"यह सरोवर ब्रह्मा के मन से उद्‌भूत होने के कारण इसका नाम मानस-सरोवर हुआ है । वहाँ महादेव तथा अन्यान्य देवता निवास करते हैं । इसी सरोवर से सरयू, कर्णाली (तिब्बती नाम मापचू), शतद्रु तथा अन्यान्य अनेक नद-नदियाँ निकली हैं । जो कोई मनुष्य इस सरोवर की मिट्टी का स्पर्श करेगा और इसके पवित्र जल में डूब कर स्नान करेगा उसे शिवलोक की प्राप्ति होगी और शत जन्मों का पाप दूर हो जायगा । यहाँ तक कि जो लोग मानस-सरोवर का पवित्र नाम जपते हैं उन्हें भी ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । इस सरोवर का जल मुक्ता की तरह निर्मल है ।··· (जगत् में) ऐसा कोई पर्वत नहीं है जिससे हिमालय की तुलना हो सके । क्योंकि इसी पर्वत में कैलाश और मानससरोवर विद्यमान हैं । प्रभात की सूर्यकिरण के स्पर्श से जिस प्रकार ओस सूख जाती है उसी प्रकार हिमालय के दर्शन मात्र से मनुष्य पाप-मुक्त हो जाते हैं ।" दत्तात्रेय ऋषि मानससरोवर गये थे । इस कारण उन्होंने मानससरोवर में कमल का वर्णन नहीं किया ।

❀ शिवजी ने राजहंस का रूप धारण कर लिया था—अति प्राचीन काल से इस धर्मविश्वास के कारण ही सम्भवतः तिब्बत के निकट हंस अवध्य है और इस पौराणिक तथ्य पर विश्वास रखने के कारण ही तिब्बत में जन-श्रुति है कि मानससरोवर के भीतर देवता का निवास है । किसी समय तिब्बत भारत का अंग था । और तिब्बती लोग हिन्दू धर्मावलम्बी थे । इसके प्रमाण-स्वरूप इस प्रकार के धर्म-विश्वास और जन-श्रुति का उल्लेख किया जा सकता है ।

स्कन्द पुराणान्तर्गत मानसखंड के वर्णन से ऐसा लगता है कि पौराणिक युग में तिब्बत, कम-से-कम तिब्बत के जिस अंश में कैलाश और मानस-सरोवर विद्यमान हैं, वह भारत का ही एक अंश था। तिब्बतियों के साथ घनिष्ठ रूप से मिलकर और उनके संगीत, नृत्यकला, शिल्पकला, कलाविद्या, सामाजिक रीतिनीति और धर्मभाव आदि के साथ घनिष्ठ रूप से परिचित हो कर हम लोगों ने देखा है कि तिब्बत में अभी भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गंभीर छाप विद्यमान है। इन प्रमाणों से निःसन्देह कहा जा सकता है कि एक समय तिब्बत भारत के ही अन्तर्गत था।*

तिब्बत से चार प्रधान नद-नदियाँ निकल कर नदीपूर्ण भारतभूमि को शस्य-श्यामल कर रही हैं। इन चार नदियों के उत्पत्तिस्थान के विषय में आधुनिक भौगोलिकों में मतभेद है। प्राचीन समय से ही यह प्रसिद्धि चली आ रही है

* अनेक पुराण, तन्त्र और महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि भारतवर्ष प्राचीन काल में विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता और अश्वक्रान्ता—इन तीन क्रान्ताओं में विभक्त था। विन्ध्य पर्वत से पूर्व यवद्वीप तक (वर्त्तमान ब्रह्मदेश सहित) सभी देश विष्णुक्रान्ता, विन्ध्य से उत्तर तिब्बत, मंगोलिया आदि देश तक रथक्रान्ता और विन्ध्यपर्वत से पश्चिम फारस, मिस्र, रोडेशिया आदि देश अश्वक्रान्ता नाम से प्रसिद्ध था। वर्त्तमान के अनेक मनीषियों की गवेषणा से भी अतीत के बृहत्तर भारत की उक्त भौगोलिक अवस्थिति प्रमाणित होती है। और किसी-किसी ऐतिहासिक के मत से वृहत्तर भारत की हिन्दू जन संख्या लगभग दो अरब (दो सौ कोटि) थी तथा उस समय सर्वत्र एकमात्र सनातन वैदिक धर्म का ही प्राधान्य था।

कि सरयू, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु और शतद्रु ये चार विशाल नदियाँ परम पवित्र मानससरोवर (तिब्बती नाम छो-माभंग्) से उत्पन्न हैं और इसी कारण इन चार नदियों को हिन्दू लोग पवित्र समझते हैं। वर्त्तमान समय में कुछ पर्यटक और भूतत्त्वविद् यही प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं कि इन नदियों की उत्पत्ति मानससरोवर से नहीं है, बल्कि मानस के निकट के विभिन्न स्थानों से ये उत्पन्न हैं। उनकी युक्ति किसी प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान या सुनिश्चित गवेषणा के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है। उनमें कोई-कोई यह भी स्वीकार करते हैं कि मानससरोवर के भूगर्भ-निःसृत स्रोत के साथ उन चार नदियों की उत्पत्ति-स्थान का संयोग है।

तिब्बतियों के कैलाश-पुराण "कांबि कारछाक्" में लिखा है—चार बड़ी-बड़ी नदियों का उत्पत्तिस्थान है 'छो-माभंग्' अर्थात् अजेय मानस-सरोवर है। लांचेन खाम्बाव अर्थात् हस्ति-मुखाकृति नदी (शतद्रु) इस सरोवर के पश्चिम की ओर है। सिंगी खाम्बाव अर्थात् सिंह-मुखाकृति नदी (सिन्धु) उत्तर की ओर, 'टामचोक खाम्बाव' अर्थात् अश्व-मुखाकृति नदी (ब्रह्मपुत्र) पूर्व की ओर तथा 'मापचा खाम्बाव' अर्थात् मयूर-मुखाकृति नदी (कर्णाली) दक्षिण की ओर प्रवाहित हैं।"

स्कन्दपुराण में प्रथम उल्लेख दिखायी पड़ता है कि सरयू और शतद्रु ये दो नदियाँ मानससरोवर से निकली हैं। मानससरोवर के दक्षिण तीर पर थगलु या थोकर-गुम्फा की दीवार में एक पत्थर पर खुदा हुआ है—चार बड़ी और चार छोटी नदियाँ मानससरोवर के भूगर्भ मार्ग से निकली है।

इन भारतीय और तिब्बती पौराणिक उल्लेखों से मालूम होता है कि सरयू, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु और शतद्रू इन चार नद-नदियों का यथार्थ उत्पत्ति-स्थान

मानससरोवर ही है। हजारों वर्षों की भौगोलिक परिस्थिति के बहुल परिवर्त्तनों के फलस्वरूप आजकल इनके उत्पत्तिस्थान मानस के निकट के अन्यान्य स्थान प्रतीत होते हैं। हमने पहले ही कहा है कि मानस की परिधि दो सौ वर्ग मील है। इसकी गहराई का परिमाण अभी ठीक-ठीक नहीं जाना गया है (तीन सौ फुट तक पता लगा है)। उतने ऊँचे पठार के ऊपर इतने बड़े जलाधार के दबाव से भूगर्भ में उस प्रकार के जल के निर्गमन-पथ का रहना बहुत ही विज्ञान-सम्मत है। नये आविष्कृत और स्थिरीकृत उत्पत्ति-स्थान मानस की अपेक्षा बहुत नीचे हैं। और वे उत्पत्ति-स्थान मानससरोवर से बहुत दूर भी है। इस कारण निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उन उत्पत्तिस्थानों के साथ भूगर्भ-पथ से मानस के जल का संयोग है और इस समय भी मानस का जल ही उन नदियों का पोषण कर रहा है।

× × ×

इधर से आज हमारी यात्रा का अन्तिम दिन है। कैलाश और मानस-सरोवर का दर्शन ही हमारा मुख्य उद्देश्य था। उन दोनों का दर्शन हो गया—परिपूर्ण दर्शन। बहुत दिनों के पथरेखारहित पथ-यात्रा के वेदनामय इतिहास की ओर अब घूमकर देखने की इच्छा नहीं होती। आज दृष्टि विराट और असीम की ओर लग गयी है। मंगलमय की कृपादृष्टि ने हृदयमन्दिर में आनन्द-प्रदीप जला दिया है। अब मानससरोवर कल्पना की वस्तु नहीं—प्रत्यक्ष है, अब तिब्बत में नहीं, बाहर नहीं, मेरे मन-मानस में है। अपने मन में—अन्तर में ही अब मैं मानस को देख रहा हूँ। रात भी बहुत आनन्द से बीत गई।

असाढ़ अट्ठाइस, गुरुवार। बहुत तड़के उठ कर यात्रा का आयोजन कर लिया गया। गत रात्रि में बहुत ठंढक थी। दिन और रात के भीतर ताप का पार्थक्य लगभग ७०° डिगरी था। अब मन केवल विचार ही करता था कि यात्रा का यह अन्त है। यथार्थ में, तीन-चार दिन के बाद तकलाकोट से ही हमारा ठीक-ठीक लौटना आरम्भ होगा। झटपट मानस में स्नान कर लिया। मानस को श्रद्धा से प्रणाम किया। बिदाई माँगी, बिदाई ! हाँ बिदाई !!

सरोवर के किनारे-किनारे मील भर आने के बाद अगणित मच्छरों ने हमारे ऊपर यकायक धावा बोल दिया। टिड्डी दल की तरह वे आकाश में फैल गये—बड़े-बड़े मच्छर ! सहजात संस्कार का कितना तीव्र प्रभाव था, हमें पाकर निरन्तर काटते हुए हमें परेशान कर डाला था। वे किसी तरह हमें छोड़ना नहीं चाहते थे। लगभग एक मील तक हमलोगों पर धावा करते हुए आये। डाक्टर दे कुछ मच्छरों को पकड़ कर देखते ही चौंक कर बोल उठते—"अरे दादा, ये तो सत्ययुग के मच्छर हैं। देखा, कितने बड़े-बड़े हैं ? तो, मलेरिया के मच्छर नहीं हैं।" पन्द्रह हजार फुट के ऊपर, जो स्थान छः महीने तक बर्फ के नीचे दबा रहता है, वहाँ भी वे कैसे जीवित रहते हैं ?—अवश्य ही वे कुछ यौगिक प्रक्रिया जानते हैं—कुम्भक करके पड़े रहते हैं !

शान्त अरुणोदय ! सारे मानस के नील जल में रक्तवर्ण मंगल किरणों का विपुल सिहरन देखकर मुग्ध होना पड़ता है। दूसरी ओर गुरला का शुभ्र किरीट सूर्य-रेखा के स्पर्श से अनुपम शोभा धारण किये हुए है। हमारे आगमन से भयभीत होकर सैकड़ों हंस कलध्वनि करते हुए निस्तब्ध मानस में उड़कर गिर रहे थे। मनोरम प्रभात ! चारों ओर रोमांचकर शोभा का

निःशब्द समारोह ! उस ध्यान-मौन प्रभात में निर्जन मानस के किनारे-किनारे लगभग तीन मील पथ हमलोग चले आये। पर्वत शिखरों में स्निग्ध सूर्य-किरणें चमक रही थीं। चारों दिशायें मानो प्राणमय हो उठीं ! मानस के किनारे थोड़ी दूर पर और एक छोटा सरोवर था—प्रायः सूखा। खड़िया मिट्टी की तरह उसकी पेंदी में सफेद मिट्टी थी। कीचखम्पा ने कहा—"सोडा-झील है।" अपने थैले में भर कर वह बहुत-सा सोडा ले आया।

सोडा-झील पार कर थोड़ी दूर आगे निकल आये। दूर पर दिखाई पड़ा—बहुत से हथियारबन्द तिब्बती आ रहे हैं। हमें उधर ही जाना है। भय से सभी के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हमें खड़े होने के लिए कह कर कीचखम्पा आगे निकल गया। खबर लेकर लौट आते ही उसने 'मार्च आर्डर' दिया। बन्दूकधारी तिब्बतियों का दल तकलाकोट मण्डी में व्यापार के लिए जा रहा है। जाँमरों के भय से वे भी सशस्त्र चल रहे हैं। सुन कर जी में जी आया। तिब्बत में पग-पग पर विपत्ति की संभावना है।

मानससरोवर को पीछे छोड़कर हमलोग आगे चल रहे थे। पहाड़ के पास कँटीली 'डामा झाड़ियों' के भीतर से बड़े-बड़े खरहे दौड़कर भाग रहे थे। जंगली हिंसक कुत्तों का एक दल हमारी ओर लोलुप दृष्टि से कुछ क्षण देखते रह कर झाड़ियों में गायब हो गया। क्रमशः राक्षस ताल और मानससरोवर को दोनों ओर रखकर पथ की रेखा आगे चली गई है। दोनों ओर ही सुविशाल सरोवर–सुनील जलराशि है। एक शैल-शिरा के ऊपर उठते ही दिखाई पड़ा—दूर पर परम महिमा मंडित कैलाश शिखर ! शुभ्र सूर्य-करोज्ज्वल निर्मल नील आकाश के चन्द्रातप के नीचे के चिर दुर्लभ रजत शुभ्र किरीट कैलाश और दोनों ओर सुविशाल दो सरोवर ! वह शोभा अनिर्वचनीय थी।

अति विस्तृत उच्च कैलाश पर्वतमाला की पटभूमि के नीचे एक ओर राक्षस ताल और दूसरी ओर मानससरोवर, बीच में विशाल पठार! ऐसे अनुपम रूप का समावेश इस स्थान के सिवाय और कहीं नहीं दिखायी पड़ता। मुझे ऐसा लग रहा था, मानो यह महाशिव का विराट् शरीर है। परम पवित्र कैलाश शिखर देवाधिदेव का मस्तक है और विशाल दोनों ह्रद उनके सजल नेत्र। संसार के अनन्त दुःखों से विगलितचित्त परमदेवता विश्वमानवों के प्रति सकरुण दृष्टि डालते हुए विराजमान हैं—'स्वे महिम्नि'।

धूप की तीव्रता क्रमशः बढ़ने लगी। आज बहुत दूर जाना पड़ेगा। पथ भी अति दुर्गम है। कहीं ऊँचे-नीचे पठार के ऊपर से, फिर कहीं गिरिखात के सँकरे भयजनक पथ से या शैल-शिरा लाँघकर पर्वत के तने से सटकर हमलोग चल रहे थे। इधर दिन के बारह बज गये। परन्तु पथ का अन्त नहीं है। गाइड ने कहा—अब दो मील से ज्यादा नहीं है। उसका अर्थ यह है कि अभी डेढ़ घंटे चलना ही होगा।

मानससरोवर और राक्षसताल हमारी दृष्टि से ओझल हो गये। कैलाश बीच-बीच में दिखाई पड़ता है। डेढ़ बजे हमलोग अधमरी अवस्था में रेजांग नामक स्थान में आये। तम्बू लगाये गये। रसोई का प्रबन्ध होने लगा। यह स्थान एक गिरि-खात के बीच में है। चारों ओर ऊँचे पर्वत शिखर, एक बड़ा झरना कल-कल ध्वनि से बहता जा रहा है। सर्वत्र एक भयजनक निःस्तब्धता ने हमें मानो घेर रखा है। तम्बू लगाने के थोड़ी देर बाद ही पीछे के पर्वत से मनुष्य की सीटी देने का शब्द सुनाई पड़ा। झट गाइड ने दो घोड़े वालों को उस शब्द की ओर चुपचाप चले जाने का आदेश दे कर घोड़ों को पास ही रखने का प्रबन्ध कर दिया।

रोजांग से थोकड़ मंडी सात-आठ मील दूर है। इससे पहले उस मंडी में जाँमरों के उपद्रव की खबर मिली थी। इस जन-शून्य स्थान में तिब्बतियों के सीटी देने का शब्द सुन कर कीचखम्पा डर गया था। आधे घंटे के बाद ही हमारे दो आदमियों ने आ कर खबर दी कि इस पर्वत के पीछे ही एक दल तिब्बती, घोड़े-जब्बू आदि जानवरों को चरा रहा है और उसके कुछ नीचे पर्वत के तलदेश में बहुत से काले तम्बू हैं, आदमी भी हैं। कीचखम्पा ने भय के स्वर से कहा—'जाँमरों ने ही कुछ दूर पर खेमा डाला है। बहुत सावधानी से रहना होगा। उस समय तीन बज गये थे। ऐसे समय आगे चल कर किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचना सम्भव नहीं था।

हमारे तम्बूओं में विचित्र-विचित्र कल्पनाएँ शुरू हो गईं। थोड़ी देर में ही पास वाले पहाड़ पर से तीन भीषण आकृति वाले दुर्द्धर्ष तिब्बती उतर आये। उनके हाथ में कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं दिखाई पड़ा, परन्तु उनके बड़े ढीले लबादे के भीतर हर समय अस्त्र छिपा रहता है। गाइड थोड़ा आगे जा कर अपने तम्बू के सामने बैठ कर उन आदमियों से बात-चीत करने लगा। उनका चेहरा अच्छी तरह देखने के लिये मैं एक कमण्डल लेकर झरने की ओर गया। गाइडों के तम्बू के सामने से ही रास्ता था। थोड़ी दूर पर ही तीनों जाँमर बैठे थे। मेरे शरीर पर गेरुए वस्त्र थे। जल ला कर तम्बू में मैं बैठ गया। किसी के मुँह से बात नहीं निकलती थी। थोड़ी देर के बाद गाइड ने आकर कहा कि—'जाँमर आपके दर्शन चाहते हैं।' उनके साथ बात-चीत का सारा विवरण भी उसने संक्षेप में बताया। जाँमरों ने आकर ही हम लोगों से पूछा—'हम लोग कौन हैं, कहाँ से आये हैं, दल में कितने आदमी हैं, कहाँ लौट कर जायेंगे, क्यों आये हैं, बन्दूक है या नहीं, घोड़े कितने हैं, इत्यादि।' अपना परिचय

भी जाँमरों ने दिया। चालीस-पचास परिवार एक साथ चल रहे हैं। केवल आठ-दस परिवार इस पर्वत के इस ओर आये हैं। दो एक दिनों के भीतर ही दल के दूसरे लोग आ पहुंचेंगे। तब सब लोग एक साथ मिलकर गानिमा मंडी में जायेंगे।

जब मैं तम्बू से बाहर गया था तब मेरी विशेष पोशाक देख कर उन लोगों ने मेरे बारे में पूछा था। कीचखम्पा ने कहा था—'ये बहुत बड़े काशी-लामा हैं, इनकी सिद्धि और शक्ति असाधारण हैं। साथ में जो लोग हैं, वे सभी इनके शिष्य हैं। ये लोग चाहें तो मुर्दे को जिला दें फिर थोड़ी धूल फूँक कर आदमी को मार भी सकते हैं। इनकी शक्ति की बात मैं कहाँ तक बयान करूँ?"

इस प्रकार के सिद्धि-सम्पन्न काशीलामा की बात सुन कर जांमर लोग एकदम वशीभूत हो गये। तिब्बती लोग लामाओं से बहुत डरते हैं। खास कर सिद्धि-प्राप्त लामाओं से। जाँमर सरदार तब गाईड को घेरे बैठा रहा और आग्रहपूर्वक कहा—"किसी तरह उस लामा का कुछ केश ला देना होगा।" इसके लिये वे बहुत रुपये देने को तैयार थे। कीचखम्पा ने बता दिया था कि रुपये के बदले लामा अपना केश देंगे, ऐसा नहीं मालूम होता। तब उन लोगों ने लामा के दर्शन करने की इच्छा प्रगट की। तिब्बतियों को यह विश्वास है कि किसी बड़े लामा के केश, दाढ़ी साथ रखने पर रोग, दुःख, विपत्ति टल जाती है। यहाँ तक कि भूत का भय भी नहीं रहता। कीचखम्पा से सारी बातें सुनकर अपने लोगों से परामर्श करके जाँमरों को लाने के लिये कह दिया गया। हमारे तम्बू के सामने आकर तीनों जाँमर लम्बी जीभ निकाल सर हाथ के दोनों अँगूठों को हिलाते हुए घुटने टेक कर सिर झुकाये

बैठ गये (ये सभी अत्यन्त श्रद्धा के सूचक हैं) । उनको तम्बू के भीतर आने के लिये मैंने इशारा किया । सरदार उसी ढंग से जीभ निकाल कर बकइयाँ लेते हुए भीतर आ गया । बाकी दोनों को भीतर आने का साहस नहीं हुआ । दाँत से जीभ काट कर बाहर ही घुटनों पर बैठे रहे ।

कीचखम्पा दुभाषिया है । केश देने के प्रस्ताव पर मैंने बहुत ही गंभीर भाव से कह दिया—"लाख रुपये के बदले भी एक केश नहीं दिया जायगा ।"

जाँमर स्तम्भित हो गये । उनका चेहरा फीका पड़ गया । आपस में कुछ सलाह करके उन लोगों ने प्रसाद पाने की प्रार्थना जतायी । कुछ देर चुप रह कर मैंने उनसे कहा—"अगर तुम लोग तीन प्रण कर लो तो प्रसाद दिया जा सकता है । नहीं तो, नहीं । कभी झूठ न बोलोगे, चोरी-डकैती नहीं करोगे और जान-बूझ कर किसी का नुकसान नहीं करोगे—ये तीन शर्तें हैं ।" सुन कर जाँमर सिर नीचा किये बैठे रहे, बाद में अपने लोगों से राय करके प्रण करने पर राजी हुए । प्रणों को रट कर सबने सिर झुकाये प्रणाम किया । मैंने एक बर्तन में कुछ पिस्ता, बादाम, किशमिश और चुर्मा उन्हें दिया । सब चीजों को थोड़ा-थोड़ा खाकर प्रसाद बना देने की प्रार्थना की । सभी चीजों को मुंह में लगा कर उनके हाथ में देना पड़ा । थोड़ा सा कपड़ा भी मांगा । उस प्रसाद और गेरुआ वस्त्र पाकर वे लोग विविध प्रकार से श्रद्धा और कृतज्ञता जता कर चले गये ।

जाँमर लोगों के चले जाने पर कीचखम्पा आनन्द से अधीर होकर बोला—"अब डरने की कोई बात नहीं है । आप थे, इसलिये हम लोग भी बच गये । नहीं तो, रात को सब लूट ले जाते—घोड़े, खच्चर सब ! रोकने पर हम बच नहीं सकते थे । हमारे आक्रमण करने के पूर्व ही वे पहाड़ के विभिन्न स्थानों

से तम्बूओं पर गोली चला कर सब नष्ट-भ्रष्ट कर देते, जाँमर भयंकर डाकू हैं ! उनकी गोली का निशाना अचूक है !"

जाँमरों के साथ जिस प्रकार नाटक का अभिनय किया गया था उस विषय को लेकर तम्बू के सभी लोग आनन्द से कोलाहल करने लगे। इस अभिनय के लिये मेरे मन में पश्चात्ताप अवश्य हुआ था परन्तु वैसा बिना किये कोई गति भी नहीं थी। नहीं तो उन डाकुओं के हाथ से अनेकों के प्राण चले गये होते, परन्तु उस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध हो कर जाँमरों के जीवन में यदि एक नैतिक परिवर्तन आ जाय तभी मेरे इस प्रकार के आचरण की कुछ सार्थकता है, सोच कर मैं कुछ आश्वस्त हुआ।

क्रमशः सन्ध्या का अन्धकार उतर आया। सूनसान रात निर्विघ्न व्यतीत हो गई। भोर में अन्धेरा रहते ही तम्बू समेट कर हमलोग हटने का प्रबन्ध कर रहे थे, इतने में जाँमर सरदार एक लोटा दूध लेकर हाजिर हुआ। चमरी गाय का दूध। आज वह अकेला आया है। स्वच्छन्द और सहज गति से प्रसन्नता के साथ, कल जैसी क्रूर, वक्र दृष्टि नहीं थी। मनुष्य के पास जिस ढंग से अन्य मनुष्य आते हैं, ठीक उसी भाव से आया। उसका परिवर्तन देख कर मैं अवाक् रह गया। दूध रख कर वह घुटनों पर बैठ गया और बोला—"बहुत तड़के ताजा दूध दुह लाया हूँ और कुछ मक्खन।" अहा ! यह तो बहुत ही आत्मीयता की बात है ? हृदय में आनन्द का हिल्लोल उठा। दूध या दूसरी चीजों की हमें आवश्यकता नहीं थी। हम लोग चलने को तैयार हो गये, किन्तु कीचखम्पा ने कहा—"दूध न लेने से उसे बड़ा कष्ट होगा। नाराज भी हो सकता है।" सरदार के हाथ से दूध का लोटा लेकर श्री भगवान के उद्देश्य से उस दूध को निवेदन कर दिया। एक-दो बूँद अपने मुँह में देकर

मैंने कहा—"यह दूध प्रसाद ले जाओ, अपने लोगों में बाँट देना।" सरदार के चेहरे पर आनन्द की झलक दिखाई पड़ी। उसने कहा—"कल का प्रसाद भी सबको दिया है। और कुछ प्रसाद उस गेरुये कपड़े की पोटरी बांध कर जल में डूबोकर वह जल गाय, घोड़े, बकरे, भेड़ों पर छिड़क दिया है। कुछ प्रसाद रख भी दिया है। साथी लोगों के आने पर उन्हें भी दूँगा।"

जब तक यह बातचीत चलती रही जाँमर सरदार घुटने टेक कर ही बैठा रहा। मैं उसके सिर तथा मुँह पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद देकर चल पड़ा। वह व्यक्ति एकदम अभिभूत हो गया था। हिंसक वृत्ति के स्थान पर उसके चेहरे पर स्निग्ध कमनीयता खिल उठी। इस परिवर्त्तन से मेरे मन में आनन्द उमड़ने लगा। जाते हुए वह भी घूमकर मुझे देख रहा था। थोड़ी ही देर में वह मेरी दृष्टि की ओट में चला गया। वह तो चला गया। किन्तु अनजान से मेरा मन उसके साथ-साथ चलने लगा और मैंने भगवान् से उसकी मङ्गल-कामना की···।

गिरिखात से निकलकर हमलोग क्रमशः गुरला मान्धाता के किनारे-किनारे चलने लगे। आज का पड़ाव चौदह मील अर्थात् बहुत दूर है। 'बरबू' में जाना पड़ेगा। तड़के खूब सर्दी थी। हाथ-पैर जमते जा रहे थे। करीब डेढ़ घंटे तक चढ़ाई करके पर्वत के शिखर पर चढ़ने पर कैलाश की हिमाच्छादित चूड़ा दिखाई पड़ी। उस स्थान का नाम 'थालादुंग' है। कीचखम्पा ने कहा—"इसके बाद फिर कैलाश नहीं दिखाई पड़ेगा। यात्री लोग यहीं से कैलाशपति की मनौती करते हैं।"

क्रमशः साथी लोग आ गये। एकचित्त में मैं देर तक वहीं खड़ा रह गया। अब धीरे-धीरे लौट चलने की बारी आयी। हृदय मानो रो पड़ा। वह

महिमोज्ज्वल नयनाभिराम रूप फिर दिखायी नहीं पड़ेगा। अशेष कष्टों और अपरिसीम दुःखों के भीतर भी हमारे दिन अभूतपूर्व आनन्द से बीत रहे थे। शून्य हृदय लिये हमलोग चल रहे थे। आज चढ़ाई-उतराई विशेष नहीं थी। पथ बहुत ही ऊँचा-नीचा और पथरीला था। ठोकर खाते-खाते दोनों पैर क्षत-विक्षत हो गये थे। शरीर भी बहुत ही थका-मांदा था। घोड़े आगे चलना ही नहीं चाहते थे।

क्रमशः 'गुरला-चू' मिल गई। प्रायः सूखी एक छोटी-सी नदी है। गुरला मान्धाता के हिमवाह से उतर आयी है। नदी के खात में से कुछ दूर तक चलना पड़ा। गुरला का दृश्य बहुत ही मनोहर है। रास्ते में दो तीन तिब्बतियों के दलों से भेंट हुई। उनके साथ बहुत से भेड़, बकरे थे परन्तु किसी के भी रोयें नहीं थे। ये लोग तकलाकोट मंडी में ऊन बेचकर लौट रहे हैं। सभी के मुँह से एक ही प्रश्न : "जाँमर लोग कहाँ है ?"

क्रमशः गर्मी बढ़ने लगी। अब हम अनुपजाऊ भूरे रंग के पठार के ऊपर से चल रहे हैं। हरियाली का चिह्न भी कहीं नहीं है। बालू उड़ाकर प्रचंड आँधी विपरीत दिशा में बहती जा रही है। आँखें मूँद कर किसी तरह आगे चलने लगे। दो बजे तक बरबू में एक झरने के पास खेमा डाला गया। प्रचुर जल और प्रचुर घास पाकर घोड़ों की प्रसन्नता देखने लायक थी। पास में ही तिब्बतियों के कुछ घर थे। मनुष्य भी दिखायी पड़े। आज जलपान से ही काम चलाया गया। बहुत दिनों से ठीक स्नान नहीं हुआ था। शरीर और वस्त्र से दुर्गन्ध निकल रही थी—मुँह पर की चमड़ी फट रही थी। हाथ झुलसकर काले हो गये थे। पिस्सू और जू दिन रात काट रहे थे। आज

सभी ने स्नान और स्वच्छता के प्रति ध्यान दिया है - इतने दिनों बाद शरीर पर नजर पड़ी थी।

बरबू में एक कैलाश-यात्री दल के साथ भेंट हुई। दो उत्तर-प्रदेश के, एक संन्यासी, एक बंगाली सज्जन—कलकत्ता-भवानीपुर निवासी और तीन भोटिये। सभी घोड़े की सवारी से जा रहे थे। यात्रा के सम्बन्ध में उन लोगों ने हमलोगों से बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की। इतने ही में उन लोगों के भीतर मतभेद मनमुटाव में परिणत हो गया, एक दूसरे से मुँह घुमाकर बातें करते थे। हमारे सामने ही बातचीत के समय आपस में उनकी असंयत भाषा का व्यवहार देखकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। हँसी भी आ रही थी और उनकी अवस्था देखकर दुःख भी हो रहा था। ऐसी मानसिक अवस्था लेकर वे सदा-शिव तीर्थपति के दर्शनों के लिए जा रहे हैं। कैलाश तीर्थ यात्रा के दुर्योगपूर्ण दुर्गम, सुदीर्घ पथ में चित्त की शान्ति अक्षुण्ण रखने के लिए असीम धैर्य और श्री भगवान् पर अटल विश्वास अत्यन्त आवश्यक है। नहीं तो द्वन्द्व-विक्षत और दोष-मलीन मन लेकर देवता के सामने खड़े होने पर उस मन में देवत्व की महिमा सम्यक् प्रतिफलित होना सम्भव नहीं है। केवल श्रम-जर्जरित विकल देह और नैराश्य-प्रपीड़ित कुरूप मन लेकर लौट आना मात्र होता है।

बरबू में जो तिब्बती हैं। उनके बच्चों को बुला कर सत्तू व गूड़ देने से वे बहुत खुश हुए। एक सहयात्री ने उन्हें लाजेन्स दिया। कैसे खाना पड़ता है, वह भी चूस-चूस कर खाते हुए दिखा देना पड़ा। आनन्द से नाचते हुए वे उसे खाने लगे—देखकर तृप्ति हुई। सन्ध्या समय तिब्बतियों से दूध पाकर बहुत दिनों के बाद ताजा दूध की चाय पीने को मिली। रात में आराम से नींद आई।

सुबह फिर पथ में उतर आये। आज तकलाकोट कौन पहले पहुंचेगा इसी की प्रतियोगिता चल रही थी। पथ बहुत कुछ समतल है। घोड़े भी इसे समझ गये। वे भी आराम से चलने लगे। कुछ मील आने के बाद ही मनुष्यों से भेंट होने लगी। जहाँ-तहाँ एक-दो मकान। कर्णाली के किनारे-किनारे हम लोग चल रहे हैं। आगे हरियाली देख कर नेत्रों को स्निग्धता मिली। ग्रामीणों ने अपने खेतों में जौ, मटर, सरसों, शाक, तरकारी आदि उगाये हैं। कर्णाली के किनारे का स्थान बहुत उपजाऊ है।

यकायक एक साधु यात्री के साथ भेंट हुई—कम्बल कंधे पर लिये कैलाश यात्रार्थ निकले हैं। 'ॐ नम नारायणाय' कह कर मैंने उनका अभिवादन किया। साधुजी ने पूछा—"शीत कैसा है? वरफ है क्या?" इत्यादि अनेक प्रश्न। ठीक-ठीक उत्तर देकर हमलोग आगे चलने लगे। और भी एक संन्यासी यात्री से भेंट हुई। 'कैलाशपति की जै' ध्वनि करके मैंने उनका स्वागत किया। दो-चार बातों के बाद साधुजी ने रास्ते के खर्च के लिए कुछ माँगा। कुछ दिया। इन दोनों साधुओं के भविष्यकष्टों की कल्पना मन में प्रगट होते ही हृदय मानो रो पड़ा। शायद ये लौटकर नहीं आ सकेंगे। इस पथ में हर साल ही ऐसा होता है। बहुत से लोग असमय में प्राण गँवा देते हैं। कोई बेकाम होकर लौट आता है और कोई थालादुंग से कैलाश-मानस-दर्शन करके ही लौट आने में बाध्य होता है। उस चिर-दुर्लभ पदतल-स्पर्श के मार्ग में पग-पग पर न जाने कितने दुःख, दुर्योग, महाकष्ट, यातना और अकालमृत्यु है। केदार, बद्री या हिमालय के अन्यान्य कठिन तीर्थों की दुर्गमता के साथ कैलाश यात्रा के कष्टों की तुलना न करना ही अच्छा है।

बारह बजे तक तकलाकोट पहुँच कर दिखाई पड़ा कि ताराप्रसन्न बाबू ने प्रतियोगिता में प्रथम स्थान का अधिकार प्राप्त कर लिया है। वह गाइड को साथ लेकर घंटे भर से हमारे परिचित उस छत रहित घर में बिस्तर लगा कर बैठे हैं। यहाँ आने पर मनुष्यों का चेहरा देखने को मिला। ऐसा लगा कि हम लोग भी संसार के मनुष्य हैं और इन लोगों के स्वजन हैं। तकलाकोट छोड़ने के बाद आगे बढ़ते हुए पग-पग पर हम लोग समझ रहे थे कि एक अजीव देश में आये हैं। मनुष्य कदाचित ही दिखाई पड़ता था पर सारे मार्ग में चोर, डाकुओं का भय फैला हुआ था।

भोजन के बाद निश्चिन्त भाव से सों गये थे। तीसरे पहर तकलाकोट मंडी घूमकर देख आये। छोटा-मोटा एक शहर कहा जा सकता है। भोटिये व्यापारियों की दूकानें सभ्य लोगों के योग्य आवश्यक सामानों से भरी हैं—इनामेल और एलूमिनियम के बर्त्तन, सुगन्धित साबुन, तेल, स्नो, रेशमी चूड़ी, सेफ्टी रेजर, टार्च लाईट. गौगल्स, टेल्कम पाउडर, सिल्क और ऊनी पोशाक, अनेक प्रकार के कपड़े, बाटा के जूते, हैट, टाई आदि किसी वस्तु का अभाव नहीं था। तिब्वती लोग घूम-घूमकर हिला डूलाकर सब कुछ देख रहे थे और कुछ खरीद भी रहे थे। बहुत से तिब्बती सैकड़ों बकरे, भेड़ें लेकर आये थे। बड़ी-बड़ी कैंचियों से ऊन काटने का काम चल रहा था। खरीद-बिक्री और लेन-देन का कोलाहल मचा हुआ था। इस मंडी में हर साल नेपाली भोटियों और तिब्बतियों में लाखों रुपयों का व्यापार होता है। अधिकांश व्यापार ही चीजों की अदला-बदली से होता है।

कर्णाली के किनारे-किनारे मैं घूमने लगा। चारों ओर सौन्दर्य का अपूर्व प्रकाश था। अस्तगामी सूर्य से अनुरंजित पर्वतमाला प्रकृति देवी का

सान्ध्य प्रसाधन-पारिपाट्य अतीव मनोहर है। गुरला मान्धाता के ऊपर से बगुले के पर की तरह छोटे-छोटे शुक्ल मेघ-खंड मन्द पवन से तैरते चले जा रहे हैं। लिपूलक दर्रा भी लाल हो उठा है। सूर्यास्त मानो प्रकृति देवी की माँग पर मंगल-सिन्दूर-बिन्दु है। क्रमशः तामसी निशा ने धरणी के ऊपर एक काला पर्दा खींच दिया। 'नवनील नभस्तल' अगणित तारकाओं से पूर्ण हो गया।

हमलोग कैलाश का हिमजर्जर शीत सह आये हैं—गौरी कुंड में बर्फ तोड़कर नहाना भी सम्भव हुआ। अब तकलाकोट का शीत तो आरामदायक है। रात अच्छी तरह बीती। वसन्त के स्पर्श से एक ही दिन में शरीर, मन मानो संजीवित हो उठे! खासकर गत कई दिनों के डाकुओं के भय ने सबको अधमरा सा कर डाला था।

सुबह झटपट शिवलिङ्ग गुम्फा देखने के लिए हमलोग तैयार हो गये। जाते समय उस गुम्फा के देखने का मौका नहीं मिला था। पश्चिम तिब्बत के भीतर यही सबसे बड़ा बौद्ध मठ है। पहले ही चढ़ाई पड़ी। ३०० फुट से अधिक चढ़ना पड़ा। गुम्फा मानो एक बड़ा किला है। एक पहाड़ के ऊपर बहुत ही सुरक्षित स्थान में बना है। गुम्फा की समृद्धि और सजावट भी अल्प नहीं था। पहले ही पत्थर का बना बहुत बड़ा फाटक था। उसका निर्माण कार्य बिलकुल नये ढंग का दिखाई पड़ा। फाटक से भीतर पहुँचते ही दो मठवासी साधु हमें मन्दिर की ओर ले चले। वेदी के ऊपर भगवान् तथागत की शान्त, सौम्य बृहत् ध्यानमूर्त्ति लकड़ी की बनी परन्तु सोने के जल से रंजित ६।७ फुट ऊँची सामने अनेक स्तरों में मक्खन के प्रज्वलित

प्रदीप विभिन्न पात्रों में पीठे की तरह भोग रक्षित हैं। वेदी के नीचे के स्तरों में अनेक देव-देवियों की छोटी-छोटी धातु-मूर्त्तियाँ हैं। दीवार और पास में अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्र हैं। उनमें डमरू, शंख, करताल, घंटा, दमामा, वंशी, बज्र, सिंगा, भेरी, छिद्र युक्त मनुष्य की अस्थि (एक वाद्य यन्त्र) आदि हमारे परिचित हैं। मनुष्य की खोपड़ियाँ और अस्थियाँ पूजोपकरण रूप से रखी हुई हैं। विशेष दिन और पुण्य तिथि के उत्सव में वैसे पूजोपकरण व्यवहृत होते हैं। मन्दिर की भीतिप्रद निस्तब्धता विशेष रूप से ध्यान देने योग्य थी।

बहुत बड़ा मन्दिर है। एकसाथ तीन-चार सौ आदमी बैठ सकते हैं। मन्दिर ही उपासनागार, धर्मोपदेश के स्थान और विचारालय के रूप में व्यवहृत होता है। मन्दिर के एक ओर पाली भाषा में लिखी हुई बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें हैं। प्रदर्शक डाबा ने कहा कि वे पुस्तकें संख्या में तीन हजार से अधिक हैं। सभी धर्मग्रन्थ हैं। अनेक दुष्प्राप्य पोथियाँ भी उनमें हैं। थोड़ी उमर के कौतुहली कतिपय विद्यार्थी डाबा हमारे साथ-साथ चल रहे थे। पता लगा उस गुम्फा के निवासियों की संख्या लगभग ढाई सौ है। उनमें केवल दो ही लामा हैं और सभी लामा (वेशधारी) डाबा हैं।

इस गुम्फा के दोनों लामाओं में एक गुरु लामा हैं। वे ही आचार्य और उपदेशक हैं। और दूसरे 'बरसाती लामा' हैं अर्थात् उनके इशारे से वर्षा रुक जाती है। जन-श्रुति है—वह लामा अतिवृष्टि के समय वृष्टि बन्द करने और अनावृष्टि के समय वर्षा कराने में समर्थ हैं। उनकी ऊँगलियों के इशारे से सब-कुछ हो सकता है। जन साधारण के ऊपर लामाओं का प्रभाव अक्षुण्ण रखने के लिए प्रत्येक बड़े मठ में भी उस प्रकार के अद्भुत सिद्धि सम्पन्न एक लामा अवश्य रहते हैं।

लामाओं से भेंट करने की इच्छा प्रगट करते ही वह डाबा हमें पहले 'बरसाती लामा' के पास ले गया। दो मंजिल पर अन्धकारमय एक छोटे कमरे में एक वृद्ध लामा अपने आसन पर बैठे हुए थे। उस वृद्ध लामा, की उम्र सत्तर के करीब मालूम हुई। कठोर साधना के कारण शरीर सूख गया था परन्तु चेहरा उज्ज्वल था। सामने जाकर प्रणाम करते ही लामा जी ने आग्रह के साथ हमें बैठने के लिए कहा। तिब्बत में आने का कारण जाना, कहाँ से आये हैं, कितने दिन रहना होगा इत्यादि अनेक प्रश्न उन्होंने पूछे। कैलाश यात्रा बिना बाधा के सम्पन्न हुई है जान कर उन्होंने बहुत ही प्रसन्नता के साथ श्री भगवान को आन्तरिक धन्यवाद दिया। मानससरोवर की परिक्रमा नहीं हुई है जानकर कहा— अच्छा हुआ, और एक बार आना होगा।

वार्त्तालाप के समय मैंने देखा लामाजी बीच-बीच में आँखें मूँद कर मौन हो जाते थे, मानो मनःसंयम कर रहे हों। इस लामा को देख कर प्रतीत हुआ कि यह महान तपस्वी और इनका जीवन अत्यन्त संयत है। अतीन्द्रिय तत्त्व का कुछ संधान इन्होंने अवश्य पाया है। घर में कुछ भी असबाब नहीं था। फर्श पर कम्बल की शय्या, शरीर पर मामूली आवरण, तान्त्रिक साधना के सम्बन्ध में कुछ पूछने की इच्छा थी। किन्तु दुभाषिये ने सब गड़बड़ा दिया।

अब डाबा हमें गुरु लामाजी के दर्शन के लिए ले गया। ज्ञात हुआ कि ये ल्हासा के प्रधान मठ से अभी इस पद पर नियुक्त हो कर आये हैं। प्रतीक्षा कक्ष में थोड़ी देर खड़े रहने के बाद ही बुलावा आया। बहुत ही हँसमुख चेहरा, सुन्दर और सप्रतिभ दृष्टि, वयस चालीस के लगभग है। बड़ी शान से महन्त की गद्दी पर विराजमान हैं। पास में एक छोटी अँगीठी में कोयले की

आग जल रही है। शरीर पर चिकने कत्थई रंग की ऊन की सुन्दर पोशाक थी। आस-पास असबाबों की बहुलता भी देखने योग्य है। चाँदी की चायदानी और प्याले आदि थे। पीछे मखमल से मढ़ा बड़ा तकिया, गोदी में एक छोटा 'लैप डौग' (एक कुत्ता विशेष) पास का कमरा उनके सोने का स्थान है। बिछौना आदि बहुत ही साफ सुथरा है। दरवाजों और जंगलों में नकाशीदार सुन्दर पर्दे लटक रहे हैं।

जब हम लामा के घर में प्रविष्ट हुए तब शायद शास्त्र ग्रन्थ का पाठ हो रहा था। लामाजी के बगल में एक दूसरे लामा वेशधारी साधु एक बहुत बड़ी पोथी खोलकर बैठे थे। नमस्कार प्रणाम आदि के बाद लामा ने अनेक बातें पूछीं। हम लोग खड़े ही रहे, उन्होंने हमें बैठने के लिये नहीं कहा। अच्छे दुभाषिये के अभाव के कारण किसी प्रश्न का भी सन्तोषजनक उत्तर सुनना सम्भव न हुआ।

तिब्बती लोग बुद्ध देव को 'शाक्य थुबा' कहते हैं। गुरु लामा के साथ वार्त्तालाप से प्रतीत हुआ कि शाक्य थुबा प्रदर्शित निर्वाण के मार्ग का वे लोग ठीक-ठीक अनुसरण नहीं करते और निर्वाण के विषय में कोई अच्छी धारणा भी उनमें नहीं है। गुरुपूजा और देव-देवियों की उपासना के ऊपर ही लामाजी ने बहुत अधिक जोर दिया। बहुत सुन्दर कहा—"भगवान को विविध भावों से उपासना, गुरुपूजा या जपतप कठोरता आदि कुछ भी क्यों न करें मन की मैल साफ हुए बिना किसी से कुछ भी नहीं होगा। और गुरु कृपा के सिवाय मन की मैल साफ होने का कोई उपाय भी नहीं है। भगवान की सभी आध्यात्मिक शक्तियाँ गुरु के भीतर से ही मनुष्य पा सकता है। भगवान् की शक्ति लाभ करने का कोई अन्य उपाय नहीं है।"

गुरु लामा से विदा लेकर गुम्फा के चारों ओर प्रदक्षिणा करने की तरह सब कुछ घूम फिर कर देखा। बहुत ही पुराना मठ प्रतीत हुआ। मठ के भवन के पास ही उस प्रान्त के शासक 'जंगपान' का किला है। जेलखाना आदि सभी उस किले के भीतर हैं। देखने की इच्छा नहीं हुई।

वर्तमान समय तिब्बत के लामाओं के हाथ में राजशक्ति और जमींदारी की देख-रेख का भार रहने के कारण अनेक लामाओं को ही राजकार्य तथा अन्यान्य वैषेयिक व्यापार में नियुक्त रहना पड़ता है। फलस्वरूप उनके भीतर यथार्थ आध्यात्मिक जीवन की स्फूर्ति और परिपूर्णता सम्भव नहीं है। अधिकार प्रियता, राजनीति, राजदंड, विषय सम्पत्ति का पर्यवेक्षण आदि कार्य उच्च आध्यात्मिक जीवन के बाधक से हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शिवलिंग गुम्फा की बृहत् जमींदारी और बहुत बड़ा व्यापार है। स्थानीय लोगों की धारणा है कि वहाँ बारह साल के लिए रसद मौजूद रहती है। मठ के सभी कामकाज और वैषेयिक व्यापार गुरु लामा के निर्देश से अधिक वयस्क डाबाओं के द्वारा परिचालित होते हैं—व्यापार वाणिज्य, जमींदारी का प्रबन्ध, सब कुछ। बहुत से डाबा व्यापार के लाभ का अंश भी पाते हैं। ब्रह्म देश की तरह तिब्बत में भी शिक्षा कार्यों का भार लामाओं के ऊपर ही निर्भर है। और हरएक मठ ही शिक्षालय है। विद्यार्थियों की शिक्षा और पालन-पोषण का सारा खर्च गुम्फा से ही दिया जाता है, खासकर यह भी सुना है कि पश्चिम तिब्बत में गुम्फा के सिवाय पृथक विद्यालय एक भी नहीं है। पूर्व तिब्बत में भी बहुत कुछ वैसी ही स्थिति है।

सभी कठिन काम करने के लिये प्राय: सभी गुम्फाओं में नौकर नौकरानियाँ नियुक्त रहती हैं और वे अपने स्वजनों को ले कर गुम्फाओं में ही रहते हैं। इस कारण साधारण यात्री या दर्शक मठों में स्त्रियों को देख कर समझते हैं कि वे भिक्षुणी हैं और नौकरानियों की गोदी में बच्चों को देख कर भिक्षु जीवन के सम्बन्ध में बड़ी कुत्सित धारणा का पोषण और प्रकाश करते हैं। हम लोगों ने जहाँ तक जान लिया है उससे प्रतीत हुआ कि मठ का जीवन बहुत ही संयत और कठोर है। कम से कम इस आदर्श का अनुसरण करके चलने की चेष्टा की त्रुटि नहीं है। किसी गुम्फावासी का चरित्र-भ्रष्ट या आदर्शच्युत होने से मन्दिर में ही सब के सामने उस पर विचार होता है। आचार्य लामा विचाराधीन अपराधी के विरुद्ध सभी अभियोग सब के सामने प्रगट कर देते हैं और अपराधी को अपना पक्ष समर्थन करने का सुयोग देकर गुम्फा निवासियों के ऊपर उसके विचार का भार देते हैं। उस विचार का फल प्राय: अत्यन्त निर्मम और कठोर होता है। हमने पहले सुना था कि पूर्व वर्ष में खोचरनाथ गुम्फा के एक चरित्र-भ्रष्ट डाबा को नंगा करके तपे हुए लोहे की छाप दे कर निकाल दिया गया था। दो साल पहले शिवलिंग गुम्फा के एक डाबा को किसी विशेष कारण से लामा की पोशाक उतार कर दोनों कान काट कर सब के सामने बेंत मारते हुए निकाल दिया गया था।

डाबाओं के रहने की कोठरियों को हम लोगों ने घूम फिर कर देखा। शीत प्रधान स्थान और जलाभाव के कारण प्राय: सभी स्थान गन्दे हैं। सभी मकान पत्थर के बने हैं। और हरएक कमरे में दो तीन आदमियों के रहने का प्रबन्ध है। बालक विद्यार्थी डाबाओं के लिये दूसरा प्रबन्ध है।

पश्चिम तिब्बत के जिन-जिन स्थानों में गुम्फायें हैं उनमें तकलाकोट में ही शीत कम है। इस कारण शीत के पाँच-छः महीने इस गुम्फा में चार-पाँच सौ लामा और डाबा एकत्र होते हैं। खाने-पीने का प्रबन्ध उस मठ के अधिकारी ही करते हैं।

प्रत्यावर्तन

डेरे पर लौट आते ही गाइड ने जल्दी मचाई। तुरंत रवाना होना था। इस समय सबका मन घर की ओर है। दोपहर की धूप में ही निकलना पड़ा—आज छः मील जाकर पाला में ही रात्रि यापन करना होगा। तकलाकोट में तिब्बती घोड़े वालों के बदले नये घोड़े लेने की बात है। किन्तु तिब्बती लोग हमें छोड़ना नहीं चाहते थे। रिंगबु मुँह लटकाये खड़ा था। गाइड ने कहा—"ये लोग गर्बियांग तक जाना चाहते हैं।" अतः वे ही साथ चले।

पथ के पास श्यामल शस्यक्षेत्र हैं। खेतों में किसान खेती का काम कर रहे हैं। घण्टे भर के बाद ही वृष्टि की बौछार सबकुछ भिगो कर चली गयी। हमलोग उसकी परवाह नहीं करते। ऐसी परिस्थितियों में रहने का अभ्यास हो गया था। भींगते हुए ही चल रहे थे। बहुत दूर से शिवलिंग गुम्फा और गुरला के हिमानी-मंडित तरंगायित शिखर दिखाई पड़ते थे। अब विदा—सबसे ही विदा!

लगभग ४ बजे पाला में आकर खेमा डाला गया। दो-तीन धर्मशालायें भी यहाँ हैं। परन्तु सभी भोटिये व्यापारियों के सामानों से भरी हुई हैं।

पाला लिपु के पाद देश में है। केवल पाँच-छः मील ही दूर है। आज ही तिब्बत में हमारा अन्तिम दिन है। कल सुबह लिपु पार कर हमलोग हिमालय के भीतर जा पहुँचेंगे।

भोर की दुर्जय शीत से काँपते हुए हमलोग निकल पड़े। मेघ-मलीन आकाश को देख कर समझ में नहीं आता था कि प्रभात है या सायंकाल। लिपु का दर्रा बर्फ से ढका न हो तो कुशल थी। क्रमशः चढ़ाई शुरू हुई। लिपु की चढ़ाई किसी तरह पूरी कर जी में जी आयेगा। निरन्तर चढ़ने लगे। अनेक भोटियों से भेंट हुई। घोड़े, बकरे, भेड़ लेकर वे तिब्बत की विभिन्न मंडियों में जा रहे हैं। अब लिपु की वह परिच्छन्न शोभा नहीं है। बर्फ पिघलकर अनेक स्थानों में ही पत्थर निकल आये। यह तो लिपु नहीं है? मानो निराभरण लिपु का कंकाल है। अन्तिम भाग की चढ़ाई ही कठिन थी। पहाड़ की दीवार पकड़-पकड़ कर किसी तरह चढ़ रहे थे वर्षणोन्मुख मेघों के छिद्रों से सूर्यालोक—आशा की प्रकाश-किरण की तरह हृदय में उत्साह दे रहा था। किसी प्रकार खींच-खांच कर हाँपते हुए लिपू के शीर्ष स्थान तक चढ़ आये। 'तिब्बत से लौटे' होने के कारण शीत बहुत तीव्र नहीं मालुम हुई। क्रमशः मेघ-निर्मुक्त आकाश में सूर्य का प्रकाश हँसने लगा। लिपु के ऊपर खड़े होकर चारों ओर देखा—वह अपूर्व गुरला मान्धाता और कुहेलिका मय तिब्बत! लिपु के ऊपर अधिक बर्फ नहीं थी। सहयात्रियों के साथ एक स्वर से कैलाशपति की जय ध्वनि की। देवाधिदेव के चरणों में हृदय की श्रद्धांजलि और कृतज्ञता निवेदित करके अब हमलोग हिमालय की ओर उतरने लगे। अब खड़ी उतराई थी। पथ अत्यन्त संकीर्ण और प्रस्तरमय होता जाता है। जाते समय सभी बरफाच्छन्न थे। पथ का कुछ भी पता न लगता था। इस पथ में अपने इच्छानुसार चलने का उपाय नहीं है। ऐसा लगता था कि पथ ही पथिक को चालित कर ले जाता है—मानो कोई पीछे से धक्का देकर गिरा देता है। बहुत सम्हाल कर चलना होता है। क्रमशः तीन मील नीचे लांगचुंग में उतर

आये। थोड़ा विश्राम लेकर ही फिर से चलना आरम्भ हुआ और भी सात मील बाद कालापानी में पड़ाव डाला जायगा।

१ बजे कालापानी पहुंचे। चारों ओर पर्वतों का घेरा और श्यामल वनस्थल की शोभा को हमलोग भूल ही गये थे। यह स्थान बहुत ही सुन्दर है। सन्ध्या के बाद ही बिजली की गड़गड़ाहट के साथ मूसलाधार वृष्टि और आँधी ! हिमालय में श्रावण की धारा ! रात किसी तरह बीती। बरफ का राज्य पार होने में और भी कुछ दिन बाकी है।

श्रावण २, मंगलवार। किसी तरह और ग्यारह मील लुढ़कते हुए चलने से ही गर्बियांग पहुंचेंगे। कुछ दिन वहाँ विश्राम लिया जायगा। नदी के किनारे-किनारे चल रहे थे। सर्वत्र सुनसान जंगल था। घने देवदार वृक्षों का वन ! हिमालय की चारों दिशाओं में प्रसारित ध्यान-गम्भीर परिवेश ! काली नदी के तीर पर स्निग्ध सूर्यकिरणधौत शस्यक्षेत्र— बीच-बीच में मिट्टी की छत वाली दरिद्र पहाड़ियों की कुटियाँ, अत्यधिक वर्षा के कारण पथ बहुत ही कठिन है। जल-प्रपात भयंकर वेग से उतरे आ रहे हैं। पहाड़ के अनेक स्थान धँस गये हैं। पथ के ऊपर से जलस्रोत बहता जा रहा है। आसपास नंगे पत्थर प्रायः निरालम्ब होकर लटक रहे हैं। देखने से डर लगता है— क्या जाने कब टूट कर दब जायें। इसीलिए उधर नहीं देखते और सामने की ओर दृष्टि रख कर ही चलते हैं।

लगभग १२ बजे गर्ब्यांग के पास हमलोग पहुंच गये। खबर पाकर अनेक ग्रामीण मनुष्य हमारी प्रतीक्षा में खड़े हो गये। डाक बंगलों में अन्य यात्री दल पहले ही आकर टिक गये थे। अतः हमें आँगन में ही डेरा लगाना पड़ा।

आज महान् तीर्थयात्रा का श्रेष्ठ पर्व समाप्त हुआ। सभी साथी अपने परिजनों का समाचार जानने के लिए अत्यन्त लालायित थे मानो स्नेहममता उन्हें हाथ के इशारे से बुला रही हो। सुदीर्घ दो मासों में संसार का बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है। झट डाक घर आदमी भेजकर चिट्ठी-पत्रियाँ मँगाई गयी। कई समाचार पत्र भी मिल गये। हमलोग इसी जगत के हैं। मन से जगत् को अभी पोंछ नहीं डाल सके हैं—असंख्य ग्रन्थियों से संसार के साथ हमलोग विविध प्रकार से विजड़ित हैं।

अरुण बाबू के नाम से एक जरूरी तार आकर बहुत दिनों से पड़ा है उनके अफसर ने पदोन्नति का समाचार देकर तार भेजा है। शीघ्र ही नया कार्यभार ग्रहण करना होगा। एक सहयात्री ने हँसते हुए कहा—"हाथों-हाथ तीर्थ यात्रा का सुफल है। तो एक बड़ा भोज तो कम-से-कम हमें मिलना ही चाहिए।" इस प्रस्ताव से सभी एकमत हुए।

तय हुआ था गर्बियांग मैं कुछ दिन विश्राम करके खेला से अलमोड़ा तक जाने के लिए मजदूर मँगवा लेंगे और सवारी घोड़ों की व्यवस्था भी होगी। किन्तु अरुण बाबू को जल्दी उतर जाने की आवश्यकता थी। जैसे बने कल रवाना होना ही होगा। उन्हें अकेला छोड़ देने की हमारी इच्छा नहीं हो रही थी। कीचखम्पा मजदूरों की खोज में निकल गया।

अपराह्ण का पूरा समय हिसाब-किताब, इनाम देना आदि कार्य में समाप्त हो गया। तिब्बती घोड़ों वाला रिंगबू विदा लेते समय रो पड़ा। उग्र और हिंसक आवरण के भीतर ऐसा कोमल और स्नेह-ममता-पूर्ण हृदय रह सकता है उसे हम सोच भी नहीं सकते थे। उसकी रुलाई ने हमें अभिभूत कर डाला।

थोड़े दिनों का ही तो परिचय था। वह हमारी बात नहीं समझता, हम भी उसकी भाषा नहीं समझते थे। किन्तु हम उसके हृदय के अन्तस्तल का स्पर्श कर सके थे। उसने भी हमारे भीतर अपने प्रियजन को पाया था। यही प्रेम-सम्बन्ध प्राणीमात्र के भीतर विद्यमान है। सभी प्यार चाहते हैं। प्यार करके अपने प्रेम का विकास करना चाहते हैं। देश, काल की सीमा, जाति और भाषा का विवाद—इस प्रेम के प्रवाह को रोक नहीं सकते। एक हृदय का प्रेम दूसरे हृदय में उड़ेल कर उसका विकास देखना चाहते हैं।

घोड़ा वाला दरबू—जिसके मुँह से कभी कोई बात सुनी नहीं गयी। अत्यन्त परिश्रमी और अति विश्वासी है। अहा ! सभी ने हमारे लिये न जाने कितना परिश्रम किया है, इनका सहयोग न पाने से यह महा दुर्गम तीर्थ-पथ इतना निष्कटंक न होता। ये लोग गरीब हैं, किन्तु ईमानदार हैं। दरिद्रता इनके मनुष्यत्व को मलीन नहीं कर सकी है। इन सभी के हम चिरकृतज्ञ हैं। निर्धारण के अतिरिक्त हमलोगों ने उन्हें इनाम और प्रचुर सामान देकर सन्तुष्ट कर दिया। सभी लोग सजल नेत्रों से विदा लेकर चले गये। प्रतिदान में उनसे हमने हृदय की प्रचुर कृतज्ञता और शुभेच्छा पायी। सन्ध्या के बाद गाइड ने खबर दी की मजदूर ठीक हो गये।

श्रावण ३, बुधवार। सुबह से ही बाँधना, बटोरना शुरू हो गया। यहाँ अब करुण विच्छेद की बारी आयी। पथ-प्रदर्शक कीचखम्पा को छोड़ जाना होगा। वह भीषण दुर्योग के पथ में, दुःख-विपत्ति में दिन-रात दीर्घकाल तक हमारे मित्र के समान साथ-साथ रहा था। स्वेच्छा से हमारे सभी कष्टों और पीड़ाओं का अंश उसने अपनी छाती पर लिया था। उसकी सेवा, परिचर्या

तथा हार्दिकता की तुलना नहीं है। हमारा सुख-स्वच्छन्दता विधान ही उसका एकमात्र व्रत था। परम आत्मीय जान कर उसे हमने हृदय पर खींच लिया था, आज सचमुच ही उससे अलग होना पड़ेगा। कपड़े, कुर्ते, कम्बल, रुपये-पैसे, बचे हुए चावल, दाल, आटा, चीनी आदि अकृपण भाव से सभी ने उसे प्रचुर दिया। उसके प्राप्य से ऊपर चार गुण देकर भी मानो हमें तृप्ति नहीं हो रही थी। उसने हमारे लिए जो कुछ किया है उसके बदले सांसारिक कोई भी वस्तु पर्याप्त नहीं है। कीचखम्पा की तरह सज्जन व्यक्ति संसार में बहुत अल्प दीखाई पड़ते हैं।

हम लोग दस बजे गरब्यांग छोड़ कर चल पड़े। कीचखम्पा साथ-साथ करीब दो मील आया। अन्त में बुधी की उतराई प्रारम्भ होने के पहले उसे लौट जाने को बाध्य किया गया। बहुत ही मर्मस्पर्शी वेदनादायक अवस्था थी। घुटने टेक कर वह प्रणाम करते हुए बालक की तरह अधीर हो कर रोने लगा। मेरे भी आँसू रोके नहीं रुके। उसके साथ परिचय थोड़े ही दिनों का था, परन्तु उसकी महत्ता बहुत अधिक थी। इस परिचय की पृष्ठ-भूमि कष्ट, पीड़न और विपदपूर्ण तिब्बत का पठार था। अत्यन्त दुःखपूर्ण वातावरण में हम लोगों ने परस्पर एक-दूसरे को पाया था। हमने उसके सिर, मुख तथा शरीर पर हाथ फेरते हुए स्नेह जता कर उससे विदा ली। जब तक हम दिखाई पड़ते थे वह एक ही भाव से पहाड़ पर खड़ा था। कैलाश यात्रा की स्मृति के साथ कीचखम्पा एक होकर मिल गया है।···

अब शुरू हुई बुधी की घुटने तोड़ उतराई। भीषण वर्षा के कारण रास्ता अनेक स्थानों में धँस गया था। वे स्थान बहुत ही खतरनाक हो गये थे। लिपु

का शिखर लगभग अट्ठारह हजार फुट ऊँचा है। उससे अब हम लुढ़कते हुए उतरते चल रहे थे। समतल भूमि का स्पर्श पाने के जिए ताराप्रसन्न बाबू और अरुण बाबू प्राय: दौड़ते हुए उतर कर सबसे पहिले बुधी पहुंच गये। उतनी जल्दी उतरना ठीक नहीं है। प्रतिक्रिया खराब हो सकती है, उन्होंने बता दिया। अभी नौ मील बाकी है। आज ही मालपा पहुंचना होगा। वे दोनों आगे चल रहे थे, रास्ता परिचित था, इस कारण आज दलबद्ध होकर जाने का प्रयोजन नहीं था। मैं और दोनों पहाड़ी सहयात्री एक साथ, डाक्टर साहब और अन्य लोग पीछे थे। आखिरी अंश बहुत खड़ी चढ़ाई थी। अब भी डेढ़ मील बाकी है। इतने में दिखाई पड़ा कि रास्ते के किनारे अरुण बाबू लम्बे पड़े हैं और उनका सिर गोदी में लिए ताराप्रसन्न बाबू उदास भाव से हमारे आने की बाट जोह रहे हैं। अरुण बाबू शक्तिहीन और अवसन्न अवस्था में थे। नाड़ी क्षीण, सारा शरीर पसीने से तराबोर, एकदम पीले पड़ गये थे। कैसी विपत्ति! डाक्टर दे अब भी पीछे थे। पहाड़ी साथी तुरन्त उन्हें बुलाने गया। लगभग आधे घंटे के बाद डाक्टर दे ने आकर इन्जेक्शन दिया। जन-मानव और सहाय हीन पथ, मजदूर अब भी बहुत पिछे थे। कुछ देर विश्राम लेकर किसी तरह तीन-चार आदमी उन्हें ढोकर मालपा में छप्पर के नीचे लाये। औषथ और विश्राम से रात को वह कुछ स्वस्थ हुंए।

जाते समय उतनी बृष्टि नहीं थी। अब हिमालय में पूरे वेग से वर्षा होने लगी थी। बिछौने आदि प्रायः रोज ही भींग जाते थे—आयेल क्लाथ भी उसे बचा नहीं सकता था। शीत के राज्य में बहुत ही कष्ट था। मालपा से जिप्ती—यह आठ मील पथ 'मृत्यु का पथ' है। इस पथ में हर साल ही लोग मरते

हैं। इस साल भी लोग मरे हैं। सुबह दो दलों में विभक्त होकर हम लोग चल पड़े। जिप्ती में स्थानाभाव है। हम लोग तीन आदमी आगे चले और इग्यारह बजे पहुंच गये। किसी प्रकार थोड़ी जगह ले कर रसोई बना कर बैठे थे किन्तु सहयात्रियों का दर्शन नहीं हो रहा था, बड़ी ही दुश्चिन्ता होने लगी। प्राय: २ बजे तक मूमूर्षू अवस्था में सब लोग आये अर्थात् १ मील प्रति घण्टे के हिसाब से। मूसलाधार पानी बरसने लगा। भीषण मेघगर्जन हो रहा था। बिजली की चमक से आँखें चौंध जाती थीं। बिछौने आदि अभी नहीं आ पाये थे। छप्पर तीन ओर से खुला था। भयंकर शीत से हड्डी के भीतर तक कँपकँपी हो रही थी। मजदूर भींगते हुए ५॥ बजे आये।

जिप्ती पहुंचने पर एक दुर्घटना के समाचार ने हमें बहुत ही विचलित कर डाला। खेला के नीचे धौली गंगा के काठ के पुल को जलस्रोत बहा ले गया है। अब लटकती हुई रस्सी के सहारे पार जाने की व्यवस्था होगी। वह भी अस्थायी है। पूर्ति विभाग वाला सड़क का जमादार इसी ग्राम का आदमी है। उसी की देख-रेख में यह पथ है। पहिले जमादार ने हमारी बात की पर्वाह ही नहीं की। किन्तु सहयात्रियों की पदमर्यादा का परिचय देते ही उसका स्वर कुछ नरम हुआ। हमलोग अलमोड़ा जा रहे थे। उसके विरुद्ध रिपोर्ट कर सकते हैं इस भय से दूसरे दिन सुबह मजदूरों को लेकर हमें पार करने का प्रबन्ध करने के लिए वह चला गया।

इधर जिप्ती में आते ही दिखाई पड़ा कि एक ब्रह्म देश वासी फुंगी। (बौद्ध संन्यासी) कैलाश से लौटते समय वहाँ अधमरी अवस्था में पड़ा है। गरम कपड़े, कम्बल आदि भी उनके पास मामूली ही थे। मातृ-भाषा और दो-चार अंग्रेजी शब्दों को छोड़ कर वह अन्य भाषा नहीं जानते थे। तुरन्त गरम

दूध खरीद कर उन्हें पिला दिया गया। डाक्टर दे ने आकर जाँच करके कहा निउमोनिया मालूम होता है। औषध आदि सभी मजदूरों के साथ थी। उन लोगों के आने पर डाक्टर दे ने पीने की औषध और इन्जेक्शन दिये। रात भर उनकी सेवा और परिचर्या की गई। दूसरे दिन सुबह निकलने के पूर्व पीड़ित फुंगी के पथ्यादि के लिये दुकानदार को कुछ रुपये दे आये।

लौटने के मार्ग का विस्तृत विवरण देना आवश्यक नहीं है। जाते समय जहाँ चढ़ाई थी अब वहीं उतराई है और उतराई चढ़ाई में परिणत हो गई थी, केवल इतना ही भेद हुआ था। परन्तु गत डेढ़ मास की वर्षा से परिचित पथ भी अपरिचित सा हो गया। कहीं पथ का चिह्न भी नहीं था और कहीं-कहीं पत्थर गिरने से रास्ता एकदम बन्द हो गया था। पगडंडी से किसी तरह चलना पड़ता था, समूचा मार्ग ही पत्थरों से भरा था।

गत रात्रि के भयंकर दुर्योग का कहीं चिह्न भी नहीं है। सुबह का समय बहुत ही मनोहर है। सूर्य किरण स्पर्श से परिच्छन्न आकाश मानो हँस रहा है। श्यामल जंगलों से घिरी हुई पर्वतमाला, हरियाली का अपूर्व मेला सा लगता है। तिब्बत में रहने के कारण हमलोग हरेपन के कंगाल बन गये हैं।

जिप्ती में अनेक विपत्तियाँ आईं। गर्बियांग के अनेक मजदूरों को छोड़कर एक नया मजदूर दल अलमोड़ा तक के लिए ठीक कर लिया गया। आज का पड़ाव सोलह मील बाद था। पंगु में रात का विश्राम था। प्रथम तीन मील उतराई—नदी तक, उसके आगे चढ़ाई आरम्भ हुई। यहाँ चढ़ाई उतराई बराबर हो गयी है अथवा शरीर ऐसा सुन्न और अकर्मण्य हो गया कि दुःख कष्ट उसे छू भी नहीं सकते। निरन्तर चल ही रहे हैं। शरीर को खींचते हुए ले चल रहे हैं। अब सभी छन्दों के भीतर केवल एक ही सुर—

'आगे बढ़ो' सुनाई पड़ती है। चढ़ाई के बीचों-बीच वृष्टि आरम्भ हुई। भींगते हुए ही चल रहे हैं। इस आश्रयहीन पथ में हमलोग आश्रयार्थी हैं परंन्तु सिर रखने का स्थान तक कहीं नहीं है। चढ़ाई के अन्त में तीन मील की उतराई, फिर दो मील की चढ़ाई, पत्थरों की ठोकरों से चरणों की दुर्दशा सहन करते हुए एक बजे हमलोग सिखरा की धर्मशाला में पहुँचे। कपड़े लत्ते भींग गये थे, निचोड़ने पर जल निकलता था। आग के पास बैठ कर शरीर पर ही सुखा लिये गये। हमलोग इस ग्राम के निवासियों से परिचित हैं। उनका आदर सत्कार बहुत ही प्राणस्पर्शी है। किन्तु मक्खियों का बड़ा भयंकर उपद्रव था। हजारों मक्खियाँ—दोनों हाथों से हटाने पर भी नहीं जाना चाहती थीं। फिर ये खून-चूस मक्खियाँ हैं—काटकर बेचैन कर डालती हैं।

तीन बजे के अनन्तर पथ पर उतर आये। खाली चढ़ना और उतरना ही था। दस हजार फुट का स्पर्श कर फिर हमलोग उतर आये। आठ हजार फुट की ऊँचाई से फिर ऊपर चढ़ने लगे। सहयात्री अबतक घोड़े पर चढ़ कर घोड़े के चढ़ने उतरने का आनन्द ही प्राप्त कर सके हैं परन्तु अब कुछ भेद हो गया है। अब स्वामी दुर्गातमानन्द बेपरवाह हो गये हैं। हिलस्टिक के ऊपर बहुत अधिक जुल्म करने से हाथ में दर्द हो गया है। अरुण बाबू एकदम लाचार हो गये हैं और चल नहीं सकते, परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी एक सवारी घोड़ा जुटा नहीं सके। कहीं एक दो दिन ठहर कर चेष्टा.करने पर शायद घोड़ा मिलना सम्भव होता, किन्तु हमलोग ठहरने को राजी नहीं थे।

फिर वृष्टि शुरू हुई। तीन मील जाकर हमलोग सोसा में पहुँचे। गाँव भर में 'ढुढुंग' उत्सव चल रहा था—यह मृत आत्मा की सद्‌गति के लिए

उत्सव था। कार्त्तिक से लेकर आषाढ़ मास तक ग्राम में जितने आदमी मरते हैं उनकी पारलौकिक क्रिया-कर्म इसी समय सामूहिक रूप से एक साथ किया जाता है। आस-पास के ग्रामों की सुसज्जित नर-नारियों से पथ बिलकुल भर गया है। नंगी तलवार हाथ में लिये, कोई बन्दूक लेकर मद्य-पान करते हुए तांडव नृत्य कर रहा है। ग्राम के प्रधान के साथ जाते समय परिचय हुआ था। उसकी दूकान से कुछ चीजें खरीदी थीं। अब उनके उत्सव में सम्मिलित होकर उस दिन वहीं रह जाने के लिए प्रधान जिद्द करने लगा। मालूम हुआ कि वह भी होश में नहीं है, लोगों की ऐसी मत्तता देखकर उसमें रहना कैसे सम्भव था? वर्षा में ही नाच चल रहा है। ऐसा 'ढुढुंग' उत्सव पाँच दिन तक चलता है। जो ग्राम जितना अधिक सम्पन्न होता है उस ग्राम में सबको उतनी ही अधिक मदिरा पिलायी जाती है। उत्सव के प्रथम दिन प्रचुर मदिरा तैयार होती है। द्वितीय दिन मृत व्यक्तियों की हड्डियों के चूर्ण बनाकर अन्य चीजों के साथ पुतले बनाते हैं। तृतीय दिन पूड़ी, हलुवा, मिठाई आदि तैयार होती है। चतुर्थ दिन एक तिब्बती चमरी गाय को रंग-बिरङ्ग कपड़ों से, सींघ से लेकर पैर तक, सुसज्जित करते हैं तत्पश्चात् हड्डी के बने पुतलों को उस गाय की पीठ पर सजा देते हैं। पुरोहित (ब्राह्मण नहीं) मन्त्र पढ़ता है। गाय को पूड़ी, हलवा खिलाया जाता है। पंचम दिन उस गाय को सामने रखकर विराट जुलूस निकलता है—गाना, बजाना, नाचना, हल्ला मचाना आदि अजब कांड! वह सवस्त्र गाय पुरोहित को ही मिल जाती है। (शायद गो-दान ही है!) जिस दिन हम जा रहे थे वह उत्सव का अन्तिम दिन था। उस समय बन्दूक की आवाज हो रही थी, और नंगी तलवार हाथ में लेकर लोग कृत्रिम युद्ध भी कर रहे थे। पथ के

किनारे-किनारे मदिरा के घड़े रखे हुए थे। लोग जी भर कर पी रहे थे। नशे की मस्ती में कभी-कभी मारपीट, हत्या तक हो जाती है। वह सब गिनती ही में नहीं। स्त्री, पुरुष सभी नाचते, गाते, गिर पड़ते और शराब पीते रहते हैं। किसी तरह उस स्थान को पार कर हमलोग निश्चिन्त हुए।

सन्ध्या के पूर्व हमलोग पंगु की धर्मशाला में पहुँच गये। 'मणिप्रधान' ने धर्मशाला का एक कमरा खोल दिया। आज ग्राम से कुछ दूध और तरकारी खरीद कर बहुत दिनों के बाद एक तरह का स्वाद कुछ बदल लिया।

धर्मशाला में एक वयस्क नागा संन्यासी भी थे, कैलाश-यात्री। अच्छे भजनानन्दी साधु हैं। उनसे यात्रा के सम्बन्ध में अनेक बातचीत हुईं। साधुजी ने रात को तन्मय होकर मधुर कंठ से गाया :—

"...सब वन तुलसी भयो, सब पहाड़ शालिग्राम।
सब पानी गंगा भयो, जब घट में विराजे राम॥..."

निस्तब्ध आवेष्टनी, तीर्थावगाही मन, हिमालय का ध्यान-गम्भीर परिवेश, गान की मर्मवाणी हृदय में ध्वनित होने लगी। साधुजी ने कुछ तीर्थ खर्च माँगा। यथासाध्य कुछ देकर मैंने तृप्ति का अनुभव किया।

धर्मशाला में पिस्सू का भीषण उत्पात रहते हुए भी पक्की फर्श पर किसी प्रकार रात बीती। पिछली रात को मूसलाधार वृष्टि होने लगी थी। पंगु के उतराई-पथ में पत्थर लुढ़कने से लोग मर जाते हैं। मणिप्रधान सुबह औषध लेने आया। बहुत ही अच्छा आदमी है। परिवार में वह अकेला है। पत्नी, पुत्र स्वर्ग सिधार चुके हैं। ढलती उमर में बहुत कष्ट में पड़ गया है। अपना दुखड़ा उसने रोते हुए कहा—"मैंने तो जीवन में कोई पाप नहीं किया,

किसी को हानि नहीं पहुँचाई, तो भी मेरे ऊपर भगवान का इतना कोप क्यों है ? मेरा सब कुछ हर लिया !" मैं क्या उत्तर देता उसको, निःश्वासों से उस समय वहाँ की वायु भी भाराक्रन्त हो उठी थी।

जल्दी-जल्दी खा पीकर हम लोग वर्षा रुकने की प्रतीक्षा में बैठे रहे। दस बजे हम अपने पथ पर आ पहुंचे। हम लोग अधिकांश समय रास्ते में ही बिताते हैं। दुःख-दुर्योग की अवस्था में ही इस पथ के साथ हमारा परिचय हुआ था। शायद इसी कारण यह पथ बन्धुजन के समान अति प्रिय हो गया है। हरे वन की छाती फाड़ कर रजत-शुभ्र अनेक जल-धाराएँ पथ के स्थान-स्थान में विभिन्न मार्गों से उतर आई थीं। चार हजार फुट उतराई लुढ़कते हुए किसी तरह समाप्त कर हमलोग धौली के तीर पर आ खड़े हुए। जाते समय जो काठ का पुल देख गये थे प्रबल वर्षा के कारण उसका चिह्न भी अब नहीं था। उसके स्थान में पार उतरने के लिये दोनों तीर पर खूँटा गाड़ कर उनमें तीन घास के मोटे रस्से बाँधे गये हैं। उन रस्सों में एक त्रिकोनिया काठ लटक रहा है। उस काठ पर पैर लटकाये बैठ कर काठ को दोनों हाथों से जकड़ लेना होता है। उस काठ के साथ एक रस्सी बँधी रहती है। दूसरे पार से उस रस्सी को खींच कर सवार सहित उस काठ को दूसरे पार खींच ले जाते हैं। यदि कहीं हाथ फिसला तो नदी के गर्भ में गिर कर निश्चित मृत्यु है। यह तो आदिम युग की व्यवस्था है। इधर धौली केभीषणग र्जन से कान बहरे हो जाते थे। मैं तो दुर्गा नाम लेकर लटक गया। उस त्रिकोण काठ के साथ बोझे की तरह रस्सी से जकड़ कर मुझे बाँध दिया। रस्सी खींचनेवाला तब दूसरे पार से जब झटका देकर खींचा तो कुछ सोचने समझने का अवकाश ही नहीं था। ऐसा लगा मानो अबकी खात्मा है। आँख

कान बन्द किये किसी तरह काठ को जकड़ कर चुपचाप बैठा रहा। नीचे धौली के दुर्दान्त स्रोत-वेग की ओर ताकने का साहस ही नहीं रहा था। इस ढंग से एक-एक कर यात्री, मजदूर, माल असबाब पार करने में तीन घंटे से अधिक समय लग गया। परन्तु है वह नदी केवल ५०।६० फुट ही चौड़ी! रास्ते के जमादार को इनाम देकर हमलोग आगे बढ़े। खेला के उस परिचित दूकानघर ने पुराने मित्र की तरह दोनों हाथ फैला कर हमें अपनी छाती के भीतर खींच लिया।

सभी मजदूर इसी ग्राम के हैं। अपने परिजनों से मिलने के लिए वे कल रात को घर चले गये। लगभग पन्द्रह दिनों के लिए वे अलमोड़ा तक जा रहे हैं। सुबह मजदूरों के आने में देर होने लगी। परन्तु हम उसी समय निकल पड़े। आज केवल दस मील ही तो जाना है। आज का सारा पथ ही उतराई है। काली के किनारे-किनारे हमलोग चल रहे हैं। देवदार का वन समाप्त हो गया है। पाँच हजार फुट के नीचे देवदार प्राय: नहीं पैदा होते हैं। अब हमलोग चीड़, ओक, रोडरेंडम के जंगलों के भीतर से जा रहे हैं। एक स्थान में पथ धुल कर बिल्कुल साफ हो गया है। किसी समय वहाँ पथ था, ऐसा नहीं मालूम हुआ। अब हम एक बहुत ही संकरी पगडंडी के सहारे काली गंगा के गर्भ में से चल रहे थे। पास ही वर्षा का भीषण जल-प्रवाह उद्दाम हो उठा। मानो सब कुछ ग्रास कर लेने में ही उसको आनन्द है। काली का भीम-नाद छाती का खून सुखा देता है। विपरीत दिशा की ओर झुक कर मिट्टी, पत्थर पकड़ते हुए बैठे बैठे किसी तरह उस संकटपूर्ण स्थान का अतिक्रमण किया गया। बदली की हवा जोर से बह रही थी। आकाश

घने बादलों से आच्छन्न था। वर्षणोन्मुख मेघ हमें छू छूकर तैरते चले जा रहे थे। हमलोग अभी भी मेघ के भीतर ही रह रहे थे।

ग्यारह बजे तक हमलोग 'धारचूला' के पास आ पहुँचे, खेतों में बुआई का काम हो रहा था। धान के खेत में कीचड़ बनाकर धान के पौधे रोपे जा रहे थे। भुट्टे के पौधे इतने समय ही में आदमी के समान ऊँचे हो गये थे। जाते समय सारा मैदान सूखा पड़ा था। अब हरियाली ही सर्वत्र फैली हुई थी। अच्छा लग रहा है। आम, केला, अमरूद, प्रचुर मात्रा में हैं। डाक बँगले को खाली पाकर हमलोग उसी में ठहर गये। सवारी घोड़ों के लिए चेष्टा की गई। परन्तु एक भी नहीं मिला। स्नान के बाद खाकर हमलोग निश्चिन्त हो सो गये। पके आम, केले बहुत दिनों के बाद खाये गये। एक सहयात्री ने कहा—इस साल तो लँगड़ा बम्बई आम नहीं मिलेगा। दूध की प्यास छाँछ से मिटाने के अलावे कोई दूसरा उपाय नहीं है। परन्तु यह आम भी एकदम अखाद्य नहीं है। कषाय मधुर हैं।

संन्ध्या से ही जोर की वर्षा हो रही है। हमें उसकी परवाह नहीं, पक्के मकान में आश्रय जो लिया है। काफी गर्मी मालूम हो रही थी—केवल तीन हजार फुट ऊँचाई पर हैं। कहाँ उन्नीस हजार फुट की ऊँचाई और कहाँ तीन हजार फुट ! वृष्टि होने से कुछ ठंढक मालूम होने लगी।

सुबह आकाश साफ हो गया। हमलोग भी निकल पड़े। मार्ग के दोनों ओर हरे-भरे, खेत प्रचुर धान, मकई, चँवलिया, माँधरा आदि से खेत भरे हैं। बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था। यहाँ की जमीन बहुत ही उपजाऊ है। हरियाली के भीतर से जंगली पथ, चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई पड़ती थी।

काली गंगा का प्रचण्ड गर्जन सुनते हुए हमलोग चलते रहे। पथ में असंख्य झरने उतर आये थे। क्रमशः धूप बहुत ही प्रखर हो उठी। क्षण-क्षण पर प्यास लगने लगी। झरने से ठंढा जल पीकर हमलोग आगे चलने लगे। दिन के ग्यारह बजे बलवाकोट आये। रास्ते के पास एक छोटी दुकान थी—यात्रियों ने उस पर पहिले ही से दखल कर लिया है। हमलोग वृक्ष के नीचे ही बैठ गये। पास ही काली नदी है। स्नान, आहार, विश्राम करके हम मुसाफिरों का दल निकल पड़ा। ढलती धूप से सभी को बहुत कष्ट होने लगा। तिब्बत की ठंढक से शरीर का रक्त तक जम जाना चाहता था, लालच की दृष्टि से घूमकर हिमकणामय उस तिब्बत की ओर हमलोग देखने लगे। उस तिब्बत के हाथ से परित्राण पाने के लिए ही हमारा हृदय अधीर हो उठा था और अब पुनः उसी तिब्बत को पाना चाहता है। हमारे सुख-दुःख की अनुभूति के पीछे भी इसी तरह आँख-मिचौनी का खेल जीवन भर चलता रहता है। आज जो वस्तु दुःखपूर्ण लगती है कल वही आनन्दमय हो जाती है।

छः बजे हम लोग 'जौनजीवी' में आ पहुंचे। अति मनोरम स्थान है। जाते समय सतृष्ण नयनों से केवल उस स्थान को दूर से देख गये थे। काली और गौरी के संगमस्थल के पास घनी अमराई के बीच में एक बहुत ही सुन्दर छोटा देवालय है। 'काली गौरी महेश्वर' गत चालीस साल से उस मन्दिर में पूजित हो रहे हैं। अस्कोट के राजा ने इस मन्दिर को प्रतिष्ठित करके बहुत पुण्य कमाया है। जौनजीवी ग्राम में मुसलमान बहुत संख्या में है। मन्दिर के पुजारी और अन्य हिन्दू लोग कुछ ऊपर पृथक् रूप से निवास करते हैं। गत दस वर्षों से मन्दिर के पास ही एक वृद्धा वयस्क पहाड़ी सन्यासिनी माता रहती हैं।

पुजारी की चेष्टा से हमें भी एक पहाड़ी का खाली मकान मिल गया। मन्दिर में बैठ कर पूजा-पाठ आदि से सन्ध्या का समय बहुत आनन्द का रहा। हिमालय का शान्त परिवेश, ऋषि-सेवित स्थान में, देवसान्निध्य में बैठने पर मन स्वतः आत्मस्थ हो जाता है। पुजारी ने हृदय से आदर-सत्कार किया। हम लोगों ने भी उसे यथाशक्ति परितृप्त किया। गरीब ब्राह्मण देव-मन्दिर और देवता का आश्रय लेकर पड़े हैं।

गौरी गंगा हिमालय के हिमवाह से निकल आयी है और काली गंगा लिपुलेक पर्वत से उतरी है। निस्तब्ध रात्रि में उस प्रशान्त परिवेश के भीतर काली के साथ गौरी का मिलन देखने योग्य है। मानो शिशु अति आवेग से माँ की छाती पर उछल पड़ा है। उस उच्छ्वास-मुखरित संगमस्थल के पास हम लोग रात तक बैठे रहे····।

भोर में ही चल पड़े। बहुत चेष्टा से केवल एक घोड़ा अस्कोट तक के लिए मिल गया। अरुण बाबू घोड़े पर सवार हुए। आकाश मेघ-मलिन था। हम लोग भी मेघ-जाल के भीतर से चल रहे थे। गौरी गंगा के ऊपर वाले पुल पार होते ही तीन मील की कर्कश और निर्दयी चढ़ाई है। बकैया लेते हुए हम लोग ऊपर चढ़ने लगे। साढ़े आठ बजे अस्कोट की 'भूपेन्द्र धर्मशाला' में पहुंचे। बहुत ही सुन्दर धर्मशाला थी। अच्छी तरह नहा-धो कर प्रचुर आम और केले का फलाहार किया गया। दोपहर को सघृत 'बासमती चावल' का भात, उर्द की दाल और स्वादिष्ट तरकारी के सहयोग से सभी लोगों ने सुख-पूर्वक खाया और तृप्त हुए।

सहयात्रियों के लिए सवारी घोड़े अलमोड़ा तक के लिए मिल गये। ढाई बजे सज-धज कर ताराप्रसन्न बाबू ने घोड़े की रिकाब पर पैर रख कर गर्व के साथ कहा—"अब मुझे कौन पा सकता है ? किला फतह कर दिया।" अच्छी बात है। आज सात मील ही जाना होगा—डीडीहाट तक। कुछ दूर आने के बाद ही लोहाघाट-टनकपुर और अलमोड़ा के रास्ते अलग हो गये। हम लोग अलमोड़ा की ओर चले। दूसरा रास्ता पीछे छूट गया। वह मानो कंगाल की तरह हमारी ओर देखता रह गया। अब उसकी हमें आवश्यकता नहीं थी, इसी लिये हमने उसका परित्याग कर दिया। परन्तु एक दिन यहीं पथ हमें परम मित्र के समान कैलाश की ओर ले चला था, सचमुच हम लोग कितने स्वार्थान्ध हैं।

चढ़ाई के रास्ते हम लोग धीरे-धीरे चल रहे थे। थोड़ी देर बाद ही चीड़ का जंगल तोड़ती हुई जोर की आंधी और मूसलाधार वृष्टि आरम्भ हो गयी। आश्रयहीन पहाड़ी रास्ते पर भींगते हुए हमलोग आगे बढ़ने लगे। छाता खोलने का उपाय नहीं था। आंधी पानी के झटके से हम लोग परेशान हो रहे थे। पथ के दोनों ओर से जल का स्रोत बहता जा रहा था। चढ़ाई के रास्ते बहुत ही कष्ट से ऊपर उठना पड़ रहा था।

पहाड़ी प्रदेश की वर्षा थी। आधे घंटे के बाद ही आंधी, वर्षा रुक गई। क्रमशः पश्चिम का आकाश लाल हो उठा। दाहिनी ओर के पर्वत-शिखर पर पहुंचते ही थोड़ी दूर पर दिखायी पड़ा, एक बड़ा गांव। समझ में आया कि यही डीडीहाट है। क्रमशः वहाँ पहुँच गये। ऊँचाई छः हजार फुट है। स्थान सम्पन्न प्रतीत हुआ। दो पर्वतों के बीच में कुछ समतल स्थान में यह

समतल ग्राम बस गया है। प्रचुर जल, कुछ दुकानें और एक माध्यमिक अँगरेजी स्कूल है। स्कूल की छात्र-संख्या सौ है। स्कूल का मकान भी अच्छा है। लड़कों के लिए छात्रावास है। एक दूकान के ऊपर के कमरे में आश्रय लिया। वह रात अभी भी याद है। पिस्सू और खटमल के उपद्रव से कोई सो नहीं सका था। चीटियों की पक्तियों की तरह अगणित खटमल और पिस्सू सैन्य-श्रेणी की तरह कतार में आकर हमला करने लगे। निद्रा की कौन कहे, किसी प्रकार आत्मरक्षा की जा सकी यही यथेष्ट था।

श्रावण पन्द्रह, बुधवार। अंधेरे में वृष्टि के भीतर ही निकल पड़े। दुर्जन के संसर्ग से मुक्ति मिलने से जी में जी आया। शरीर अवसन्न था, बेंत की लता के समान हिल रहा था। मन क्लान्त था। धीरे-धीरे चढ़ाई शुरू हुई। अब चढ़ना और उतरना ही था। कल तीन हजार से छः हजार फुट आये। और आज साढ़ेसात हजार तक चढ़ना होगा। फिर तीन हजार फुट तक उतरना होगा। सुबह हवा में वन-मल्लिका की मीठी गन्ध थी। मधु-मक्खियों का गुञ्जन था, जंगली वन-लता, गुलाब का वितान, अरण्य-पक्षियों की काकली, मनोहर पर्वतीय शोभा, दोपहर को गर्मी की छटफटाहट, फिर संन्ध्या को शीत से काँपते हुए किसी झोपड़ी में आश्रय ग्रहण, यही क्रम चल रहा था।

वृष्टि में ही चार चार मील पथ तै किया गया। 'छाटा' में ईसाई मिशनरियों का एक केन्द्र दिखाई पड़ा। वृष्टि रुक गयी। अब उतराई शुरू हुई। आकाश परिच्छन्न था। जंगल में हरियाली थी। अनाज के खेत, आम का वन, केले का वन, सभी लाल धूप से भर गया था। पेड़ों में प्रचुर आम हैं, पर पके नहीं हैं।

साढ़े दस मील तय करके दस बजे के बाद हमलोग 'थल' में आये। यह स्थान भी सम्पन्न है। अनेक आदमियों का निवास है। रामगंगा के दोनों ओर कुछ दूर तक लोगों की बस्ती है। डाकखाना, दुकान व एक उच्च प्राईमरी स्कूल है। स्कूल में नब्बे लड़के और तीन लड़कियाँ हैं। स्कूल मास्टर ने कृपा करके विद्यालय के खुले बरामदे में हमारे रहने का प्रबन्ध कर दिया।

राम गंगा मिलाम हिमवाह से निकल कर सरयू में आ गिरी है। थल से मिलाम जाने का एक रास्ता है। पास ही राम गंगा के किनारे पर एक प्राचीन शिव मन्दिर है। नाम 'एकहथिया देवल' है। उस मन्दिर में वाणेश्वर महादेव देवता अधिष्ठित हैं। जन-श्रुति है कि एक हाथ वाले एक मिस्त्री ने एक बहुत बड़ा पत्थर खोद-खोदकर इस मन्दिर को बनाया था।

तीसरे पहर यकायक प्रबल आँधी पानी आ पड़ी। भीषण मेघ गर्जन, मानो एक छोटा-मोटा प्रलय कांड था। पार्वत्य प्रदेश को जर्जरित और मर्दित करते हुए वरुण देव का तीव्र शासन चलने लगा। भयंकर शब्द से हमारे घर के ठीक सामने ही वज्रपात हुआ। आग की एक झलक ने हमारे आँख और मुख मानो झुलसा दिये। इस आतंक से हम सब सिहर उठे। इतने समीप मानो हमारे ही ऊपर बिजली गिरी। बरामदे के ऊपर से जल धारा स्रोत के रूप में बहती जा रही थी। बिछौने आदि सामान भींग गये। हमलोग भी निराश्रय की तरह भींगने लगे, तो भी एक आश्रय तो था। आँधी पानी के रुक जाने पर दिखाई पड़ा कि स्कूल भवन के २५।३० हाथ दूर एक बड़े पाईन वृक्ष को बिजली ने बिलकुल फाड़ डाला है।

भोर में हमलोग फिर निकल पड़े। राम गंगा के किनारे-किनारे रास्ता था। जाना होगा डेढ़ पड़ाव—सोलह मील। शिवलोक से विदा लेकर मर्त्यलोक के आकर्षण से हमलोग चल रहे थे। शिव-सान्निध्य में शिवलोक निवास हमारा समाप्त हो चुका था। आज हमलोग हृदय के मणि मन्दिर में उस आनन्द लोक की स्मृति वहन कर चल रहे थे।

गुड़गाटिया चट्टी पीछे रह गई। अब हमलोग चढ़ रहे हैं। आज तीन हजार से सात हजार फुट चढ़ना होगा। फिर पाँच हजार फुट उतरना होगा। अनोखी व्यवस्था थी, रास्ता पहाड़ी पथ के हिसाब से चौड़ा है। किन्तु वर्षा से विध्वस्त, दोनों ओर पाईन वृक्षों का घना जंगल, बहुत ही मनोहर दृश्य था। आगे चले और पीछे घूमकर देखने लगे। पर्वत के तने पर श्यामल वन का आच्छादन था। आधी धूप और छाया थी। हरे पहाड़ों के तने पर सफेद झोपड़ियाँ चित्र की तरह दिखाई पड़ती थीं। अपने मन से चल रहे हैं। बेरीनाग की चढ़ाई लगभग समाप्त हो चुकी है।

"नमस्ते महाराजजी, जय हिन्द"—अपरिचित कंठस्वर सुन कर मैं चौंक उठा। सामने देखा एक पहाड़ी व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है।

'जय हो' कह कर शुभेच्छा जताई। 'बाबाजी कैलाश दर्शन कर लौट रहे हैं ?'—हाँ जी, आपका अनुमान ठीक है—"आज मेरा महान् शुभ मुहूर्त है। अहो भाग्य ! आज मेरे लिए भी कैलाश दर्शन हुआ।"

जिज्ञासु दृष्टि से मैं उसकी ओर देखता रहा। उस व्यक्ति ने कहा—"महाराज, मैं गरीब ब्राह्मण हूँ। स्थानीय विद्यालय में मामूली वेतन पर पढ़ाता हूँ। बहुत दिनों से इच्छा है कि कैलाश दर्शन को जाऊँ। किन्तु बहुत

से पोष्य हैं—धनाभाव के कारण अब तक कैलाश दर्शन सम्भव न हो सका। वह दयामय हैं इस कारण आज आपका दर्शन लाभ हुआ। आप कैलाश से आ रहे हैं।" चित्त की प्रसन्नता से उसका चेहरा खिल उठा। उसका श्रद्धा-नत शरीर क्रमशः भूमि पर लोट गया। स्नेह के साथ उसे उठा कर मैंने छाती में बाँध लिया। शुभेच्छा जताई। एक व्यक्ति को भी उस पुण्य-स्पर्श का अंश दे सका हूँ इससे हृदय, मन आनन्द के प्लावन से भर गये।

दिन के १० बजे दिखाई पड़ा—'बेरीनाग' एक छोटा पहाड़ी शहर। अनेक दुकानें, स्कूल, अस्पताल, वनविभाग का विश्रामागार, डाक घर, औषधालय, दूध और मिठाई की दुकानें भी हैं। स्कूल की व्यवस्था अच्छी है। सुबह छोटे बच्चे पढ़ते हैं और दोपहर को बड़े लड़कों की पढ़ाई होती है। माध्यमिक अंगरेजी स्कूल है। अस्पताल में रोगी नहीं है, सुनकर प्रसन्नता हुई। अर्थात् लोगों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। एक दर्जी की दुकान, लोहार की दुकान, सोनार की दुकान आदि सब-कुछ हैं। बहुत दिनों के बाद हारमोनियम और तबले की आवाज सुनाई पड़ी। एक दल पहाड़ी स्त्री-पुरुष बाजा बजा कर नाचते-गाते हुए भीख माँग रहे थे। अब हम लोग सभ्य जगत के समीप आ गये हैं। साफ सुथरी सुन्दर धर्मशाला में हमलोगों को आश्रय मिल गया। सहयात्री लोग इससे पहिले आकर गरम दूध और जलेबी खाकर बैठे हैं। बहुत प्रसन्न हैं। एक ने कहा—"दुध बहुत दिनों से न पी कर मैं बहुत ही दुर्बल हो गया था, इसलिए आज मुख का थोड़ा इलाज कर लिया।"

बेरीनाग आने के रास्ते में बद्रीनाथ, नन्दादेवी, त्रिशूल, नन्दाकोट, पंचचुल्ली आदि हिमालय के चिरतुषार-मंडित पवित्र शिखरों की शोभा

अतुलनीय है। सब कुछ पीछे छोड़ कर हम चल रहे हैं— केवल मानस पट पर चित्र खींचते हुए चले जा रहे हैं।

ढाई बजे फिर हमलोगों ने रास्ता पकड़ लिया। चढ़ाई, उतराई का मार्ग पथरीला, बहुत संकीर्ण और पग-पग पर फिसल पड़ने की आशंका थी। देख-देख कर बहुत सावधानी के साथ कदम बढ़ाना होता था। कुछ दूर आने के बाद एक बड़ा चाय-बागान मिला। बेरीनाग की चाय प्रसिद्ध है। दोनों ओर 'पाइन' का घना जंगल है। सुक्लाडी चट्टी छोड़ आये। खेतों में प्रचुर धान था। हुड़का बजा कर गाना गाते हुए पहाड़ी स्त्री-पुरुषों की खेत की निराई देखने लायक है। गाँव के सब लोग मिलकर बारी-बारी से सभी लोगों के खेत निराते हैं। धान निराई का काम समाप्त होने पर, चन्दा करके बकरी मारते हैं, पूड़ी पकाते हैं। मदीरा पीकर, मांस पूड़ी खाते हैं और नाचते-गाते हैं। इस प्रकार दिनभर उत्सव में मस्त रहते हैं।

इधर आम की खेती बहुत है। चट्टियों में प्रचुर आम मिल जाते हैं परन्तु अमृत फल (मीठा) नहीं, बल्कि कुछ खट्टे ही रहते हैं। प्राय छः बजे हमलोग बनसपटन में आ गये। गौरीगढ़ नदी के किनारे बड़ा ग्राम है। तीन छोटी पहाड़ी नदियाँ यहाँ आकर मिली हैं। प्रचुर शाक-भाजी और खेती-बारी है।

यहाँ एक दूकान में हम लोग टिक गये। संन्यासी देख कर अनेक स्त्री, पुरुष हाथ दिखाने आये। हस्तरेखा देखना हम लोग नहीं जानते सुन कर एक बूढ़े ब्राह्मण ने भौंहें चढ़ा कर कहा—"योगी लोग हाथ देखना नहीं जानते, यह कैसे, तो थोड़ी दवा ही दो बाबा ?" उसके बाद वे अपनी पहाड़ी भाषा में कहने लगे कि ये लोग साधु नहीं हैं, ऐसे ही गेरुआ पहन लिया है। लोगों

को धोखा देकर पेट भरते हैं। जटा भी तो नहीं है। देखा न ?" अस्तु, मैं पहाड़ी भाषा जानता हूँ उसे वे कैसे जानेंगे ? डाक्टर दे ने कई आदमियों को दवा दी। उस पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ क्योंकि उन्हें तो साधु से जड़ी, बूटी या भस्म चाहिए था।

आज दो पड़ाव थे, १७-१८ मील जाना है। अब हमलोग बेपरवाह हो गये हैं। अंधेरा रहते ही सब लोग रास्ते पर उतर आये—गौरीगढ़ के किनारे-किनारे चलने लगे। दोनों ओर घना जंगल था। दूर पर बाघ का गर्जन सुनाई पड़ा। बहुत गंभीर शब्द था। वन काँप उठा। हम लोग सट-सट कर चल रहे हैं। मजदूरों के सरदार ने कहा—वह कुछ नहीं। अभी दूर है। ये मजदूर लोग जंगल के रहने वाले हैं। इस लिए बाघ की भी परवाह नहीं करते। एक सहयात्री ने मजदूर की पीठ से अपनी बन्दूक लेकर भर ली। बाघ नहीं आया। एक आदमी ने कहा—"इतने अंधेरे में निकलना ठीक नहीं हुआ।" दूर-दूर के ग्राम उस समय भी सोये हुए थे।

शरीर एकदम थका हुआ था। आज सुबह ऐसा लग रहा था मानो दिन भर के परिश्रम से शरीर जर्जरित हो गया है। दोनों पैर एकदम पंगु हो गये थे, पर उनका भी क्या कसूर था, बेचारे खूब चले थे, कष्ट खूब सहे थे, अब असमर्थ पड़े थे। गत दो महीनों से निरन्तर गति से ऊँचे-ऊँचे पर्वत तथा दुर्लंघ्य बर्फ का पठार तय कर आये हैं। अब थोड़ा ही तो बाकी है। कुल तीस मील। पर उतना पथ चलना सम्भव नहीं प्रतीत होता। बैठने पर अचेतन होकर एकदम बैठ जाना पड़ेगा। जोश में फिर किसी तरह चलने लगे। बात करने की शक्ति भी नहीं थी, इच्छा भी नहीं होती थी।

अपने को खींचते हुए किसी तरह छः मील तय कर 'गनाई चट्टी' में आ पहुँचे। बहुत ही सुन्दर स्थान है। बड़े-बड़े मकान, दूकान, बाजार, बड़ा गाँव है। यहाँ के आदमियों की पोशाक, रहन-सहन कुछ अच्छी है। दूर के एक झरने से नल लगाकर प्रचुर जल लाये हैं। शहर की तरह चहल-पहल है। एक दूकान में डाकखाना है। हमने लौटने की तारीख जताकर अलमोड़ा में चिट्ठी भेज दी। दूध बहुत ही ताजा और सस्ता है। गरम दूध तीन पैसा पाव है। गरम दूध और केला खाकर कुछ ताजा हो गये और फिर हम लोग चलने लगे। दोपहर का भोजन 'सेराघाट' सरयू के तट पर जाकर होगा। और भी छः मील चलना होगा, यह सुनते ही मानो शरीर में बुखार चढ़ जाता है।

गनाई के बाद से ही थोड़ी टेढ़ी चढ़ाई शुरू हुई। पहाड़ के किनारे-किनारे गाय, भैंस चर रहे थे। गड़ेरियों की बाँसुरी की आवाज, पहाड़ी गाना, जंगली पक्षियों का कलरव; सभी सुन्दर हैं। सहयात्री आगे चले गये हैं। मैं ही अकेला पीछे-पीछे चल रहा हूँ। 'सेराघाट' जाकर भेंट होगी, यही तय हुआ है। तीन मील की चढ़ाई समाप्त होने पर 'नोरूभाका घोल' चट्टी के निकट आकर दो रास्ते दो ओर चले गये हैं। मैं दूसरे रास्ते से चलने लगा। दूकानदार ने पुकारकर कहा—"बाबाजी, आप तो अलमोड़ा जायेंगे, न? उधर मत जाइए।" दूकानदार की पुकार से मैं चौंक उठा। फिर लौटकर जरा बैठ गया। दूकान में बहुत ही उत्तम मधु है, एक रुपये सेर। दूकानदार ने ले लेने के लिए बहुत जिद्द की, परन्तु ढोयेगा कौन? मधु क्या, अमृत भी ढोने की शक्ति नहीं है।

रास्ते में कीचड़ है और पग-पग पर फिसल पड़ने का डर। पत्थर धँसते जा रहे हैं। रास्ता बहुत ही सँकरा और विपत्तिजनक है। करीब डेढ़ मील

दूर से सरयू नदी के जल का शब्द सुनाई दे रहा था। साढ़े ग्यारह बजे पहुँच कर देखा, सहयात्री खूब आम खाकर, मौज से बैठे हैं। वह स्थान बहुत गरम था। ऐसा लगा मानो ३५०० फुट होगा। दोनों ओर पर्वतों का घेरा है। कुछ विश्राम लेकर सब लोग सरयू में स्नान करने उतरे। गोस्वामी तुलसीदास का वह पद्य याद आया—

"...सखा सहित सरयू तीर, विहरे रघुवंशवीर।
तुलसीदास हरष निरखि, चरणरज पाई।"

यहाँ सरयू नदी काफी चौड़ी है। वर्षा के कारण जल मटमैला है। स्रोत भी तीव्र है। नदी के जल में बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ तैरती जा रही थीं। लड़के-लड़कियों में उन लकड़ियों के बटोरने की प्रतियोगिता देखने योग्य थी। तैर-कर एक लकड़ी के कुन्दे के ऊपर चढ़ बैठते हैं और दोनों हाथों से जल काट-कर उस लकड़ी को तीर पर लाते हैं। थोड़ी दूर पर एक छोटा शिव-मन्दिर है। समूचे हिमालय में ही शिवजी ने अपना अधिकार जमा लिया है।

भोजन आदि के बाद फिर चलना शुरू हुआ। कानारीचीना लक्ष्य है। फासला पाँच मील था। मैंने भटक जाने के भय से मजदूर सरदार खड्ग सिंह को साथ रखा। कड़ी धूप की गर्मी से परेशान था। रास्ते के बीच-बीच में झरने हैं, परन्तु वैसा ठंडा जल नहीं है। तिब्बत का जल मीठा और ठंडा था। अब जल पीता हूँ, पर प्यास नहीं बुझती। शीतल छायावाला पथ, घने चीड़ के जंगल के भीतर से हम चल रहे थे। 'जालीखेत' चट्टी में थोड़ा विश्राम लिया। दूकानदार खुशदिल था। उससे एक आदमखोर बाघ की एक रोमांचकारी कहानी सुनी गई। उसने बताया—"बाबाजी, 'या जसकस शेर न होइती। सो भगवती वाहन छू। आदमी जस् बोलछ। और

दिय खुटलेन हिट्छ। कुल निन्तन पकड़ी खांछ। एक महीना भीतर पांच-पांच औरत खै हाँली" अर्थात् बाबाजी, यह जैसा-तैसा बाघ नहीं है। यह भगवती का वाहन है। मनुष्य की तरह शब्द करता है। दो पैरों से चलता है। केवल औरतों को पकड़कर खाता है। एक महीने में इसने पांच औरतों को खा डाला है।

छः बजे तक कानारीचीना पहुंचकर एक दूकान में आश्रय लिया। दृश्य बहुत ही मनोरम था। दोनों ओर विस्तीर्ण उपत्यका। दक्षिण पश्चिम दिशा में 'विनसर' पहाड़ के ऊपर बँगले सफेद विन्दु की तरह दिखाई पड़ते थे और दक्षिण की ओर "धौलीछीना" है। 'विनसर' की ऊँचाई ६००० फुट है। बड़े आदमियों के उस पर बहुत से ग्रीष्मालय हैं।

आज किसी को पुकारकर जगाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। भोर में ही सब लोग उठकर तैयार हो गये। आज १० मील का रास्ता तय करना था। बूंदा-बाँदी हो रही थी। उसी में निकल पड़े। "धौलीछीना" की एक दूकान में बैठकर चाय पी ली। फिर चल पड़े। "वेदीछीना" पहुँचकर सब लोग नेवला (झरने) में स्नान करने गये। साफ़-सुथरे होकर सभ्य जगत् अलमोड़ा नगर में प्रविष्ट होना था। आज तीसरे पहर कोई पड़ाव नहीं है। सहयात्री बेचैन हो रहे थे। एक ने कहा—"यहाँ पिस्सू का डसना सहकर पड़े रहने की अपेक्षा अलमोड़ा चल जाना ही अच्छा था। आठ मील ही का तो रास्ता है।" आज यात्रा का अन्तिम दिन है।

कभी ऐसा भी विचार मन में आता है कि इतनी जल्दी यात्रा समाप्त हो गई? कल से क्या किया जायगा? पथयात्रा हमारे दैनिक अभ्यास में

परिणत हो गयी है। कल फिर चलना न पड़ेगा। सोचकर हृदय न जाने कैसे उदास हो गया। तीर्थयात्रा का दुःख आनन्द-मधुर वेदनापूर्ण था। छोड़ने में कष्ट होने लगा।...

अलमोड़ा शहर के चुंगीघर के निकट ही वहाँ के श्री रामकृष्ण कुटीर के एक स्वामीजी के आलिंगन से आबद्ध होकर मैं समझ गया कि मैं अलमोड़ा आ गया हूँ। शहर में प्रविष्ट होकर 'पिच' के चौड़े रास्ते से चलने में पहले कुछ बेढंगा-सा लग रहा था। दो महीनों से लगातार चढ़ाई और उतराई करता आया हूँ। पथरीले, संकरे पथ से ५६८ मील चलकर आया हूँ। क्रमशः सुसज्जित बड़े-बड़े भवन, सुन्दर दूकान, आदमियों की चहल-पहल थी। यह मैं कहाँ आ गया ? क्यों आया इस सभ्यता के कोलाहल के भीतर ? ...

तीर्थ-देवता की अपार करुणा से दुर्गम तीर्थ-यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो गई। परम देवता के चरणों में हृदय का भक्ति-अर्घ्य निवेदित करके आनन्द-पूर्ण अन्तःकरण लेकर लौट आया हूँ। कुछ माँगा नहीं था परन्तु पाया है बहुत कुछ। अब उस दुर्गम पथ की सभी स्मृतियाँ मधुर और आनन्दमय प्रतीत होने लगीं। इतने दिनों के बाद भी उस पुण्य स्मृति का ध्यान आने से हृदय-मन्दिर उस अज्ञात देवता की स्निग्ध ज्योति से आलोकित हो उठता है। अभी भी मानो वह मेरे हृदय के भीतर प्रतिदिन प्रत्यक्ष होते हैं। ऐसी आकुल प्रार्थना जनाता हूँ—

"चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गंगाधरे शंकरे
सर्पैर्भूषितकंठकर्णयुगले नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥

चन्द्र जिनका मस्तक प्रकाशित कर रहा है, जिन्होंने मदन को भस्म कर डाला है तथा सिर पर गंगा को धारण किया है, जो मंगलदायक हैं, सर्पों के द्वारा जिनका कंठ और कर्ण युगल भूषित हैं, जिनके नयनों से ज्ञान रूप अग्नि सदा निर्गत हो रही है— उस हस्तीचर्म रूप रमणीय वस्त्र पहिने हुए त्रिभुवन-सार मंगलमय के चरणों में मुक्तिलाभ के लिये हे जीव! चित्त को स्थिर करो। दूसरे कर्मों का प्रयोजन ही क्या है?

परिशिष्ट

तीर्थ-यात्रा बहुत दिनों पहले ही समाप्त हो गयी है। किन्तु हृदय, मन, प्राण चिरदिन के लिए तीर्थमय तथा तीर्थ की धूल में अनुरंजित हो गये हैं। अब क्षण-क्षण में मन चलता है — कैलाश के पादमूल में, देह व मन के समस्त अणु, परमाणु अनुनादित हो उठते हैं, उस शाश्वत अनाहत ध्वनि से — क्षण-क्षण में अवलुण्ठित प्रणाम अर्पण करता हूँ उस विश्वपति के चरण-कमलों में। गौरी कुंड में स्नान करता, मानस के तीर पर बैठे-बैठे मुग्ध नेत्रों से उस अनुपम रूप गौरव को देखता हूँ। तिब्बत के रंग-बिरंगे अगणित चित्र मानस पट पर प्रतिफलित होते रहते हैं! वहाँ की सब वस्तुओं के साथ मैं एकात्म हो गया हूँ। मैं अनिकेत, कैलाशपति ही मेरे परम आश्रय हो गये हैं। अनुदात्त कंठ से कैलाशपति का जयगान करता हूँ और चला जाता हूँ एक लोकातीत लोक में।

× × ×

कैलाश यात्रा पथ के अनेक आवश्यक इंगित पथ–वर्णनों के भीतर प्रच्छन्न भाव से रहने पर भी पृथक् रूप से यात्रा के सम्बन्ध में कुछ निर्देश देकर इस ग्रन्थ को समाप्त करूँगा।

साधारणतया अधिकांश भारतीय अलमोड़ा से रवाना होकर आसकोट, खेला, गर्बियांग और लिपू पास होकर तकलाकोट के रास्ते से कैलाश दर्शन और परिक्रमा तथा मानस सरोवर में स्नान करके उसी रास्ते अलमोड़ा लौट

आते हैं। उस पथ की दूरी ५०६ मील है। उसमें कैलाश परिक्रमा के ३२ मील भी सम्मिलित हैं। परन्तु तिब्बत का मील बहुत कुछ अन्दाज से माना जाता है और काठगोदाम रेल स्टेशन से मोटर बस द्वारा अलमोड़ा की दूरी ८३ मील है।

यद्यपि हमारी तीर्थ-यात्रा के बाद गत कई सालों के भीतर जगत् के अन्यान्य स्थानों की तरह तिब्बत की अवस्था में अनेक परिवर्तन हुए हैं—खासकर चीन द्वारा तिब्बत पर अधिकार जमाने के बाद—तो भी तिब्बत की दुर्गमता में कुछ कमी-बेशी हुई है, ऐसा नहीं मालूम होता।❀

जून मास के शुरू में अलमोड़ा से रवाना होकर जून के तृतीय सप्ताह में गर्ब्यांग से तिब्बत की ओर रवाना होना उचित है। उससे जाते समय ठीक वर्षा आरम्भ होने के पूर्व समस्त हिमालय और तिब्बत का अतिक्रमण करना सम्भव है, परन्तु लौटते समय वर्षा अनिवार्य है।

तिब्बत जाने-आने के मार्ग में विश्रामोपयोगी स्थानों तथा एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक की दूरी का क्रमशः संक्षेप में विवरण दिया जाता है। अलमोड़ा जिले का प्रधान शहर है। ऊँचाई ५८१४ फुट है। यहाँ होटल, बाजार, मोटर एजेन्सी, कुली एजेन्सी सभी हैं। अलमोड़ा से गर्ब्यांग तक मार्ग में जहाँ-तहाँ दिन या रात्रि में विश्राम लेना होता है। सभी जगह आवश्यक खाने की वस्तु आदि सुलभ है। इस मार्ग में खाने की वस्तुएँ ढोकर ले जाने की आवश्यकता नहीं है। कुली एजेन्सी के साथ बन्दोबस्त कर लेने से कुली,

---

❀ परन्तु वर्तमान में तिब्बत पर चीनी अधिकार के बाद भारतीय यात्रियों का तिब्बत जाना तथा कैलाश-दर्शन बन्द कर दिया गया है।

सवारी घोड़े या बोझ ढोनेवाले घोड़े, खच्चड़ या पथ-प्रदर्शक सभी का प्रबन्ध हो सकता है।

अलमोड़ा के बाद ही "वेदीछीना"—दूरी साढ़े आठ मील, ऊँचाई चार हजार फुट, डाकखाना, फारेस्ट डाक बंगलो, बाजार- दूकान आदि हैं। उसके बाद "धौलछीना"— साढ़े चार मील, ऊँचाई छः हजार फुट, डाक बंगलो, दूकान भी हैं। इसके आगे क्रमश: कानारीछीना साढ़े छ: मील—सुन्दर दूकानें, फारेस्ट डाक बंगलो हैं। सेराघाट— पौने पाँच मील, गनाई ६ मील, बनसपटन ६ मील है। इन स्थानों का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही नयनाभिराम है। और भी तीन मील बाद सुकलाडी में दूकान आदि हैं। बाद में वेणीनाग या वेनीनाग—सवा तीन मील, ऊँचाई ७ हजार फुट, बहुत बड़ा स्थान, डाकघर, बहुत-सी दूकानें, डाक बंगलो आदि हैं। वेणीनाग से चिरहिमानी-समाच्छन्न अगणित पर्वत शिखरों का अबाध दृश्य बहुत ही मनोरम है। 'थल' साढ़े नौ मील, ऊँचाई ३ हजार फुट। यहाँ रामगंगा के दोनों तटों में अनेक दूकानें हैं। उसके आगे बीबीहाट—सवा दस मील, ऊँचाई छः हजार फुट हैं। आसकोट—सात मील, ऊँचाई ५००० फुट है। यहाँ की धर्मशाला बहुत बड़ी, निकट ही बाजार है, दूकान और प्रचुर जल है। विश्राम का उपयोगी स्थान है।

साधारणतया यात्री दल प्रतिदिन १०-१२ मील चलते हैं और कहाँ रात बितानी होगी उसे दिन में रवाना होने के पूर्व ही स्थिर कर लेते हैं। आसकोट के आगे क्रमश:—जौनजीबी पाँच मील, बलवाकोट साढ़े छः मील, धारचुला दस मील, ऊँचाई तीन हजार फुट है—डाकघर, डाक बंगलो, बहुत-सी दूकानें हैं—यह बड़ा गाँव है। यहाँ से गर्ब्यांग तक घोड़े नहीं चलते। बोझ भी कुली की सहायता से ले चलना पड़ता है। जो लोग पैदल चलने में

असमर्थ हैं, उन्हें कंडी में जाना उचित है। कंडी का प्रबन्ध यहाँ हो जाता है।

धारचुला के बाद खड़ी चढ़ाई के पथ में खेला नामक स्थान है। दूरी दस मील, ऊँचाई साढ़े पाँच हजार फुट, दूकान, धर्मशाला, डाकघर, स्थानीय कुलियों के मकान यहाँ हैं। खेला में रात-दिन बिताकर उतराई पथ में धौलीगंगा के ऊपरवाला पुल पार होकर पंगू की चढ़ाई शुरू होती है, बहुत ही कष्टदायक चढ़ाई है। पंगू की दूरी ६ मील, ९००० फुट ऊँचाई है। पंगू की धर्मशाला अच्छी है। यहाँ से 'सोसा' तीन मील, आठ हजार चार सौ फुट ऊँचाई पर है। यही पहला भोटिया ग्राम है। धर्मशाला और स्कूल भवन में आश्रय मिल जाता है और भी १४ मील बाद जीप्ती ८००० फुट पर है। यहाँ धर्मशाला, दूकान और यात्रियों के रहने के लिए बहुत बड़ा छप्परवाला घर है। जीप्ती से मालपा सवा आठ मील। रास्ते में निजांग जलप्रपात है। मालपा धर्मशाला में रात बिताकर दूसरे दिन बूधी जाया जा सकता है। दूरी पौने नौ मील और ऊँचाई साढ़े आठ हजार फुट है। यहाँ दोपहर का भोजन और विश्राम करके और भी ५ मील चढ़ाई तय करने पर गर्ब्यांग पहुंचते हैं—यह दस हजार तीन सौ बीस फुट है।

यहाँ तिब्बत यात्रा के लिये गाईड, घोड़े, खच्चर, जब्बू और तिब्बत भ्रमण के लिए आवश्यक खाद्य-वस्तुओं, तम्बू, मोटे कम्बल, रसोई के बर्तन, स्टोव के लिये मिट्टी का तेल आदि का प्रबन्ध कर लेना होता है। अनेक चीजें किराये पर मिलती हैं। चीजों के दाम समतल प्रदेश की तुलना में अधिक हैं, परन्तु सब कुछ ही ले लेना उचित है।

सारा सामान जुटाने के लिये गर्ब्यांग में २-१ दिन प्रतीक्षा करना आवश्यक है। भारत के उस प्रान्त का अन्तिम डाकघर यहीं है। यहाँ से रवाना होने के पूर्व तिब्बत में किस-किस स्थान पर जाना होगा, उसका अच्छी तरह निश्चय करके उसी के अनुपात से उतने दिनों की चीजें साथ ले लेना अत्यन्त आवश्यक है। नहीं तो आगे चलकर बहुत ही मुश्किल में पड़ने की संभावना है।

अलमोड़ा से गर्ब्यांग तक किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इस मार्ग में लोग अधिक चलते हैं। प्रायः कुली सरदार ही गाईड का काम करता है। तीर्थयात्री भारतवासियों को पश्चिम तिब्बत में भ्रमण के लिए किसी प्रकार के पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु चीन के अधिकार के बाद से भारतवासियों को वहाँ विदेशी माना जाता है। और लिपू पास पार होकर तिब्बत में प्रवेश करने पर ही मिलिटरी आउट पोस्ट में एक बार यात्रियों के नाम-धाम सब कुछ, लिखाना पड़ता है और फिर तकलाकोट में हर एक यात्री को स्वीकार-पत्र में दस्तखत करना पड़ता है। यही साधारण नियम है। अवांछित सामान फिहरिस्त बनाकर वहीं छोड़ जाना पड़ता है और लौटते समय सारा सामान फिहरिस्त से मिलाकर लौटा दिया जाता है। भविष्य में तिब्बत-यात्रा की क्या व्यवस्था होगी वह अभी अनिश्चित है।

तिब्बत में अनुकूल आबोहवा में भी २४ अंश अर्थात् ७ हिमांक से भी ८ अंश नीचे की ठंढक भोगनी पड़ती है। उसके अतिरिक्त बर्फ की आँधी, ओलों की वर्षा, जोरों का पानी तो है ही। इस कारण प्रचुर गरम

पोशाक, बिछौना आदि ले जाना बहुत आवश्यक है। धोती, चादर आदि के व्यवहार में अनेक असुविधायें हैं। ऊन का गरम पायजामा बहुत अधिक आरामदायक है। तिब्बत में बिछौने के लिये कम से कम ३ भारी कम्बल, रजाई, मसहरी आदि लेना उचित है। पोशाक सभी गरम कपड़े की होनी चाहिए। पूरे हाथ की गंजी, स्वेटर, ओवर कोट, पट्टी, दस्ताना, चमड़े का जूता, कनटोप, मोमजामा का कोट, बिछौने बाँधने के लिये दो रबड़ क्लाथ, और पहाड़ पर चलने के लिये एक लम्बी लाठी—ये चीजें अत्यावश्यक हैं।

जो लोग दलबद्ध होकर जायेंगे उनके लिये कुछ दवा भी साथ में लेना आवश्यक है। फर्स्ट एड की दवायें, कूनैन, इनफ्लूएन्जा टेबलेट, कुछ सलफा ड्रग, एक हाट बैग और रसोई के बर्तन, धोने का साबुन, स्टोव, स्पिरिट, थर्मोफ्लास्क, कुछ पीस्ता, बादाम, किसमिस, लाजेन्स, अचार, चटनी, कन्डेन्स्ट मिल्क और टार्चलाइट, लालटेन, धूप के चश्मे भी लेने चाहिए। चाय, चीनी तकलाकोट में भी मिलती है।

तिब्बत जाने के लिए प्रति व्यक्ति तीन सौ से एक हजार रुपये तक यदि खर्च किया जाय तो उसके अनुसार आराम भी खूब मिल सकता है। जो सम्पन्न हैं, उन्हें धन की कृपणता नहीं करनी चाहिए। तिब्बत में अधिक रुपये साथ ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है बल्कि वह विपदजनक है। गर्ब्यांग से चलते समय जिन चीजों को किराये पर लिया जाता है और कुली, घोड़े, खच्चर, गाईड आदि के रुपये भी गर्ब्यांग पर लौट आने पर ही चुका देना पड़ता है। अतः खास तिब्बत में रुपये पैसे की विशेष आवश्यकता

नहीं होती। इस कारण गब्यांग से यात्रा आरम्भ के पूर्व अतिरिक्त रुपये-पैसे गब्यांग डाकघर में रसीद लेकर जमा रख जाना ही निरापद है। लौट आकर रुपये निकालकर और सब देना चुकाकर लौटा जा सकता है। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट में प्रतिदिन कहाँ तक जाना होगा, कहाँ रात बितानी होगी—इन सब विषयों का एक साधारण निर्देश दिया गया है तो भी मुझे कहना पड़ता है कि—खासकर तिब्बत में गाईड के परामर्श के ऊपर निर्भर रहना ही उचित है, क्योंकि पारिपार्श्विक अवस्था, आबोहवा और दल के लोगों के स्वास्थ्य तथा सुविधा के ऊपर बहुत कुछ निर्भर रहना पड़ता है।

और एक साधारण नियम यह है कि दुर्गम अपरिचित मार्ग में कुली, गाईड आदि साथियों के साथ मित्र-भाव से सप्रेम, मधुर व्यवहार करना अत्यन्त आवश्यक है। उनके साथ सहयोगिता और हार्दिकता का अभाव होने पर अनेक अप्रत्याशित समस्याओं, असुविधाओं और विपत्तियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वैसे स्थानों में कम से कम तीर्थ-यात्रा की सिद्धि की निर्विघ्न समाप्ति के लिये भी यात्रियों को विशेष सहनशीलता और बुद्धिमानी का अवलम्बन लेने की आवश्यकता है। दल के हर एक व्यक्ति को सेवा-धर्म पालन के मनोभाव का अर्जन करना होगा, नहीं तो बहुत कष्टसाध्य तथा पग-पग पर विपत्तिपूर्ण तिब्बत-यात्रा में एक दूसरे के साथ प्रेम-भाव की रक्षा करना असम्भव हो जायगा। आपस में मनमुटाव होने पर तीर्थ दर्शन का मुख्य उद्देश्य ही व्यर्थ हो जाता है। उससे केवल परिश्रम और असहनीय कष्ट सहज ही हाथ लगते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न स्थानों के वर्णन के भीतर इस प्रकार के आवश्यक इंगित विविध रूप में दिये गये हैं। विशेष ध्यान से पढ़कर उन

सूत्रों का आशय जान लेने का अनुरोध करता हूँ। इस ग्रन्थ के लेखक को उत्तराखंड के चार धाम (यमुनोत्री, उत्तर काशी, गंगोत्री, गोमुखी, केदारनाथ, बद्रीनारायण, शतपन्थ, स्वर्गारोहण—कुल लगभग ७५० मील पश्चिम तिब्बत के सभी तीर्थ (लगभग ६०० मील) और कश्मीर के अमरनाथ, क्षीरभवानी, शारदापीठ आदि तीर्थ में पैदल बड़ा दल लेकर दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस कारण दुर्गम तीर्थ-यात्रा के विविध निजी अनुभव से लेखक तीर्थ-यात्रियों को इस अनुरोध को जताने के लिए उत्सुक है।

वर्तमान में चीन के अधिकार होने के बाद किसी भी विदेशी को तिब्बत में बन्दूक, कैमरा, सिनेमेटोग्राफी के यन्त्र, चित्र खींचने या लिखने के सामान आदि कुछ भी साथ ले जाने नहीं दिया जाता।

गर्ब्यांग के बाद कालापानी—११ मील है (१२.००० फुट), सियांचूं—६ मील (१५,००० फुट)। इसके तीन मील के बाद ही लिपुलेक पास (१७१६० फुट)। सुबह तड़के लिपु पार होकर तिब्बत में प्रवेश करना पड़ता है। लिपु के बाद पहली धर्मशाला पाला में ६ मील (१४,००० फुट), और भी ५। मील के बाद ताकलाकोट (१३,१०० फुट)।

ताकलाकोट पहुँचकर दूसरे दिन खोचरनाथ देख लेना उचित है। लौटते समय प्रायः खोचरनाथ देखना सम्भव नहीं होता। जाने-आने में प्रायः २४ मील का रास्ता है। एक दिन में ही दर्शनकर लौट आया जा सकता है। ताकलाकोट बड़ा बाजार है, किसी चीज का अभाव नहीं है। परन्तु दाम कुछ अधिक है। यहाँ बहुत आरामदायक घुटनों तक ऊन का बूट जूता मिलता है। ताकलाकोट बाजार के निकट लगभग ३०० फुट ऊपर पश्चिम तिब्बत का

सबसे बड़ा बौद्ध मठ शिवलिंग गुम्फा है। देखने लायक मठ है। जाते समय ही देख लेना अच्छा है।

ताकलाकोट से कैलाश की ओर रवाना होने पर पहिले ही तीन मील दूर टयोग्राम पड़ता है और भी ८॥ मील जाने पर रिंगुंग (१४,००० फुट), उसके आगे क्रमशः बालडक ४॥ मील (१५,००० फुट), गुरलाफुक या गौरी उडार ४॥ मील, गुरलाला या गुरला पास ४ मील (१६,२०० फुट) है। इस स्थान से ही पहिले-पहिल कैलाश (२२,०२८ फुट), मानस सरोवर और राक्षस ताल का दर्शन होता है। गुरला-ला के बाद से एक रास्ता सीधे राक्षस ताल और बर्खा (या परखा) होकर टारचान तक गया है और दूसरा रास्ता मानस सरोवर ७ मील (१४,९५० फुट), गुछोल गुम्फा ४ मील (१५,१०० फुट) च्यू गुम्फा के किनारे गंगाचू ८। मील और बरखा ६ मील होकर और भी ७॥ मील दूर कैलाश के दक्षिण में स्थित टारचान (१५,१०० फुट) है।

इसी स्थान से कैलाश परिक्रमा आरम्भ होती है। टारचान के पाँच मील दूर नयानडी या छूकू गुम्फा है उसके आगे क्रमशः डीरीफुक गुम्फा ७। मील, दोलमा-ला ४ मील (१८,६०० फुट कैलाशयात्रापथ का सर्वोच्च स्थान है) और भी २ फर्लांग नीचे गौरीकुण्ड, उसके आगे ९। मील दूर जुनथुल फुक गुम्फा, उसके आगे टारचान ६। मील है। कैलाश परिक्रमा में यही ३२ मील का पथ है।

अब लौटना है। लौटते समय बहुत लोग मानस सरोवर की भी परिक्रमा करते हैं। लगभग ४ दिन का पथ (६४ मील), चढ़ाई, उतराई अधिक नहीं है। टारचान से मानस के तीर पर स्थित गुछोल गुम्फा में आने पर परिक्रमा

शुरू होती है। गुछोल के बाद च्यू गुम्फा ८।। मील है। चारकिप गुम्फा ४। मील है। चारकिप के बाद फिर ४। मील आने पर लांगबोना गुम्फा और भी ८ मील जाने पर पुनरी गुम्फा तथा पौने बारह मील बाद सेरालुंग गुम्फा है। सभी गुम्फायें मानस सरोवर के तीर पर ही नहीं हैं। कोई-कोई गुम्फा देखने के लिए एक मील से भी अधिक जाना पड़ता है। जिन लोगों को गुम्फा देखने की इच्छा नहीं है वे मानस के तीर पर अच्छी जगह देख खेमा लगाकर रह सकते हैं।

सेरालुंग गुम्फा के बाद क्रमशः यारनगो गुम्फा १४।।। मील है (यहाँ से कैलाश का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखलायी पड़ता है)। थोगलु गुम्फा १। मील, गोछुल गुम्फा सवा दस मील है। यहीं पर परिक्रमा का अन्त है।

जो लोग तीर्थपुरी का भी दर्शन करना चाहते हैं उन लोगों के लिए प्रथम कैलाश दर्शन को न जाकर नीचे दिये हुए रास्ते से जाना ठीक है। ताकलाकोट से क्रमशः टयो ३ मील, कार्णाली पौने आठ मील, हारकंग ३।। मील, मापचा चुंगु पौने नौ मील, मापचू २ मील, आनलांग पौने चार मील, सिलापचा-ला १।। मील, छुजुला ६।।। मील, ६ कामण्डी ४ मील, गैनिमा मण्डी ५ मील, गैनिमा राफ ४।। मील, शिथूम ११।। मील, तीर्थापुरी ११।। मील, टोकपोसारचू ६ मील और दुल्चु गुम्फा पौने नौ मील, टारचान १६।। मील है। टारचान से कैलाश परिक्रमा करके प्रत्यावर्तन पूर्व निर्देशानुसार ही करना चाहिए।

अलमोड़ा से रवाना होकर गर्बियांग, ताकलाकोट, खोचरनाथ, तीर्थापुरी दर्शन करके कैलाश परिक्रमा तथा मानस में अवगाहन स्नान करके फिर गर्बियांग होकर अलमोड़ा में वापस आते समय कुल करीब ५९७ मील पथ

अतिक्रमण करना पड़ता है। इसमें प्रायः २ महीने का समय लगता है। जो लोग मानस सरोवर की भी परिक्रमा करना चाहते हैं उन लोगों के लिये और ६४ मील पैदल चलना पड़ता है और ४ दिन का समय अधिक लगता है।

× × ×

नार्थ ईस्टार्न रेलवे के टनकपुर स्टेशन से आसकोट होकर गर्बियांग जाने के लिए और एक रास्ता है। उस रास्ते से आने-जाने में नौ-दस दिन का समय बच सकता है। टनकपुर स्टेशन के पास ही बड़ा बाजार है, होटल डाक बँगलो हैं। टनकपुर से पिथौरागढ़ तक मोटर बस चलती है। दूरी प्रायः ६० मील (पैदल चलने पर प्रायः ७० मील), बस से ६० मील का रास्ता साधारण तौर पर एक ही दिन में अतिक्रमण करना संभव है। पिथौरागढ़ कुली-एजेन्सी में पहिले से ही लिखकर बन्दोबस्त करने से मोटर बस से उतरने-के बाद फौरन बोझा ढोने के लिए कुली, घोड़ा और सवारी घोड़ा आदि की व्यवस्था हो सकती है। पिथौरागढ़ से आसकोट की दूरी ३० मील है। इस रास्ते का हवाला पुस्तक के आरम्भ में दिया गया है। आसकोट से गर्बियांग तक का रास्ता भी परिशिष्ट में दूसरी जगह देखिए। इस रास्ते में प्राकृतिक दृश्य बहुत ही मनोरम हैं। पिथौरागढ़ एक तहसीली शहर है। यहाँ धर्मशाला, डाक बँगलो, होटल और अनेक दूकाने हैं। आवश्यक सभी सामान यहाँ मिलते हैं।

अब तक अलमोड़ा या टनकपुर से लिपु लेक पास पारकर तिब्बत में प्रवेश तक का विवरण दिया गया है। लिपु लेक के सिवाय विभिन्न दिशाओं से आकर तिब्बत में प्रवेश करने के बहुत से मार्ग हैं। (ग्रन्थ में अन्यत्र द्रष्टव्य हैं)।

अलमोड़ा से खेला नामक स्थान होकर और भी एक रास्ता दरमा पास के भीतर से कैलास और मानस सरोवर तक गया है। अलमोड़ा और खेला (अलमोड़ा और गबियांग के मध्यवर्त्ती स्थान) की १००॥ मील है। खेला के बाद जिन स्थानों में ठहरा जा सकता है उन स्थानों के नाम नीचे दिये गये हैं। खेला के बाद ही नयो ६॥ मील, उडीथंग १०॥ मील, बालिंग १० मील, गो ७ मील (अन्तिम भोटिया ग्राम), बिडांग ६ मील, डाभे १३ मील, दरमा पास ५॥ मील है (१८,५१० फुट), यहीं भारत की अन्तिम सीमा है। इसके बाद सुल्टि—६॥ मील, लामा छोरटेन ४॥ मील, छक्रामण्डी १२ मील, गैनिमा मण्डी ५ मील (इस मंडी में आवश्यक बहुत सामान मिलता है), गैनिमा के बाद छूमारशिला—१५॥ मील, लेजान्डाक—१०॥ मील और टारचान—१३॥ मील है। टारचान के बाद—कैलास परिक्रमा और प्रत्यावर्तन द्रष्टव्य। इस रास्ते से अलमोड़ा से लेकर कैलाश तक की परिक्रमा तथा मानस में स्नान करके अलमोड़ा तक वापस आने तक ४६६ मील अतिक्रमण करना पड़ता है।

× × ×

अलमोड़ा से मिलाम होकर उल्टाधुरा पास, जयन्ती पास और कुंड़ीबिड़ी पास अतिक्रमण करके तिब्बत जाने का पथ है। अलमोड़ा के बाद ही टाकुला १३ मील (गंडग्राम), बागेश्वर १३ मील (३,२०० फुट, डाक बंगलो. गोमती और सरयू का संगम), कापकोट— १४, मील श्यामधूरा—११ मील, टेजाम्— ७ मील, गिरगाँव—६ मील, रथी—८ मील (दूसरा नाम मानसियारि, डाकखाना है), बोगद्वार—१२ मील, मिलाम—१७ मील (११,२३२ फुट)। (जोहार भोटिया लोगों का आखिरी गाँव है, यहाँ गैनिया मन्डी तक

जाने के लिये खाने का सामान तथा और भी बन्दोबस्त कर लेना पड़ता है। इसके बाद डुंग—८॥ मील (१३,७२० फुट, यहीं से उल्टाधूरा पास की चढ़ाई का आरम्भ), उल्टाधूरा पास—६॥ मील ऊँचाई १७,६५० फुट है। इस पास के अतिक्रमण करने पर २ मील उतराई के बाद १ मील की चढ़ाई करके जयन्ती पास (१८,५०० फुट), फिर २॥ मील उतराई के पथ में उतरकर और २ मील चढ़ाई करके अन्तिम गिरिवर्त्म कुंड़िबिड़ि पास, ऊँचाई १८,३०० फुट है। ये तीन गिरिवर्त्म एक के बाद एक इस तरह एक ही दिन में अतिक्रमण करके और ५ मील रास्ता चलकर छिर-चिन में रात को रहना पड़ता है। इस स्थान की ऊँचाई—१६,२१० फुट है।

इसके बाद थाजांग १० मील, गुणवन्ती (या गुणीवन्ती) नदी १२॥ मील। (इस नदी के दोनों किनारे कैम्पिंग ग्राउन्ड है, इस जगह से गुरला-मान्धाता का दृश्य अतीव चित्ताकर्षक है। ५ मील के बाद ही और एक नदी धर्मवन्ती (या दमयन्ती) पार होकर जाना पड़ता है। नदी में साधा-रणतया घुटने तक पानी, बहाव भी अधिक नहीं रहता, परन्तु बारिश होने पर स्रोत बहुत तेज होता है। उस समय पार होने के लिये प्रतीक्षा करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं रहता। और भी १० मील जाने पर गैनिमा मंडी (१५,६०० फुट), गैनिमा से टारचान (कैलाश) जाने का पथनिर्देश परिशिष्ट में अन्यत्र दिया गया है।

हिमालय के हर एक स्थान के प्राकृतिक दृश्य की विशेषता है। सर्वत्र ही परिपूर्ण सौन्दर्य है। विभिन्न स्थानों के सौन्दर्य गौरव की आपस में तुलना करने से किसी स्थान के सौन्दर्य को सर्वोत्तम कहने से हिमालय की स्वर्गीय शोभा

पर लांछन लगता है। फिर पथकष्ट की विचित्रता और तीव्रता का विश्लेषण-कर किसी विशेष स्थान को सुगम कहने से भी हिमालय की दुर्गमता पर कटाक्षपात होता है। तिब्बत के सौन्दर्य और दुर्गमता के सम्बन्ध में भी इस बात को निःसंकोच कहा जा सकता है। तथापि तीर्थयात्रियों की रुचि और प्रयोजनसिद्धि के लिये नीचे विभिन्न दिशाओं से हिमालय के भीतर से कैलाश और मानस सरोवर के दर्शन के और भी दो पथों का संक्षिप्त विवरण देकर मैं इस परिशिष्ट की समाप्ति करूँगा।

जो लोग एक ही साल एक ही यात्रा में केदारनाथ और बद्री नारायण दर्शन करके कैलाश और मानस में जाना चाहते हैं उनका प्रथम पथ योशीमठ होकर नीती पास पारकर तिब्बत में प्रविष्ट हुआ है। बद्रीनारायण दर्शन के बाद योशी मठ में लौट आकर उत्तर की ओर रास्ता है। सुराइटोटा सोलह मील (धर्मशाला) है। मालारी १८ मील (१०,१५० फुट बड़ा गाँव, धर्मशाला), नीती ६॥ मील। सुन्दर धर्मशाला है। यही अन्तिम भोटिया ग्राम है। यहाँ तिब्बतप्रवेश का पूर्ण आयोजन कर लेना आवश्यक है। नीती के आगे क्रमशः गुथिंग ८॥ मील, खाइयुंलांग १६ मील (१४,७०३ फुट)। यहाँ से ४॥ मील सीधी चढ़ाई करके नीती पास १६,६०० फुट, फिर उसके बाद चंलास १२ मील, नार्वामण्डी ११। मील डोंपू गुम्फा १४ मील (गाँव और बौद्ध मठ)। और ५॥ मील के बाद डोंगू चू। डोंगू नदी में जंघा तक पानी रहता है। पैदल पार होने में खतरा है। घोड़े पर सवार होकर नदी अतिक्रमण करना विधेय है। इसके २॥ मील के बाद डोंगू है। क्रमशः टिसुमचू १४। मील, सिवचिलिम् मण्डी २॥ मील, मनि-

थांगा ७। मील, गुणीवन्ती नदी ८ मील, दर्मावन्ती नदी ४ मील और ६ मील के बाद गैनिमा मण्डी है। इस रास्ते पर ६।७ नदियाँ पार करनी पड़ती हैं। बारीश या अधिक बर्फ गिरने पर ये सब नदियाँ अतिक्रमण करना अत्यन्त कष्टसाध्य है। गैनिमा मंडी के बाद टारचान तक पथ के बारे में परिशिष्ट में दूसरी जगह बतलायी गई है।

और भी एक रास्ता गया है। बद्रीनारायण से माना पास और थूलिंग गुम्फा होकर टारचान। इस पथ में यात्रा करने से पहिले बद्री नारायण के निकटवर्ती माना ग्राम का भोटिया गाइड, कुली आदि का बन्दोबस्त कर लेना पड़ता है।

बद्रीनाथ के २ मील के बाद ही माना ग्राम है। इसके बाद घास्टोली ६।। मील, सरस्वती ८।। मील। यहीं से माना पास की चढ़ाई का आरम्भ होता है। माना पास ६ मील (१७.८६०), भारत की अन्तिम सीमा है। फिर उसके बाद पूटी ६ मील, योगोड़ाभ् ८ मील, रामूड़ाभ १६ मील, शंकर १० मील, छात्तु खाना १८ मील, थूलिंगुम्फा ६।। मील (१२,२०० फुट), सटलेज या शतद्रु के दक्षिण तीर में अवस्थित बहुत मठ बड़ा है। थूलिंग से एक पथ तीर्थापुरी होकर कैलाश की ओर गया है। दूसरा पथ माँगनांग—१३ मील, डापा १४ मील (१४००० फुट), नार्वा मण्डी ६।। मील। नार्वा मण्डी से टारचान जाने के पथनिर्देश के लिये योशीमठ और टारचान का पथ द्रष्टव्य है।

ऊपर-निर्दिष्ट गुणवन्ती, धर्मवन्ती, दमयन्ती, सरस्वती इत्यादि स्थानीय नदियों के संस्कृत भारतीय नामों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी अतीत समय में यह सभी तिब्बती क्षेत्र भारत के ही अंश थे।

इस दुर्गम तीर्थ भ्रमण के समय यात्री लोग जो दुःख कष्ट की अनुभूति करते हैं दीर्घ २ महीने तक विभिन्न परिवेश और अनिश्चित परिस्थितियों के मध्य में उसी कष्ट के चित्र इसी भ्रमण वृत्तान्त पाठ के समय २।१ दिन के भीतर ही मन के ऊपर एक तीव्र प्रतिक्रिया ला देते हैं। परन्तु कैलाश यात्रा केवल दुःखमय ही नहीं है। उसमें अपार्थिव शाश्वत आनन्द भी है। कैलाशपति के चरणों में प्रणाम निवेदित करते हुए हृदय से विनती करता हूँ—

"मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः।
पूनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥"

हे त्रिपुरान्तक ! मैं आपके गुण-कथन-पुण्य के द्वारा अपने वाक्य को पवित्र करने के उद्देश्य से आपके महिमा-कीर्तन में बुद्धि को लगाता हूँ।
